पश्चिम में
आर्य संस्कृति और साम्राज्य

पश्चिम में आर्य संस्कृति और साम्राज्य

निरंजन वर्मा

* * *

भारती साहित्य सदन - नई दिल्ली

प्राक्कथन

इतिहास के विषय में मेरा अपना दृष्टिकोण है। भारत के प्राचीन ग्रन्थों को पढने से मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि वर्तमान सभ्य संसार भारतवर्ष से ही प्रवजन कर भूमण्डल के भिन्न-भिन्न देशो मे पहुँचा है। उन सबकी संस्कृति का मूल वैदिक सस्कृति ही है।

वर्तमान इतिहासकार संसार की एक महान् घटना को स्वीकार नहीं करते। वह घटना है महान जल-प्लावन की। इस घटना का उल्लेख भारत, ईरान, कालिडया, यहूदी, मैसोपोटोमिया, मिस्र इत्यादि सब देशों के प्राचीन साहित्य में मिलता है। यहां तक कि मध्य अमेरिका के प्राचीन निवासियो की आख्यायिकाओं मे भी इस प्लावन का कथन है। इतनी विस्तृत और विख्यात घटना को स्वीकार न करना वर्तमान इतिहासज्ञो की उद्दण्डता के अतिरिक्त अन्य कुछ नही कहा जा सकता।

भारतीय परम्परा के अनुसार जल-प्लावन के पूर्व का काल सतयुग कहलाता था। उस समय भी सभ्य मनुष्य इस भूतल पर विद्यमान थे और कदाचित् आज से कई बातो मे उन्नत भी थे। उस काल की स्मृति प्लावन से बच गये लोगों की किवदन्तियों के रूप में वर्तमान भूमण्डल के प्राय: सब देशों के प्राचीन साहित्य मे मिलती है।

इतना तो स्पष्ट ही है कि बहुत थोड़े से लोग उस प्लावन से पूर्व काल के बचे थे जिनसे प्लावन पश्चात् की सृष्टि हुई है। भारतीय परम्परा के अनुसार ये लोग हिमालय की एक चोटी पर बचे और फिर उनकी ही सन्तान भूमण्डल के अन्य सब देशो मे फैली है। ऐसा कहा जाता है कि वेद का ज्ञान प्लावन में बचे लोगों के द्वारा वर्तमान जगत् को मिला और उसका ही भिन्न-भिन्न प्रकार से विकृत हुआ रूप पूर्ण मानव समाज को प्राप्त हुआ है। भारतीय ग्रंथों मे यह बात एक स्वर से कही गयी है।

मैं यह भी मानता हूँ कि भारतीयो को इतिहास लिखना आता था और उन्होने इतिहास लिखा भी है। ऐसा उपलब्ध साहित्य मे लिखा मिलता है कि प्राचीन साहित्य में घटनाओं का वर्णन करने के कई ढंग थे। इतिहास 'ऐतिह्य', 'पुराकल्प', 'परकृति', 'इतिवृत्त', 'अवदान', 'आख्यान', 'आख्यायिका', 'उपाख्यान', 'अन्वाख्यान', 'चरित', 'अनुचरित', 'कथा', 'परिकथा', 'अनुवंश श्लोक', 'गाथा,

'नाराशंसी', 'राज-शासन' और 'पुराण' ये सब ऐतिहासिक घटनाओं को वर्णन करने के भिन्न भिन्न ढंग हैं। इनमें पुराण सामान्य जनों के लिये विशेष महत्त्व रखते हैं। अन्य ढंग ऐसे हैं जिनकी आवश्यकता सीमित और जिनको समझने की योग्यता कुछेक विद्वानों मे ही होती है। परन्तु पुराण इतिहास का वह स्वरूप है जो सर्व-साधारण की समझ मे आ सकता है और उपकारी सिद्ध हो सकता है। उदाहरण के रूप में महर्षि वेदव्यास अपने महाभारत ग्रंथ का परिचय देते हुए इस प्रकार कहते हैं—

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ।।

ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया ।।

इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ।।

जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम् ।।

चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः ।।

ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च ।।

न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम् ।।

(आदि पर्व १-६१ से ६७ तक)

अर्थात्—भगवन् ! मैंने सम्पूर्ण लोको से अत्यन्त पूजित एक महाकाव्य की रचना की है ।।६१।।

ब्रह्मन् ! मैंने इस महाकाव्य में सम्पूर्ण वेदों का गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रों का सार-सार संकलित करके स्थापित कर दिया है। केवल वेदों का ही नहीं, उनके अंग एवं उपनिषदों का भी इसमे सविस्तार निरूपण किया है ।।६२।।

इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्यकाल की इन तीनों संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है ।।६३।।

इस ग्रंथ में बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्व और मिथ्यात्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है तथा अधिकारी-भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों एवं आश्रमों का भी लक्षण बताया गया है ।।६४।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान, पुराणों का सम्पूर्ण मूल तत्त्व भी प्रकट हुआ है । तपस्या एवं ब्रह्मचर्य के स्वरूप, अनुष्ठान एव फलों का विवरण, पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, सत्य-युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग—इन सबके परिमाण और प्रमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इनके आध्यात्मिक अभिप्राय और अध्यात्म शास्त्र का इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया गया है ।।६५-६६।।

न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत (अन्तर्यामी की महिमा) का भी इसमें विशद निरूपण है । साथ ही यह भी बतलाया है कि देवता, मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न योनियो मे जन्म का कारण क्या है ।।६७।।

इसका अभिप्राय यह है कि महाभारत ग्रन्थ वेद, दर्शन और इतिहास तीनों का समन्वय करता है । इसके साथ ही इतिहास पर विवेचना भी लिखता है । इसी प्रकार सब पुराण हैं । इतिहास को इस रूप मे लिखने से इतिहास सर्वगम्य, सर्वहितकारी और ज्ञानवर्धक हो जाता है । अन्यथा इतिहास के उपकारी अंश का लोप हो जाता है । इन पुराणो को पढ़ने से, सृष्टि के आदिकाल से लेकर जब तक पुराण लिखने की परम्परा चलती रही, का इतिहास जन-जन के मन पर अंकित है । भारत मे आज भी दैत्य शिरोमणि हिरण्यकशिपु और अदिति के पुत्र विष्णु से लेकर आन्ध्र राज्य और मौर्य साम्राज्य तक की मुख्य-मुख्य कथाओं का वृत्तान्त भारत के सामान्य नर-नारियो को विदित है । यह पुराण शैली का ही परिणाम है ।

यह काल लाखों वर्ष का है । इसमें अनेको विप्लव और सांस्कृतिक उथल-पुथल हुए । यह श्रेय पुराणो की शैली को ही है कि भारत के कोने-कोने में इनको सुना जाता है और समझने का यत्न किया जाता है । इससे मैं यह समझता हूँ कि इतिहास को जन-मानस द्वारा ग्रहण करने और उससे लाभ उठाने का ढग पुराण की शैली से अधिक उपयुक्त कोई नहीं हो सकता ।

यह कहना कि भारतवर्ष का इतिहास मिलता नहीं, मिथ्या कथन है । वास्त-विक बात यह है कि भारतवर्ष के इतिहास लिखने की शैली को समझने का प्रयास ही नही किया गया और अपनी न समझी को छुपाने के लिये भारतवर्ष पर अनर्गल आरोप लगाये गये । महान जल-प्लावन सतयुग और त्रेतायुग की सन्धि के समय हुआ था । भारतीय परम्परा के अनुसार इस घटना को हुए इक्कीस लाख वर्ष के लगभग हो चुके हैं । इतने लम्बे काल का इतिहास लिखने में यदि विशेष शैली का प्रयोग न किया जाता तो इतिहास लिखा ही न जा सकता और

यदि लिखा जाता तो पढ़ा न जा सकता; पढ़ा जाता तो उसका लाभ न उठाया जा सकता।

इस पर भी समय-समय का इतिहास अधिक व्याख्या से लिखा गया प्रतीत होता है। इसीलिये इतिहास लिखने के अनेक ढंग प्रचलित थे। किसी एक समय का इतिहास व्याख्या से लिखने का नाम 'राज्य-शासन' है। इसका अभिप्राय है कि किसी एक राज्य में शासक और शासित किस प्रकार रहते थे! परन्तु इन इक्कीस लाख वर्षों मे कितने शासन हो चुके हैं, इनकी गणना नहीं की जा सकी।

परन्तु ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता जाता है, प्राचीन शासनों का वृत्तान्त विलुप्त होता जाता है और नवीन शासनो का वृत्तान्त लिखा जाता है। उदहरण के रूप में भारत में ब्रिटिश काल का वृत्तान्त अधिक व्याख्या में मिलता है और इस्लामी काल का वृत्तान्त कम व्याख्या में। इससे कम व्याख्या में हर्षवर्धन इत्यादि पंच भारतों का इतिहास मिलता है। उससे भी कम गुप्त और मौर्य वंशों का इतिहास मिलता है और उससे पूर्व के काल का और भी कम। अतः आज से इक्कीस लाख वर्ष पूर्व मनु-राज्य का वृत्तान्त तो कुछ पंक्तियों में ही उपलब्ध है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनु, इक्ष्वाकु आदि के राज्य का इतिहास है ही नहीं। इतिहास तो है, परन्तु उस काल को बहुत समय व्यतीत हो जाने के कारण संक्षेप में ही लिखा गया है।

इसी प्रकार काल गणना भी समय-समय के लिये की गयी है। परन्तु यह नहीं कि आदि काल से अब तक के इतिहास की शृंखला ही न मिले। इसको युगों में वर्णन किया गया है। युगों के उपयुग और उपयुगो मे राजवंशों के काल का उल्लेख आता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत में इतिहास की अवस्था वैसी निराशाजनक नहीं वैसी कि कुछ युरोपियन विद्वान् तथा उनके चेले-चाँटे कहते दिखायी देते हैं। जहाँ तक इतिहास की उपयोगिता का सम्बन्ध है, इतना इतिहास, आदि सृष्टि काल से आज तक, भारतवर्ष के साहित्य मे मिलता है, जितना उस काल का किसी भी अन्य देश का नहीं मिलता। दिन के समय उल्लू के आँखें बन्द कर लेने से सूर्य के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

—गुरुदत्त

विषय सूची

खण्ड १

खण्ड २

भूमिका

साहित्य-साधना मे इतिहास-लेखन सबसे दुरूह तथा कठिन कार्य है। बीती हुई प्रमुख घटनाओं के समुच्चय से इतिहास बनता है। वास्तव में बीती हुई राजनीति का नाम ही इतिहास है। चूंकि वर्तमान के इतिहास को भी राजनीति कहा जाता है, अतः दोनो मे अन्योनाश्रय सम्बन्ध है।

साहित्य के अन्य अंगो की भाँति इतिहास कभी भी पूर्ण अथवा सांगोपांग नहीं लिखा जा सकता। पिछली घटनाओ पर क्रमशः खोज और अनुसंधान होते रहते हैं और जैसे-जैसे किसी तथ्य पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ने लगता है पिछले इतिहास में वैसे-वैसे संशोधन होते जाते हैं। अतः यह विषय कभी भी पूर्ण नहीं माना जाता।

संसार भर मे मध्यकाल से इतिहास लेखन की अधिक सामग्री मिलने लगती है। इसका कारण यह है कि इस काल के लेखकों ने अपने समय की विशिष्ट घटनाओ और शासको आदि के वृत्तात लिखने में अधिक रुचि दिखलाई है। इसके पहले की घटनाओ की जानकारी के लिये इने-गिने यात्रियों, किवदंतियों, मुद्राओ तथा शिलालेखों पर आश्रित होना पड़ता है। इन सामग्रियों से जो परिणाम दोहन किया जाता है उसे संपूर्णरूप से सत्य नही माना जा सकता। उदाहरणार्थ यदि किसी स्थल पर कुछ मुद्राएँ उपलब्ध हो जायें तो उसका यह शतप्रतिशत सही अर्थ नही लिया जाना चाहिए कि उस स्थान पर मुद्रा मे अंकित शासक का राज्य ही रहा हो।

तब भी अनुभव ने यह सिखाया है कि किवदंतियों मे इतिहास की प्रचुर मात्रा रहती है। हाँ, उससे वस्तु कथा मे न्यूनाधिक मात्रा घटती-बढ़ती जाती है। संसार के प्राचीन काल का इतिहास बहुधा किवदतियों पर ही आश्रित है। यूनान, रोम, बेबीलोन, मिश्र, परशु, भारत और चीन आदि के इतिहास इन ही दंतकथाओ से प्रारम्भ होते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि और देशों की अपेक्षा विगत घटनाओ के बारे मे यूनान तथा रोम निवासियो ने काफी लिखा है। प्लूटार्क, हेरोडोटस प्लिनी, टालमी आदि इतिहास लेखकों का आज सारा संसार ऋणी है कि उन्होंने इतिहास को प्रचुर सामग्री दी है।

अरब देशों के लेखकों ने इतिहास को सिलसिलेवार तथा घटनाओं के तथ्य-पूर्ण वर्णन लिखने मे अपूर्व सफलता प्राप्त की है। मध्ययुग का सर्वाधिक इतिहास इन्हीं लेखकों द्वारा प्राप्त होता है। यद्यपि यह बात सही है कि उनमें धार्मिक असहिष्णुता के कारण पक्षपात की मात्रा अधिक ही रही है। परन्तु इस दोष से पश्चिमी लेखकों को भी मुक्त नही माना जा सकता। उनमें न जाने क्यों, यूरोप की श्रेष्ठता को बरकरार रखने का दोष उत्पन्न हो गया है। घटनाओं के वर्णन करने में जब कभी एशिया या अफ्रीका की घटनाओं का यूरोप की घटनाओं से सम्बन्ध होता है, तो वे यूरोप की घटनाओं को काफी बढ़ा-चढ़ाकर लिखते हैं। कुछ यूरोपीय इतिहासकारों ने जिनमें पर्सी आदि भी शामिल हैं पश्चिमीय इतिहासकारों की इस प्रवृत्ति की काफी आलोचना भी की है।

इतिहास के विषय में ईरान और भारत की स्थिति एक-सी है। इन दोनों देशों मे विद्वानों ने इतिहास की बहुत कुछ सामग्री धार्मिक ग्रंथों और धर्म-कथाओं से ही ली है। धर्म-ग्रंथों से सामग्री चयन करने में एक बड़ा दोष यह हो जाता है कि इसमें कालगणना का सही अंकन नहीं हो पाता। सैंकड़ों को सहस्रों और सहस्रों को लक्ष कहकर भाषा को अलंकारों से सजा दिया जाता है। भारत की भाँति ईरान में भी यही हाल है। जिसने प्रसिद्ध ग्रंथ शाहनामा पढ़ा है उसे यह बात सहज ही में समझ में आ जायेगी कि वहाँ एक पीढ़ी के मुकाबले में अन्य व्यक्ति की कई पीढ़ियाँ चलती रहीं। चूँकि ईरान कई राज्यों मे बटा हुआ था, अतः सब राज्यों का आदि-इतिहास चमत्कारिक घटनाओं से भरा पड़ा है।

कुछ विद्वानों का खयाल है कि प्राचीन भारत में इतिहास लेखन की प्रथा नहीं थी। हो सकता है कि किसी अंश तक यह बात सत्य हो। परन्तु इस तथ्य को भी स्मरण रखा जाना चाहिये कि अरबी और तुर्की आक्रमणकारियों का निश्चित लक्ष्य पराजित देशों के इतिहास का समूलोच्छेदन करना होता था। अतः वे ग्रंथागारों को जलाकर खाक कर देते थे तथा शिलालेखों को तोड़कर नष्ट कर देते थे।

अब भारत का इतिहास बाहरी यात्रियों, किंवदन्तियों, शिलालेखों और मुद्राओं के आधार पर तैयार किया गया है। यह बात सत्य है कि महात्मा बुद्ध के पूर्व का इतिहास पूरी तरह नहीं मिलता, तब भी महाभारत और पुराण इस दिशा मे काफी सहायक है। भविष्य पुराण काफी बाद का रचित है, उससे भी कुछ सहायता मिल सकती है। किन्तु विष्णु पुराण मे तो आश्चर्यजनक इतिहास भरा पड़ा है। पूरे महाभारत तथा हरिवंश पुराण (जोकि महाभारत का ही एक भाग सरीखा है) मे प्राचीन काल के राजाओं की वंशावलियाँ भरी हुई पड़ी हैं। अब आवश्यकता है कि इन ग्रंथों से इतिहास की सामग्री खोजी जाय। परन्तु इन ग्रंथों के अध्ययन से एक नया संकट और सामने आता है। वह यह कि इन

ग्रंथों का कौन रचयिता है और किस सन्-संवत में ये लिखे गये हैं, यत्न करने पर भी उनका पता नहीं चलता। अतः केवल सन्-संवत के निर्धारण के लिये दूसरे देशों के इतिहास लेखकों तथा घटनाओं पर आश्रित होना पड़ता है और उनसे ही खोज-खोजकर तथ्यों का पता लगाना पड़ता है।

इस ग्रंथ को लिखने की प्रेरणा इसलिए हुई कि भारत के विद्यार्थियों ने अभी तक केवल अपने इतिहास में यह पढ रखा था कि आर्यों को सदैव युद्ध-रत रहना पड़ता था। पहले सुरासुर संग्राम; बाद मे आर्य-अनार्य युद्ध और उसके बाद फिर भारतवासी आर्यों को यवन, शक, सीथियन, बर्बर, मंगोल, हूण तथा मुसलिमों से युद्ध करके बार-बार पराजित होना पडा। जब बार-बार इन जातियों के हमलों से आर्य पराजित होते गये तो यह विचार उठना स्वाभाविक ही था कि क्या अनंत काल से चली आ रही आर्य जाति ने स्वयं भी कभी किसी अन्य देश पर आक्रमण किया और दूसरी जातियों को पराजित किया या फिर यह जाति स्वयं ही सदैव दूसरों के हमलों का शिकार होती रही? इसी सन्देह के निराकरण के लिये इस पुस्तक की रचना हुई है।

इस पुस्तक में उस समय की भी कुछ यशोगाथाओं का वर्णन है जिस समय आर्य लोग पूरी तरह से विभक्त नहीं हुए थे। वे धीरे-धीरे अलग क्षेत्रों में प्रसार करते गये और फिर वहीं बसकर उन्हीं देशों की जातियां बन गये। इन देशों के स्थायी निवासी बनकर भी उन्होंने मूल आर्य-सभ्यता और संस्कृति को नहीं छोडा। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म-धारण तथा भाषा और बोलियों में उनमें आश्चर्य समानता थी। वे स्वयं अपने को आर्य वंशी मानने में गौरव का अनुभव करते थे। तथा भारतीय मूल के आर्यों की भांति ईश्वर के अतिरिक्त सूर्य, चंद्र, अग्नि, द्यौ, यम आदि का पूजन-अर्चन करते थे। उनके पहिनावे में भी आश्चर्य-जनक समानता थी। असुरवंश तथा सक्षमान वंशी राजाओं के पूर्वजों (जोकि ईरान के पश्चिम और उत्तरी भागों के निवासी थे) उष्णीश और भारतीय लोगों के पहिनावे एक से थे। ये लोग जिस प्रकार का उष्णीश (साफा) बाँधते व अँगरखे पहनते थे, वे सांची स्तूप में खुदे हुए उष्णीश और अँगरखों की हूबहू प्रतिकृति है। अस्त्र-शस्त्र तथा उनके पहनने में भी एकरूपता थी। बल्लम, बरछे, भाले, तलवार और यहाँ तक कि धनुष बाण तथा बाणों को तरकश मे रखने की प्रथा भी शुद्ध भारतीय पाई जाती है। परशु के प्राचीन भित्तिचित्रों और उत्कीर्ण मूर्तियों में नंगे शरीर पर शाल डालकर तथा मस्तक पर जिस प्रकार के मुकुट धारण करना बतलाया गया है, वे शुद्ध भारतीय ढंग के है।

तब यह प्रश्न उठ सकता है कि यह ही क्यों माना जावे कि यह भारतीय प्रथा है? ऐसा भी हो सकता है कि यह ईरानी प्रथा ही हो जो भारतीय आर्यों ने अपना ली हो। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें तथ्यों की कुछ गहराई में

जाना होगा। यह सब जानते हैं कि भारतीय आर्यों ने, मूल आर्य पुरुषों की भाषा—प्राकृत तथा बाद में संस्कृत को आज तक सँजोकर रखा है और इसी भाषा-परिपाटी के आधार पर ही भारतीय आर्यों को मूल आर्यों की संतान माना जाता रहा है। अन्य आर्य जो परिवार से विच्छेद करके अन्य देशों में गये वे संम्भवत: कुछ काल तक अपनी मूल भाषा को जीवित रख सके। बाद में प्रकृति, स्थान तथा अन्य लोगों के सक्रमण तथा संकरता से उनमें विभिन्नता आनी प्रारम्भ हो गई और वे मूल संस्कृत के तद्भव शब्दों में अन्य देशीय शब्दों को मिलाकर बोलने लगे। किन्तु भाषाशास्त्री भारतीय सस्कृत को ही इन पश्चिमीय देशो के आर्य परिवार की बोलियों की माता मानते हैं। अतएव भाषा और बोलियो में जब भारत ने अपनी मूल प्रकृति को नही खोया तो अन्य रीति-रिवाज में भी उन्होने अपने मूल स्वरूप को नहीं छोडा होगा ऐसी संभावना व्यक्त की जा सकती है। अतः इस दृष्टि से उस समय के रीति-रिवाजों और पहनावे मे मूल की प्रतिकृति बाहरी देशों मे होना ही अधिक उपयुक्त और समीचीन तथ्य मालूम पड़ता है।

भाषा का उच्चारण और बदलाव एक आश्चर्यजनक समस्या है। भारत में तो एक अंग्रेज लेखक के अनुसार हर बारहवें मील पर भाषा में न्यूनाधिक विभिन्नता आ जाती है। यह सही भी है। क्षेत्रीय उच्चारण, स्वरों तथा अनुनासिक अक्षरो और व्यंजनो की अभिव्यक्ति मे काफी बदलाव हो जाता है। स्वय भारतवर्ष मे भाषाओं की अनेक विविधता है। तमिल भाषा में कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, टवर्ग और पवर्ग के सब अक्षरो का एक सा उच्चारण होता है, यदि कोई बंडारनायक कहे तो इसे कभी भी मूल शब्द नही माना जा सकता। सही शब्द तो भंडारनायक ही होगा। इसी प्रकार भोपाल के क्षेत्रों के निवासी 'ल' को छोड़कर 'र' बोलते हैं वे पीपल को पीपर अथवा साँकल को साँकर कहते हैं। उत्तरप्रदेश के रहनेवाले 'ल' अक्षर को पूरा ही छोड़ देते हैं। वे हल्दी को को 'हद्दी' और मिर्च को 'मिच्च' पुकारते हैं। बिहार प्रदेश के लोग 'क्ष' शब्द का उच्चारण 'स' करते है।

इसी प्रकार पंजाब और सीमाप्रात के निवासी आधे स ('स्') का ठीक उच्चारण नहीं कर सकते। वे स्कूल को इस्कूल या सकूल और स्टेशन को सटेशन बोलते हैं।

यह हाल तो अकेले भारतवर्ष का है। बाहर तो बोलियों की भयंकर समस्या है। चीन देश में कोई अक्षर ही नहीं होता। वहाँ शब्दों से ही काम चलता है जिसे हम 'हुयेन्स्यांग' कहते हैं उसे वे इस प्रकार उच्चारण करते हैं कि हमारी भाषा ही उस उच्चारण को प्रकट नही कर सकती। यही कारण है कि कहीं हुएनसांग, कहीं ह्येनस्योंग और कहीं ह्वेनच्यांग पढ़ा जाता है।

हुएनस्यांग ने जो भारत यात्रा का वर्णन लिखा है उसमें भारतीय नामों का सर्वथा दूसरा रूप ही हो गया है। उसने अधिकांश 'र' शब्द को 'ल' करके लिखा है। अतएव सही शब्द समझने के लिये काफी परिश्रम करना पड़ता है।

यूनानी यात्री मैगेस्थनीज ने भारत की यात्रा का जो वर्णन लिखा है उसमें संज्ञावाचक शब्दों का उच्चारण अलग ही है। बहुत यत्न करके सही नामों पर पहुँचा जा सकता है। उदाहरण के लिये चंद्रगुप्त को उसने सेन्ड्रोकोटस लिखा है। अत: यूनानी भाषा में भारतीय नामो का जो प्रवेश हुआ है उनका सावधानी से ही सही अर्थ निकाला जा सकता है। यूनानी भाषा का एक अक्षर अंग्रेजी के C अक्षर की भाँति है। जिसका उच्चारण 'च' होता है। यूनानी वर्णमाला में कुछ अलग ही प्रकार के अक्षर हैं जिनको पढकर सदर्भ से अर्थ निकालना होता है।

यूरोपीय भाषाओं की भी अपनी-अपनी विशेषता है। यूनानी भाषा के अंग्रेजी अनुवाद में बाद को जो 'es' लगता है वह व्यर्थ होता है। जैसे फ्रांसीसी भाषा में पेरिस नगर को पेरी कहा जाता है और 'स' मौन होता है उसी। प्रकार कुछ शब्दों के भारतीय नाम को तोड़-मरोडकर यूनानी भाषा मे लिखा गया। बाद में जब यूनानी से अंग्रेजी में अनुवाद हुआ तो कुछ का कुछ उच्चारण हो गया। इस परिस्थिति में मूल भारतीय नामोंको पढ़ना बहुत कठिन हो जाता है।

लेखक को यूनानी अथवा रोमन भाषा का ज्ञान नही हैं। तब भी अंग्रेजी भाषा के इतिहास लेखक सर पर्सी और फ्रांसीसी भाषा के इतिहास लेखक डिमारगेन नामक महानुभावो ने इस इतिहास के बहुत से नामो को ढूंढ़कर उनकी मूल संस्कृत नामावली का पता लगा लिया है। अत: इस पुस्तक मे जो भी संस्कृत शब्द आए हैं वे इन्हीं महाशयो आदि की खोजो का परिणाम है। लेखक का इसमें कोई भी परिश्रम नही है। हां, कहीं-कही सामान्य ज्ञान से अवश्य सहायता ली गई है।

जिन सज्जनों ने संस्कृत तथा फारसी दोनो भाषाओ को पढा है उन्हें विदित है कि फारसी संस्कृत परिवार की आर्य भाषा है। एक-दो नही सहस्रों फारसी के शब्द संस्कृत के निकले हुए हैं। उनका मूल संस्कृत ही है। कहीं-कही तो पूरे के पूरे वाक्य ही तद्भव संस्कृत के मालूम पड़ते है। उदाहरण—

"मी जवाने फारसी नमी दानम्" बिलकुल सस्कृत भाषा ही है। 'मी' अहम से 'जवान' जिह्वा से 'नमी नकार् से 'दानम्' जानने से है। फारसी भाषा में ज, ह, और श का व्यापक प्रयोग होता है। संस्कृत का स फारस मे पहुँचते-पहुँचते 'ह' हो जाता है। जैसे सिंधु, सप्ताह, सरस्वती का 'हिंदु, हफ्ता और हरहती' हो गया है। अश्व का अस्प और उष्ट्र का शुस्तर भी ध्यान देने योग्य हैं; अत: इस पुस्तक के लेखन में इन सब बातों का ध्यान रखा गया है।

Cyrus को अंग्रेज साइरस कहते हैं। परन्तु सही शब्द कुरु है परन्तु संस्कृत साहित्य में फारस देश को 'कारुष' लिखा गया है। अतएव इस पुस्तक में भी कुरु के स्थान पर कुरुष शब्द का प्रयोग किया गया है। मारगेन, पर्सी आदि इतिहासज्ञों ने परशु देश के एक वंश को जिसे अंग्रेजी मे Achaemenes लिखा है उसे हखबानस लिखा है। परन्तु यदि 'ह' को 'स' मान लिया जाए तो समस्या सहज ही में हल हो जाती है, क्योंकि ये लोग आर्य थे और हख मानिस शब्द को उन्होंने संस्कृत भाषा का लिखा है। अतएव सही शब्द सक्षमान है जिसे इस पुस्तक मे लिखा गया है।

फारसी देश के पारसियों के धर्म-ग्रंथ 'जिंदावस्ता' ने नामो की समस्या काफी सुलझा दी है। क्योंकि इस पुस्तक मे सस्कृत भाषा का फारसी रूप या वह फारसीकरण दृष्टिगोचर होता है जिसमे संस्कृत से नई भाषा फारसी धीरे-धीरे बनती आ रही थी। अतः इससे काफी अश तक इतिहास लिखने में सहायता मिलती है।

प्राचीन फारसी धर्म पर भी आर्य धर्म की स्पष्ट छाप थी। अभी तक तो केवल यही सुना जाता था कि शिव देवता संभवत. अनार्यों के थे। परन्तु इन देशो के इतिहास-अध्ययन से पता चला कि यह उक्ति सर्वथा निराधार नही है। बेबीलोन के आसपास से एक सील मिली है जो आजकल ब्रिटिश म्युजियम में रखी है। यह सील ईसा पूर्व की मानी जाती है। इसमें अकेले शिव ही नहीं— जलहरी, नंदी, त्रिशूल, सूर्य और चन्द्र भी बने हैं तथा राजा को नगे बदन धोती पहने हुए तथा मुकुट धारण किए हुए बतलाया गया है।

अब थोडा-सा ध्यान दस्यु, असुर और अनार्य शब्दो पर भी दिया जाना चाहिए। संस्कृत साहित्य इन शब्दों से भरा पड़ा है। असल में ये सब शब्द पश्चिमी लोगों के प्रयुक्त किये गए है। असुर लोगो का असुर स्थान बेबीलोन का क्षेत्र था जिसे यूनानियो ने Assur लिखा है। यही बाद मे असीरिया और फिर सीरिया हो गया। इसी प्रकार अनार्य स्थान वर्तमान खुरासान के नीचे का भाग तथा दस्यु स्थान दह्यु था। यदि फारसी के 'ह' को 'स' मे बदल दे तो यह दस्यु शब्द हो जाता है जो कि यूनानियों ने ईरान के पूर्वी क्षेत्र को Dahae लिखा है।

संस्कृत साहित्य मे हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और बलि को असुर माना है। यह आश्चर्य की बात है कि ईरान के प्राचीन इतिहास मे कई नाम नरहरि शब्द के पाये जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय नाम जिनके पीछे अश्व शब्द लगा रहता है ईरान मे बहुतायत से पाये जाते है।

इस इतिहास के पढने से विद्वान् शंका कर सकते हैं कि यह इतिहास तो ईरान का है। परन्तु अध्ययन से यह धारणा निर्मूल हो जाएगी क्योंकि वह इतिहास वास्तव में आर्य जाति की उस शाखा का है जो भारत से अलग होकर

यद्यपि पश्चिम में चली गई थी किन्तु रक्त और संस्कृति से उसका सम्बन्ध उस समय भी भारतीय आर्यों से जुड़ा था। जैसे जब-जब यूनानियों पर आर्यों ने चढ़ाइयाँ की तो भारतीय आर्य भी इन आर्यों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर लड़े थे। अन्तर केवल इतना है कि कालान्तर में भारतीय आर्य तो हिन्दू बने रहे परन्तु इन आर्यों ने केवल धर्म परिवर्तन तो अवश्य कर लिया परन्तु आज भी अपने को आर्य वंशी कहकर सूर्य से अपनी उत्पत्ति में विश्वास करते हैं।

अतः यह इतिहास आर्यों के आदिकाल से उस समय तक का है जब तक कि इनका सम्बन्ध धर्म, साहित्य और संस्कृति के आधार पर भारत के आर्यों से रहा। किन्तु जब इस्लाम के आक्रमण के कारण अरबी सेमीटिक जातियों का वहाँ वर्चस्व छा गया तो प्राचीन साहित्य भाषा लिपि, शिल्प सभ्यता और संस्कृति सब ही तिरोहित हो गई। अत मुस्लिमो के अभ्युदय काल से इस इतिहास की अंतिम कड़ी समाप्त कर दी गई।

आर्यों के इतिहास का यह भाग भारत मे सर्वथा अधकार मे रहा। न किसी ने लिखा, और न इस पर शोध ही हुई। अत यदि इस ओर अनुसंधान कार्य किया जाए तो उत्तर में समरकद, वाल्हीक से लेकर ठेठ पश्चिम एशिया के वर्तमान टर्की देश तक का प्राचीन इतिहास भारत के इतिहास से या तो आलोकित पाया जायेगा अथवा इससे जुडा हुआ मिलेगा। संस्कृत साहित्य और पुराणो मे इस प्रकार की सामग्री भरी पडी है। कितने खेद की बात है कि पश्चिमी विद्वान् तो कश्यपसागर का नामकरण भारतीय महर्षि से मानते हैं। परन्तु भारतीयो को इस विषय मे कोई ज्ञान ही नही है।

हमने इस अगम्य विषय को चुना है। अत बहुत संभावना है कि इसमे कई त्रुटियाँ रही हो। तब भी पाठक केवल इस बात पर सतोष करेंगे कि अब लेखको का ध्यान तो इस ओर आकृष्ट हुआ है। भविष्य में नये-नये प्रयासो और खोजों से नये नये महत्त्वपूर्ण तथ्यो पर प्रकाश पडता रहेगा। इस प्रयास को मूर्त रूप देने का सारा श्रेय लेखक के अग्रज इतिहास के विद्वान् श्री कामताप्रसाद वर्मा को है जिनके भरपूर ज्ञान ने लेखक को काफी सहायता पहुँचाई।

संसद सदस्य होने के नाते लेखक को ससद का विशाल ग्रन्थागार देखने तथा अन्य विद्वानो से इस विषय पर चर्चा करने के कई अवसर आये। उनकी प्रेरणा से ही लगभग सात वर्षों मे यह पुस्तक तैयार हो पाई। लेखन मे आदरणीय श्री रतनलाल जी जोशी (सम्पादक 'दैनिक हिन्दुस्तान') व माननीय श्री बलराज मधोक (भूतपूर्व अध्यक्ष भारतीय जनसघ) से पर्याप्त सहायता मिली है। अत वे धन्यवाद के पात्र हैं। देश के महान् विद्वान् श्री गुरुदत्त वैद्य के हम आभारी है जिनने प्राक्कथन लिखकर इसको सम्मान प्रदान किया।

पुस्तक के प्रकाशन मे भारती साहित्य सदन दिल्ली के स्वामी श्रीयुत

योगेन्द्र जी ने अत्यन्त स्नेह से इस पुस्तक का न केवल प्रकाशन ही किया अपितु समय पर नये-नये विचार भी दिए इसलिए उनके प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। विदिशा निवासी श्री सूरजमल जौहरी तथा लघु भ्राता श्री रामनारायण वर्मा एडवोकेट ने संशोधन शुद्धि तथा प्रूफ देखने में जो समय दिया उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—निरंजन वर्मा

विदिशा
चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं० २०३०
दिनांक ४-४-१९७३

खण्ड १

१

आर्य और उनका उत्पत्ति स्थान

संसार मे आर्य जाति को सबसे प्राचीन सभ्य जाति माना जाता है। आर्य शब्द का अर्थ ही सुसंस्कृत व्यक्ति से माना गया है। साधारणतः इसका अर्थ श्रेष्ठ से किया जाता है। जबकि संसार की अन्य जातियां न केवल विस्मृत ही थी अपितु उनमे सभ्यता, संस्कृति तथा ज्ञान का उदय भी नही हुआ था तब यह जाति उन्नति की ओर अग्रसर हो चुकी थी। ससार के महान् विद्वानों तक ने इस जाति तथा इसकी संस्कृति और उदात्त भावनाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

क्लीमेट हुअर्ट नामक प्रसिद्ध इतिहासकार ने अपने 'ईरान का इतिहास' की भूमिका मे लिखा है "मानव समूह के बढते हुए इस प्रवाह ने, जिसने अपने सपर्कों से देश देशो को जागृत किया, राज्यो का निर्माण और पतन किया—इन देशो मे जन-समूह का जो प्रवाह उमड पडा उसका मूल निश्चयात्मक आर्य था और स्पष्टत भाषायी दृष्टिकोण से ये वे लोग थे जिनका आधिपत्य भारत मे था।"[1]

पिटार्ड ने अपनी पुस्तक 'जाति और इतिहास' में इस जाति की अधिक खोज की ओर "कोई विशेष ध्यान न देने के कारण पुरातत्ववेत्ताओं की सूझबूझ की अज्ञानताओ को" धिक्कारा है।[2] वास्तव मे उक्त-उक्ति तथ्यपूर्ण जान पड़ती है, क्योंकि आर्य जाति और उसकी भाषाओ की प्राचीनता के विषय में जितनी खोज और गवेषणा की जानी चाहिए थी वह नही हुई है। केवल संयोग से जहाँ-तहाँ खुदाई अथवा आकस्मिक उपलब्धियो से ही मनुष्यो को जो इस जाति के बारे में ज्ञान-परिचय हुआ है उससे ही उसने सतोष मान लिया है।

स्वतन्त्र भारत मे भी अपनी 'जाति' की खोज के विषय मे अभी तक कोई विशेष प्रयास नही हुआ है। यह बात निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन आर्यों ने

1. Clement Huart in Preface of History of Iran
2. Race & History by Pittard, page 316, 366

अपने स्वयं के विषय मे बहुत-कुछ अधिक नही लिखा है। सम्भव है यह उनकी ख्याति पराङ्मुखता के कारण ही हो। स्वय वेदो मे इतिहास की बहुत कम सामग्री मिलती है। यही हाल दूसरे ग्रंथो का है। बहुत अधिक खोजो के परिणामस्वरूप कुछ पुराणों से इतिहास सामग्री अवश्य मिलती है। इस सामग्री को प्राचीन लेख, भित्ति, मुद्रा एवं अन्य टंकणों से मिलान करने और बाहर के देशो के इतिहास के समानांतर अध्ययन करने से इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ियां अब उपलब्ध होने लगी हैं।

कुछ विद्वानो का ऐसा भी मत है कि भारत मे इतिहास लिखने की परिपाटी और परम्परा तो थी किन्तु समय और बाह्य-आक्रमणो ने तथा लम्बे समय तक देश और ग्रंथागारो के निर्मम विनाशो के कारण वह समस्त सामग्री नष्ट हो चुकी है। यह बात सही है कि विदेशी आक्राताओं ने और खासकर मुस्लिम आक्रमणकारियो ने जान-बूझकर अपनी धर्मान्धता मे केवल धर्म-प्रसार को लक्ष्य रखते हुए अन्य देशों की न केवल ऐतिहासिक सामग्रियो को अपितु उन सब वस्तुओं को, जिनसे उस देश की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, भाषा और महानता परिलक्षित होती हो, नाश करने मे कोई कोर-कसर नही छोडी।

जे० डी० मारगन नामक इतिहासकार ने भारत तथा अन्य देशो मे आर्य जाति की हलचलो के विषय मे लिखा है—"इन हलचलो की तारीख दिया जाना असम्भव है और न अब उनका पता ही चलता है। किन्तु ऐसा पता पड़ता है कि ये हलचलें हमारे सन् (अर्थात् ईसवी शताब्दी) से पन्द्रह शताब्दी से बारह शताब्दी पूर्व तक लगभग समाप्त हो चुकी होगी (अर्थात् जातियां उस समय तक भिन्न-भिन्न देशो मे स्थायी रूप से बस चुकी होगी) किन्तु इन सबका मूल समय के गर्भ मे खो चुका है।"[1]

आर्यों का मूल स्थान कहाँ पर है इस विषय मे भारी मतभेद हैं। पश्चिमी इतिहासकारो ने उनका मूल स्थान मध्य एशिया माना है जहाँ से वे आवश्यकताओं के अनुसार प्रसार तथा विस्तार करते हुए समीप के अन्य लगे हुए देशो की ओर होते हुए आगे बढते चले गये। कुछ विद्वानों, जिनमे भारत के प्रमुख लेखक श्री बाल गंगाधर तिलक भी है, ने अपने ज्योतिष तथा भौगोलिक ज्ञान और उस विषय की पुस्तको के आधार तथा नक्षत्रो की समयावधि को लक्षित करते हुए आर्यों का उत्तरी ध्रुव से आकर भारत मे बसना बताया है। किन्तु अनेक विवादों के पश्चात् अब ये दोनो धारणाएँ गलत सिद्ध हो गई हैं।

तब आर्यों का मूल निवास कहाँ था? इस पर विचार करना आवश्यक है। यदि इस विषय पर हम बिल्कुल ठीक निर्णय या निष्कर्ष पर न भी पहुँच पायें

1 J. D. Morgan—Les Premieres Civilizations, page 314

तब भी लगभग सही-सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमारे पास प्रचुर सामग्री है। वेदों, पुराणों, ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल, जिन्दा अवस्ता, बौद्ध ग्रन्थों तथा यूनानी लेखकों के आधार पर समीपस्थ निर्णय पर पहुँचा जा सकता है।

पश्चिमी इतिहासकारों ने भारत से बाहर यदा-कदा मिलने वाली सामग्रियों से अनुमान लगा लिया है कि आर्य लोग बाहर से आये। उत्तर-पूर्वी सीरिया प्रदेश का पहले 'मित्राणी' प्रदेश नाम था। वहाँ १४वी सदी ई०पू० भारतीय संज्ञावाचक नाम बहुतायत से मिलते हैं।[1] संभवत इस पर से भी उन्होंने अनुमान लगाया हो। परन्तु 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' ने यह भी स्पष्ट रूप से लिखा है कि "भारतीय आर्य-भाषा का सबसे प्राचीनतम साहित्यिक भडार-ऋचाओं का संग्रह निश्चय ही ऋग्वेद है।"[2] इससे प्रकट है कि वेद ही समस्त आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक है और वह भारतीय मूल ग्रंथ है। चूंकि उसमें कही भी आर्यों के बाहर से आने का उल्लेख नही है, अत आर्यों के बाहर से आने की कल्पना सर्वथा निस्सार है।

इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का भी विश्लेषण करना यहाँ जरूरी है कि संसार की जातियाँ अनेक प्रयत्नो के बाद भी अपने मूलस्थानों की याद को नही छोडती। उनकी सभ्यता, सस्कृति, रीति-रिवाज अथवा साहित्य मे मूल स्थान का कही-न-कही जाने-अनजाने मे प्रयोग हो ही जाता है। भारत मे बसे ईरानियो को ईरान-वासी होने का ज्ञान है। ब्रिटेन-निवासियो को मालूम है कि उनके पूर्वज डेन्मार्क-वासी थे। इसी प्रकार अनेक यातनाओ को सहन करते हुए और ससार के अन्यान्य भागो मे भागकर बसे हुए यहूदियो को भी अपने इज़रायल देश का गर्व है (अब उन्होंने उसे प्राप्त भी कर लिया है) परन्तु भारत मे प्राचीनतम आर्य-ग्रंथों मे सभ्यता के किसी चिह्न मे भी न तो बाहरीपन का कोई अवशेष है और न कही उल्लेख है। इससे विदित होता है कि आर्य लोग हरगिज बाहर से नहीं आये।

प्रसिद्ध इतिहासकार एलफिंस्टन का मत है कि "भारतीय हिन्दुओ के पुरखे अपने मूल निवास के अतिरिक्त किसी दूसरे देश मे थे।" ऐसा मानने का कोई कारण नही है। वेद, मनुस्मृति या मनु के पूर्व किसी भी ग्रथ मे हिन्दू जाति की पूर्व निवास-भूमि का कोई उल्लेख नही मिलता।[3]

1. Encyclopaedia Britanica, page 166
2. The earliest extant literary record of Indo-Aryan Languages is the collections of Hymns known as the Rigveda—Page 166 En. Bri.
3. It is opposed to the foreign origin that neither in the code nor, I believe, in the Vedas, nor in any book, that is certainly older than the code is there any illusion to a prior

भारत के विषय में सबसे प्राचीन उल्लेखकर्त्ता मेगस्थनीज की इस विषय में टिप्पणी मनन करने योग्य है—"यह कहा जाता है कि यदि पूरे को लिया जाए तो भारत एक वृहत् विस्तार का देश है जिसमे अनेक और विविध जातियाँ निवास करती हैं। परन्तु उनमें से एक भी विदेशी नस्ल की नहीं है। सभी यहाँ की मूल निवासी हैं। यही नहीं, न तो यहाँ पर बाहरी उपनिवेश ही बसा और न किसी दूसरे राष्ट्र मे जाकर यहाँ वालो ने उपनिवेश ही बसाया।"[1]

इससे यह प्रचलित मिथ्या धारणा स्पष्ट हो जाती है कि पश्चिमी लेखकों के अनुसार ईसा से १५०० वर्षों से लेकर २००० वर्ष पूर्व तक आर्य लोग बाहर से आते रहे थे, क्योकि मेगस्थनीज स्वयं ईसा से तीन शताब्दी पूर्व भारत मे आया था और उसे इस तथ्य का हाल जरूर मालूम होता और वह उल्लेख करता।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी इतिहासकारो और पुरातत्ववादियो की यह धारणा भी निर्मूल सिद्ध होती है जिसके अनुसार उन्होंने ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व की सिंध-घाटी, नर्मदा घाटी अथवा मोहन्जोदडो, हडप्पा-कालीन सभ्यता की व्याख्या की है। क्योकि उनमें से कई के अनुसार व भारतीय ग्रंथो महाभारत व भविष्यपुराण के अनुसार भी महाभारत काल आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व का माना जाता है। इन तथ्यों का सबसे बडा प्रमाण स्वय युधिष्ठिर संवत् का प्रचलन है जो आज तक भारत मे निर्बाध चल रहा है।

यही नही स्वय ऋग्वेद मे 'आर्य' शब्द जातिसूचक कभी भी नही है।

---

residence or a knowledge of more than the name of any country out of India —History of India—Elphinstone

प्रसिद्ध इतिहासकार कीथ ने भी लिखा है—

"From these materials conclusions can be drawn only with much caution. It is however certain that Rigveda offers no assistance in determining the mode in which the Vedic Indians entered India...the Arya invaders of India entered by the passes of Hindukush or...Punjab to the East...is not reflected in the Rigveda"

—Keith : Cambridge History of India I, page 78-79

1. It is said that India, being of enormous size when taken as a whole is peopled by races both numerous and diverse, of which not even one was originally of foreign descent, but all were evidently indigenious; and moreover that India, neither received a colony from abroad, nor sent out a colony to any other nation"

—Mac Crindle 'Ancient India—Megasthnese, page 34

ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द का उल्लेख तीन बार आया है (१।१०३।३, ६।२५।२, १०।६५।११) परन्तु वह जातिवाचक नही है।[१]

भारतीय विद्वानो ने इस प्रचलित धारणा की भी धज्जियाँ उड़ाई हैं कि दक्षिण के लोग आर्यों से भिन्न थे। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—"एक ऐसा मत भी है जो यह कहता है कि मनुष्यो की एक जाति दक्षिण में है जो द्रविड़ कहलाते हैं जोकि भारत की एक अन्य जाति 'आर्यों' से सर्वथा भिन्न है और दक्षिण के ब्राह्मण ही आर्य हैं जो उत्तर से आये हैं···ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों में विश्वास मत करो···सारा देश आर्य है···और कुछ नही है।"[२]

लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष के आधार पर अपना मत व्यक्त किया है। परन्तु प्रोफेसर वालेस के अनुसार "भारतीय ज्योतिष के मान ज्यामिति के गणित के अनुसार निष्पन्न किये गए हैं। बहुतो का मत है कि ये तत्त्व अति प्राचीन हैं। समीक्षा से इनका काल ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व का माना जाता है। 'बेली' ने भी इसे माना है।[3] अत इससे भी यह सिद्ध है कि कम-से-कम तीन हजार वर्ष (ई० पू०) पूर्व तो आर्य भारत मे ही मौजूद थे। परिणामस्वरूप पश्चिम-वासियो की यह दलील कि ईसा की दूसरी-तीसरी सहस्राब्दि पूर्व आर्य बाहर से भारत मे आये थे निरर्थक हो जाती है।

इससे प्रसिद्ध विद्वान् गोर्डन चाइल्ड का यह मत ठीक नही जँचता कि मोहञ्जोदडो आदि के निवासी आर्य नही परन्तु भारत की किसी प्राक् आर्य जाति से संबधित हैं।[४]

आर्य जाति का जब विकास हो रहा होगा उस समय अनेक जातियाँ, कबीलो मे विभाजित थी जो प्रत्येक कबीले के मुखियो के नाम से प्रसिद्ध अथवा व्यवहृत

१. नीरजाकात चौधरी 'भारत में आर्य बाहर से नही आये', पृष्ठ १३

2. "There is a theory, that there was a race of mankind in South India called the Dravadians entirely different from another race in India called the 'Aryan' and that South Indian Brahmins are the only Aryans that came from the North...... Do not believe in such silly things...... the whole of India is Aryans nothing else" —Vivekanand.

3. Astronomical Tables in India must have been constructed by the principles of Geometry. . Some are of opinion that they have been framed from the observations made at a very remote period, not less than 3 thousand years before the Christian Era (this has been conclusively proved by Bailly). Prf. Wallace in Edinberg Encyclopaedia, p. 191.

4. Not Aryans but connected with one of the Pre-Aryan races of India : Gordon Childe, 'Aryan', page 35.

थीं। ये जातियाँ अपनी सुख-सुविधाओ के अनुसार अपने पशुओ तथा अपने आहार के हेतु प्राय· अधिक सम्पन्न इलाको की ओर बढती चली जाती थीं। चूँकि उस समय नगरों और ग्रामो के बसने का प्रचलन प्रारंभ नही हो पाया था अतएव ये कबीले शिविरो मे ही अपना समय बिताकर आगे या एक स्थान से दूसरे स्थानो का परिवर्तन करते रहते थे।

चूँकि जब किसी जाति का कोई विशेष स्थान या क्षेत्र ही सीमित नही था तो उस समय राज्य या राष्ट्र की कल्पना ही संभव नही थी। इसलिए इनमें प्रारंभिक अवस्थाओ मे राज्य या क्षेत्र के प्रति विशेष आकर्षण या लगाव नही था। बहुधा कबीले वाले अपने से कम समुन्नत कबीलो पर विजय प्राप्त करके उनके स्थानों पर अधिकार कर लेते थे।

बाद में कई शताब्दियो की इस दशा के बाद उनमे राजनीतिक विकास प्रारम्भ हुआ तो उनके अनेक छोटे-छोटे राज्य बस गये जो अनेक भौगोलिक इकाइयों पर निवास करने लगे। उस समय विशाल भूखड पर एक राज्य या चक्रवर्ती राज्य की कोई निशानी भी नही थी। अतएव ऐसी जातियो के छोटे-छोटे समूह अनेक भूखंडो पर अपनी-अपनी उन्नति करते हुए विकास की ओर अग्रसर हो रहे थे।

अनेक खोजो और प्राचीन सभ्यताओ की सामग्री मिलने के आधार पर अब यह कहा जा सकता है कि आर्य जाति पश्चिम मे ईरान[1], उत्तर मे तुर्किस्तान तथा बाल्हीक, पूर्व मे चीनी तुर्किस्तान और दक्षिण मे सिंधु नदी से लेकर विंध्य तक फैले हुए भू-भाग मे निवास करती थी।[2] इन जातियो के उत्तर काल के

१. इन कथनो मे कि आर्य बाहर से आये कोई सच्चाई नही है। हमारे शास्त्रों में एक भी शब्द नही मिलेगा जिससे प्रमाणित होता हो कि आर्य बाहर से आए—हाँ प्राचीन भारत में अफगानिस्तान जरूर शामिल था। —विवेकानन्द, 'भारत का भविष्य'

२. आर्यों के पवित्र वेद से भी उक्त धारणा की पुष्टि होती है—ऋग्वेद के अध्याय ६ के सूक्त ६५।१ मे सिंधु नदी का वर्णन आया है—

प्रक्षोदसा धायसा सस्वऐषा सरस्वती धरुण मायसी पू।
प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिता सिघुरन्या॥

इसी प्रकार उक्त अध्याय के सूक्त ६५।२ मे भी सरस्वती नदी का जिक्र है। हिमवत (हिमालय) पर्वत का वर्णन यजुर्वेद के २४वें अध्याय मे—"कृमि समुद्राय शिशुमारो हिमवत हस्ती" आया है। यही नही, युजुर्वेद के २४वे अध्याय के २०वें मत्र से लेकर ३०वें मत्र तक जिन पशु-पक्षियो का जिक्र किया गया है वे सब भारत मे ही मिलते हैं। मत्र ३३ में 'शारि पुरुष वाक्'। पुरुषो की भाँति बोलने वाली मैना का भी वर्णन है जो केवल भारत में ही प्रसिद्ध है।

अथर्ववेद के पुरुष सूक्त से इस विषय मे बडी सहायता मिलती है। उक्त सूक्त ३ के मत्र ४ में "यस्या समुद्र उत् सिंधुरापो यस्मान्न कृष्टय सवभूबु" 'उत सिंधु' का स्पष्ट उल्लेख है। उक्त सूक्त के पाँचवें मत्र मे "गवामश्वाना बयसश्च", मत्र ११ में

जनजीवन में एकसी भाषा, सभ्यता, रहन-सहन का ढंग, पूजा-पद्धति, परलोक के विषय में विश्वास तथा सामान्य धारणाएँ एकसी मिलती हैं। कालांतर में आपस में हुए सपर्क के कारण इनमें विवाह-शादियां होने लगीं और एक ही आचरण मे ढल जाने के कारण आगे ये सब जातियां आर्य जाति से ही संबोधित होने लगी।

आर्य लोग अपने को सबसे श्रेष्ठ मानते थे। स्वयं आर्य शब्द का अर्थ ही सुसस्कृत होना है।[१] वेदों के एक मन्त्र में सारे संसार के मनुष्यों को आर्य बनाने की बात कही गई है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'[२] के उद्घोष से कम सभ्य, अर्ध-शिक्षित और संस्कारविहीन जनजातियों और कबीलो को सुसंस्कृत आर्य बनाने की अभिलाषा प्रकट की गई है।

रामायण के काल को प्राग्-ऐतिहासिक काल माना गया है। उस समय की कोई सामग्री प्राप्त नही होती है। बाद मे ग्रंथो के आधार पर उस समय की भौगोलिक रूपरेखा, समाज की मनोदशा का ही हाल मालूम होता है।

आर्य लोग अपने से इतर विश्वास रखनेवाले तथा कम अथवा अर्धसभ्य जातियो को विभिन्न नामो से पुकारते थे। वैदिक काल मे आर्यों की दो विशेष शाखाएँ थी— एक सुर दूसरी असुर। आर्य साहित्य मे बहुत समय तक इन दोनों जातियो के परस्पर युद्ध का वर्णन है। वेदो मे असुरों को भी आर्य माना गया है।[३] स्वय वेदो के भाष्य मे भी असुरो का प्रमुख हाथ था। हिरण्यकशिपु असुर था जो दिति (असुरो का मूल पुरुष) का पुत्र था। इसी हिरण्यकशिपु के पुत्र वाष्कल ने वेदो का उत्तम भाष्य किया है। किन्तु ऐसा विदित होता है कि कालान्तर मे असुरो के ऊपर सुरो की विजय को बहुत उत्साहित किया जाता रहा और परिणामस्वरूप असुर सुरा की अपेक्षा नीचे स्तर के माने जाने लगे। आर्यों ने अपने देशो से लगे हुए पश्चिम देशो के निवासियो को स्थान-स्थान पर असुर, दानव, दस्यु, म्लेच्छ, यवन आदि नामो से सबोधित किया है। अपने से कम सभ्य

"गिरियस्ते पर्वतो हिमवन्तोऽरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु",
१२वे मन्त्र मे "यत् ते मध्य प्रथिवि", मन्त्र २५ में—"यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु", मन्त्र ३३ मे "यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना" और मन्त्र ५१ में "वातस्य पुवामुप वामनु वात्यर्चि" उल्लेख है। इससे विदित होता है कि पृथिवी (उस समय की विदित) के मध्य मे जहाँ गौ, अश्व, वयस, पक्षीगण और हिमालये पर्वत तथा हाथी पाये जाते हैं व इसी देश मे अर्चि (लू) भी चला करती है, वह ही आर्य देश है। अब इसकी भारत से तुलना करके देखने से आर्यों की निवासस्थली भारत और उसका कुछ उत्तर भू-भाग विदित होता है।

१. अतु प्रकृतमा चरितु योग्य अर्यते वा। ऋ+ण्यत् पूज्य, साधु—शब्द कोष
२. वेद मन्त्र
३. शतपथ—देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापात्याः अस्पृधिरे

मानते हुए भी आर्य लोग इन जातियों की कार्य-कुशलताओ से भली प्रकार से परिचित थे। उनको वे आदर की दृष्टि से भी देखते थे। दानवों में मय नामक इंजीनियर तो स्वयं आर्यों के भवन आदि निर्माण में सबसे प्रमुख व्यक्ति के रूप में आता है।[1]

आर्य लोग अपने से ठीक उत्तर की ओर की जातियों के बारे मे प्राय. मौन हैं। तथापि कभी-कभी उनका आक्रामकों के रूप मे अवश्य उल्लेख मिलता है। हाँ उत्तर-पूर्व की ओर की जातियो का शक, हूण, कुशण आदि जातियों के नाम से उल्लेख आता है। स्वयं भारत के दक्षिण भागो मे रहनेवाली जातियो को आर्यों ने बानर, ऋक्ष, किरात आदि की सज्ञा दी है। रामायण काल मे विंध्य पर्वत के नीचे संभवत आर्यों का निवास नही था। सबसे पहले अगस्त्य का विंध्य पार कर समुद्र की ओर जाने का उल्लेख है।[2] सभवत यह किंवदन्ती कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को चुल्लू मे भरकर आचमन किया इस बात का प्रतीक है कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र के पास पहुँचकर अनार्य जातियो को आत्मसात कर लिया हो और यह कहानी रूपक के रूप मे ही प्रस्तुत की गई हो।

रामायण काल में अनार्यों के अनेक राज्य दक्षिण मे स्थापित थे। किष्किधा मे वानरो का राज्य था। दक्षिणी छोर पर नलनील तथा द्रविडो के राज्य थे। रामायण काल मे वस्तुत उस युग का वर्णन है जब आर्य लोग दक्षिण मे कही-कही या तो अपनी बस्तियाँ बसा चुके थे या उस दिशा मे जगली और बर्बर जातियो से लड-भिडकर उन पर विजय प्राप्त करके आगे की ओर प्रसार कर रहे थे। दक्षिण मे खरदूषण[3] तथा लंका मे आर्य गोत्रोत्पन्न रावण की क्रमश बस्तियाँ स्थापित थी। ये दक्षिण देशो की जन-जातियाँ कई अर्थों मे आर्य-सभ्यता से प्रभावित थीं और स्वयं भी उन्नतिशील थी। नल-नील की स्थापत्य मे विशेष निपुणता थी। यही कारण है कि समुद्र मे सेतु बँधने के समय उनकी इस दिशा में व्यवहृत कुशलताओ और सेवाओ का आर्यों द्वारा पूरा-पूरा लाभ उठाया गया था।

आर्यों का क्रमिक विकास, अपनी सीमाओ से उनकी आगे बढने की प्रबल अभिलाषा, कम तथा अर्द्धसभ्य जातियों पर उनके आक्रमण और अपनी भाषा, सभ्यता और संस्कृति का धीरे-धीरे विजित जातियो मे प्रसार का सबसे अच्छा और क्रमवार इतिहास पश्चिम देशो के इतिहास से दृष्टिगोचर होता है। स्वयं पश्चिमी इतिहासकार और विद्वानो ने सेमिटिक जाति पर आर्यों की विजय तथा

---

१. स्कन्ध पुराण की भूमिका—श्रीराम आचार्य

२. वही

३. मध्यप्रदेश के खरगौन नगर के निवासी इस नगर को खरदूषण की प्राचीन राजधानी मानते हैं। यह नगर नरबदा के अचल मे नीमाण क्षेत्र में है।

उन क्षेत्रों पर आर्यों के प्रसार को संसार की एक महान् देन बतलाया है।[1]

आर्यों का इतिहास साधारणतः तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग वह है जब वे पश्चिम की ओर जन-जातियो पर विजय प्राप्त करते हुए उनसे घुल-मिल गये और अपनी सभ्यता और सस्कृति को वहाँ फैलाने में सफल होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र अपने राज्य स्थापित कर लिये। दूसरे भाग में स्वय भारत मे बाह्य आक्रमणकारियो से उन्हें निबट-जूझकर स्वयं अपने अस्तित्व को बचाये रखने और अक्षुण्ण रखने के लिए एक लम्बे समय तक युद्ध करना पडा। उसका क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध है। तीसरा भाग वह है जिसमे पूर्व की ओर आर्यगण अपनी मानसिक उन्नति तथा तपसिद्धि के कारण पूर्व-देशीय जनता के हृदयो मे आर्यों के प्रति असीम सद्भावना तथा भक्ति जागृत कर उन देशो की सभ्यता, संस्कृति पर अमिट छाप छोडकर उन्हें आर्यमय बना गये। आर्य जाति की यह महान् विशेषता व उपलब्धि है कि जहाँ उसने पश्चिम के अनार्यों और जन-जातियो से सघर्ष व घोर युद्ध के बाद अपनी विचारधारा फैलाई वहाँ पूर्व मे केवल अपने महान् उच्च विचारो से उत्पन्न सर्वथा अहिंसात्मक जनक्रातियो द्वारा उसने मानसिक विजय प्राप्त की। पश्चिमी देशो ने आर्य जाति की इस महान् उपलब्धि की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मेक्समूलर (१८२३—१९००) ने लिखा है—

"यदि मैं पूरे ससार के देशो मे किसी एक ऐसे देश को ढूंढूं जिस पर प्रकृति ने उसकी सर्वोत्तम देन को न्योछावर कर दिया हो और जो अर्थ, शक्ति और सुन्दरता मे विश्व मे महान् और अद्वितीय रही हो और कुछ मानो मे सचमुच पृथ्वी पर स्वर्ग ही हो, तो मैं भारत की ओर इगित करूँगा। यदि मुझसे पूछा जाये कि किस आकाश के नीचे मानव-मस्तिष्क ने श्रेष्ठतम उपलब्धियो का विकास किया है और जीवन की महान् समस्याओ पर अधिकतम विचार-विमर्श किया है और फिर उनमे से कुछ का निदान भी ढूँढ लिया है, तथा जिन व्यक्तियो ने महान् दार्शनिक प्लेटो और काट का भली भाँति अध्ययन किया है यदि उनका भी ध्यान पूर्ण रूप से किसी ने अपनी ओर आकर्षित किया है तो वह देश नि:सन्देह भारत है।

"यदि मुझसे पूछा जाये कि हम यूरोप निवासी, जो कि केवल यूनानी, रोमन अथवा एक सेमेटिक जाति (यहूदी) के विचारो से ही परिपोषित होते रहे है, किस देश के साहित्य से उस सत्यता को प्राप्त करेगे, जोकि हमारी आत्मा को और अधिक सांसारिक बनाये या वास्तव मे इस जीवन को सही रूप से अधिक मानववादी बनाये और वह भी केवल इसी जीवन के लिये नही अपितु

1. Sir Percy Cykes

पारलौकिक जीवन को भी शाश्वत बनाये तो इसके लिए मैं भारत की ओर इंगित करूँगा।"[1]

अगले अध्यायों मे आर्यों की उस उपलब्धि का वर्णन किया जाएगा जिसमे वे पश्चिम दिशा की ओर मुडे और वहाँ पर अपने शौर्य से संसार के महानतम माने जानेवाले राष्ट्रो मे भी अपनी विजयश्री से उन्हे हतप्रभ कर दिया।

---

1. "If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty, that nature can bestow—in some parts—a very paradise on earth, I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has fully developed some of its choicest gifts, has mostly pondered on the greatest problems of life and has found solution of some of them, which will deserve the attention of even of those who have studied Plato and Kent, I should point to India.

   "And I were to ask myself from what literature, we, here in Europe, have been nurtured almost exclusively on the thoughts of the Greeks, Romans and of one Semitic race, the Jews, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more universal, in fact more truly human a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life, again I should point to India."

२

पश्चिम एशिया में आर्य-चरण

अगले अध्यायो मे हम आर्य जाति के जिस पश्चिमी भाग का वर्णन करेंगे उस भाग की कुछ रूपरेखा का ज्ञान भी कराना आवश्यक है। आर्य जाति के इस निवास-खड का पश्चिमी जगत् के उत्थान-पतन, सभ्यता और संस्कृति पर भारी और गहरा प्रभाव पडा है। रोम और यूनानी राज्यो के उद्‌भवों के पहले मानव-जाति के उत्थान के जो-जो चिह्न दृष्टिगोचर होते है उन पर अकित हुए तथ्यो ने यह प्रकट किया है कि आर्यों की प्राचीन सभ्यता का पश्चिम के देशो पर सहस्रो वर्षों तक व्यापक प्रभाव रहा। पश्चिम की जातियो के उन्नति काल मे यद्यपि इन जातियो को इस भूखड के आर्य निवासियो से सतत युद्ध करना पडा तब भी उसने इन देशो से शस्त्र-विद्या, सेना-सचालन-विधि, सभा-सचालन तथा सभ्य समाज मे प्रचलित कला और कृतियो को भी अपने में ग्राह्य कर लिया।

मूल निवास से पश्चिम की ओर आर्य जाति के इस सचलन अथवा प्रयाण के पहले ये पश्चिमी खड अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे बटे हुए थे। उनकी भाषा और रहन-सहन के अलग-अलग तरीके थे। वे बहुधा आपस में झगड़ते रहते थे। उस समय किसी सत्ता के चक्रवर्ती या सार्वभौमिक होने के चिह्न दृष्टिगोचर नही होते।

इस भूखड के पूर्व की ओर के स्थल का नाम क्षुरस्थान (क्षुर=तेज धार का स्थान) जो बाद मे चलकर खुराषान बन गया किसी समय अपने तेज धार के छुरो अथवा शस्त्रो के लिए प्रसिद्ध था।[1] इसी कारण आर्यों ने उसका नाम क्षुर-स्थान रखा था। इसी स्थान के समीप आर्य-प्रसिद्ध कुशण जिला है जिसके समीप अत्रिक नदी के कारण बुर्द जाति का निवास है।

इसी से लगा हुआ पूर्व का तुर्कमान स्थान, जिसे अब यामूत और गोकलन

---

१. सर पर्सी

जातियों ने आबाद कर लिया है, स्थित है, इसके पास ही ससार-प्रसिद्ध स्थान, जहाँ की अंगूरी शराब और मधु की उत्कृष्टता और व्यापकता के विषय मे प्रसिद्ध इतिहासकार स्ट्रेबो ने भूरि-भूरि प्रशसा की है, लगा हुआ है। जिन्दाबस्ता नामक ग्रंथ यही लिखा गया है। इस प्रदेश का नाम वाराहगण था जिसे जिंदावस्ता मे वहरकानो (Vehrkano) लिखा गया है तथा इसी को यूनानवासियो ने हरकेनिया (Hyrcania)[1] कहा है। आजकल यह प्रान्त गुरगान (Gurgan) कहलाता है।

इस भूखंड के मध्य भाग मे उर्वर्तु पर्वत श्रेणियाँ हैं। इस संस्कृत के शब्द को हिब्रू भाषा मे अररत् बतलाया गया है। यहाँ पर आर्यष् नदी है जिसे अंग्रेजो ने 'आरस' लिखा है। इस भाग मे मजनदेरान तथा जिलान के जिले हैं।

इसके उत्तर-पश्चिम में तबरिज (Tabrız) नगर तथा अजरवेजान का एक भाग है। यह भाग पहले आर्यों के पुजारियों अथवा होमकर्ताओ का निवास होने के कारण संस्कृत शब्द अध्वर्यु[2] कहलाता था जिसका अपभ्रंश अधर वयून या अजरबेजान है।[3]

पश्चिम में सागरष (Zagros) पर्वत श्रेणियाँ तथा मध्य मे दजला और फरात नाम की प्रसिद्ध नदियाँ हैं जिन्हे वर्तमान मे टिगरिस तथा यूफेरेट्स कहा जाता है।

इस भूखड मे सबसे पहले जिन राज्यो का पता चलता है वे मेद तथा परशु राज्य थे। इस भूखण्ड के दक्षिण छोर पर स्थित खण्ड का एक पश्चिमी भाग अत्यधिक प्रसिद्ध और ससार-प्रसिद्ध स्थल रहा है। इसमे कारू की घाटी स्थित है। इसी के पास अर्बुदस्थान या अरबिस्तान का इलाका है जिससे लगा हुआ ऐलम (Elam) का प्रसिद्ध क्षेत्रफल है जिसे पश्चिमी जगत् का सर्वप्रथम सम्यता-केन्द्र कहा जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि यह राज्य आर्य-सम्यता के पूर्व से ही स्थित था तथा कला-केन्द्र के रूप मे मानव-जाति की आदि सम्यता का जनक था। इसके दक्षिण मे प्राचीन परशु, जिसे प्राचीन वशो और लेखो मे भी परस शब्द से सबोधित किया गया है[4] तथा किरमान और गर्म क्षीर है। पूरे प्रदेश भर मे परशु क्षेत्र कुछ सूखा है। सस्कृत साहित्य मे इस प्रदेश को पारसीक कहा गया है।

हेलमंद नदी के डेल्टा पर शिविस्थान (वर्तमान सीस्तान) से लगा हुआ बलूच प्रदेश है इसके वर्तमान कोहख्वाजा पहाडी पर आजतक बौद्ध चिह्न तथा

---

१. सर पर्सी, फारस का इतिहास, पृ० २
2. वही, पृ० ३
३. ऋग्वेद के सूक्त १३५ में मत्र ६ मे "इमे वां सोमा अपस्वा सता इहा ध्वर्युभि भरमाणा अयं सत वायो शुक्रा अय सता।" अध्वर्यु का उल्लेख है।
४. सर पर्सी, पृ० ५

भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। परन्तु साम्राज्य भर मे सबसे अधिक ऐतिहासिक अव-शेष यहीं पाये जाते हैं। यही पर प्रसिद्ध हरिरुद्र नदी बहती है जिसे अब हरिरुद्र दरिया कहते हैं जो नीचे चलकर तेजन नदी कहलाती है।

ईरान शब्द की उत्पत्ति

फारस देश के निवासी अपने को ईरानी कहते हैं। इस देश के निवासियों को प्राचीन संस्कृत ग्रथो मे पारसीक शब्द से सबोधित किया गया है। ऐतिहासिकों के अनुसार यह ईरानी शब्द आर्य शब्द से ही बिगडकर बना है। जिंदावस्ता के अनुसार एरिया (Airiya) शब्द से आर्यों की भूमि से अर्थ लिया जाना चाहिए।[1] इसी उत्पत्ति को सर पर्सी ने भी सही माना है। इसी एरिया से एरियन तथा कालातर मे ईरान शब्द की उत्पत्ति हो गई।

वर्तमान मे इस देश के लिए व्यवहृत शब्द पर्सिया है जो यूरोप भर मे इसी नाम से प्रचलित है तथा अंग्रेज़ी साहित्य मे भी इसी नाम से संबोधित है। पहले पारस नाम का एक प्रदेश था जिसे यूनानी इतिहासकारो ने परसा (Parsa) कहा है, उसीको बाद मे फार्स कहा जाने लगा और बाद मे फारस शब्द में परिणित हो गया।[२] मूल शब्द परशु और पारस दोनो ही सस्कृत भाषा के शब्द हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि दोनो मे से कौन-सा शब्द इस देश के लिए सही रूप मे प्रचलित था। यदि यह माना जाए कि किसी व्यक्ति-विशेष के नाम पर इस प्रदेश का नामकरण हुआ हो तो परशु एक ऋषि हुए हैं अतएव परशु शब्द ठीक है। क्योकि कश्यप नाम के व्यक्ति के कारण कश्यप समुद्र तथा बाद मे कैसपियन सागर भी कहलाया किन्तु यदि उपरोक्त तथ्यो मे कोई वजन नही है और यदि यूनानियों ने भी परशु या परशुआ शब्द गलती मे लिख दिया है तो फिर पारस शब्द को ही ठीक मानना पडेगा। पारसी शब्द शुद्ध पर्सियन भाषा का है। अरब लोग इसे फारसी बोलते हैं क्योकि अरबी भाषा मे 'प' वर्ण नही है।

किन्तु इस विवाद का अन्त इस तथ्य से हो जाता है कि ये दोनों प्रान्त ही अलग-अलग थे। प्राचीन नक्शो मे दोनो नाम अलग-अलग मिलते हैं। उत्तर की ओर के प्रात का नाम परशु या परशुआ मिलता है तथा दक्षिण की ओर के प्रात का नाम फार्स या पारस मिलता है। यही मत ठीक दिखता है। इसी परशु देश ने आगे चलकर महान सक्षमान (हकमान) या अखमीनियन साम्राज्य को जन्म दिया।

1. Sir Percy Cykes . History of Persia page 5
२. वही, पृ० ५

३

पश्चिम में ऐलम साम्राज्य

ऐलम साम्राज्य की सभ्यता को नदियों की सभ्यता पुकारा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस ऐलम की एशियाई सभ्यता ही मिश्र देश की सभ्यता का जन्मस्थल है।[1] प्राचीन खोजो से पता चलता है कि लगभग ३१०० वर्ष ईसा पूर्व मिश्र देश के जहाज लेबनान तक जाते थे। किन्तु इनका फिलिस्तीन और मेसोपोटामिया मे कोई प्रभाव नही था। इस समय तक बेबीलोन की सभ्यता का तथा सेमिटिक लोगो की सुमेरियन सभ्यता के प्रकट हो चुकने का अवश्य पता चलता है। सन् १५०० ईसा पूर्व मे इन सभ्यताओ पर ऐतिहासिको के अनुसार आर्य सभ्यता का प्रभाव पडा।[2]

कारूँ घाटी मे दो प्रसिद्ध नदियाँ दजला और फरात बहती थी। पहले इन दोनो नदियो के बहाव अलग-अलग थे। वास्तव मे सहस्रो वर्षों तक इन दोनो नदियो के किनारे ही इन क्षेत्रो की सभ्यता फली-फूली। फरात नदी को सुमेरियन भाषा में जिमबीर या बुरानम (Zimbir or Buranum) कहा गया है। इस बुरानम को (बेबीलीन की भाषा मे पुरत्ता, सस्कृत पुरस्था, इसी प्रकार देखिये—झेलम का सस्कृत नाम वित्तस्ता)[3] स्थानीय लोग फिरात कहने लगे। और फिर यूरोपियन भाषा मे इसे यूफरेटस कहा जाने लगा। इन्ही नदियो के किनारे सुमेर और अक्कड के नगरो का निर्माण हुआ।[4] ओपिस (Opis) नगर का भी निर्माण हुआ। यहाँ से नदी की दो शाखाएँ हो गई हैं जिनमे ऊपर की चेल्डिश शाखा बहुत प्रसिद्ध है। किन्तु इस समय इस नेवी युग की सभ्यता के भारत के साथ कोई नाविक सपर्क के लक्षण दिखाई नही पडते। किन्तु इतिहासकार कैनेडी ने

1. Sir Percy in 'Geography of Elam', page 37
२. वही, पृष्ठ ३८
३. वही, पृष्ठ ३९
४. फारस की खाड़ी के ऊपर के भाग को सुमेर तथा उसके उत्तर-पूर्वी भाग को अक्कड़ कहा जाता है।

लिखा है कि ईसा की ७ शताब्दी पूर्व बेबीलोन तथा भारत में खूब व्यापारिक संबध थे।[1]

तिगरिस का प्राचीन सुमेर भाषा का नाम ऐदिग्न है।[2] बेबीलोन की भाषा मे इस नदी का नाम दिगलत (Diglat) है किन्तु मूल नाम के विषय में पश्चिमी इतिहासकार मौन हैं। फारसी भाषा मे तेगा बड़े छुरे या तलवार को कहते हैं। इसी आधार पर फारसी लोग इस नदी को तेगुर (Tighra) कहते हैं। इस नदी के वेग से बहने के कारण इसके यह नाम पडे हैं। किन्तु ऐदिग्न और Tigra नाम का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस नदी का मूल नाम तीक्ष्ण रहा होगा। तेखर या बाद में तेगर बन गया। आज भी भारत में तीक्षण शब्द का अपभ्रंश 'तीखा' बोला जाता है और 'ण' लोप हो जाता है। अरबिस्थान के लोग इसे दजला कहते हैं, परन्तु यह भी 'तीक्ष' का बिगडा स्वरूप मालूम पडता है। या फिर यह शब्द वेबीलोन की दिगलस भाषा का बिगडा हुआ स्वरूप है। यूनानियो ने इस नदी को तिगरस के नाम से पुकारा है।

इस ऐलम राज्य की राजधानी का नाम सूसा था, यह तिगरस नदी के बायें किनारे पर बसा था, पास ही मे उकनू नदी नहवंत पहाड से निकलती है। यह नहवत शब्द सस्कृत भाषा का ही शब्द है।[3] इस उकनूब नदी को यूनानियो ने Choapes कहा है। इस नदी का बहाव प्रसिद्ध विसितून या वतिस्तून के लेख के पास से ही है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश मे एक अदिति (Ididi) नाम की एक नदी और है जिसे यूनानियो ने कुफरत या Koparates कहा है किन्तु इसे आजकल आबेदयाज कहते है।

प्रथम इतिहास

इस ऐलम का नाम प्राचीन काल मे ऐलामतु था किन्तु यूनानियो ने इसे इलायमिस (Elymais) लिखा है। संभवत ऐलामतु शब्द पहाड का वाचक है।[4] किन्तु ऐलम की राजधानी सूसा के निवासी अपने देश को अंशन सुसूनिका (Anzan Susunka) कहते थे। वास्तव मे ऐलम पर राज्याधिकार करनेवाली कई कबीलों की जातियाँ थी। महान् इतिहासकार स्ट्रेबो तथा एलेक्जेंडर किंग ने इसका अनुमोदन किया है। इन जातियों मे प्रसिद्ध परतकिन (Paraetarkine), मर्त्य (Mardiya) इलायमिस तथा वक्षु (Uxia) थी।

---

१. जर्नल, रायल एशियाटिक सो० १८६८, आर्टी० १६
२. यह शब्द सस्कृत से मिलता-जुलता है। आगे की टिप्पणी देखिये। सर पर्सी का भी यही मत है।
३. देखिये भारत में हिमवत पर्वत
४. बेबीलोन प्रान्त का पुराना नाम

फारस के लोग इस क्षेत्र को औवज (Ouvaj) कहते थे। मध्ययुग मे इसे खुजिस्तान या खुज या हुज के नाम से पुकारते थे।[1] हालाँकि अब यह देश अरबिस्तान कहलाता है, परन्तु पुराने नक्शो मे उपरोक्त नाम से ही वर्णित किया गया है। पहले इस देश में नीग्रो जाति के आदिम वंशधर रहते थे। इस विषय मे हेरोडीटस ने लिखा है कि "कुछ एथोपिया देशवासी (नीग्रो) सूरज के निकलने के देश की तरफ से आये।" इससे यह ध्वनित होता है कि इथोपियावासी इस देश में दो तरफ से आकर बसे थे। वह आगे लिखता है कि "इन लोगो की भारतीयों के साथ सेवाओं मे नियुक्तियाँ की गईं।'[2] सूरज के निकलने के देश की तरफ से आनेवालो से स्पष्ट ही भारतीयो की ओर इशारा है। यहाँ के कुछ निवासी अनार्य यूनानी भी थे। सुस या क्षुष या कुश (Hussı or Kussı), जिसे यूनानियो ने यूक्सियन (Uxian) लिखा है। सपार्थिव (Hapartip), जो कि आगे चलकर मर्त्य (Mardiya) कहलाये, दह्य या दस्यु, द्रोपिणी (Dropini), मागर (Sagarti) जातियो से यह क्षेत्र परिपूर्ण था। प्रमुख जिले का नाम अजन (Anzan) या अशन (Anshan) था। यह नाम भी सस्कृत भाषा का प्रतीत होता है।

इन लोगो की भाषा यद्यपि सुमेरियन थी तथापि लिखावट सेमिटिक थी। कुछ लोगों के अनुसार इनकी लिखावट सुमेरियन और भाषा सेमिटिक थी। इस भाषा मे तूरानी (आर्यमूलक) शब्दो की भी भरमार है। किन्तु इन शब्दों की प्रमुखता सन् १५०० ई० पू० मे जब ऐलम एक स्वतत्र राज्य बना अधिक हो गई। वास्तव मे यह लिपि चिंहो और ग्राफ की लिपि है।

बेबीलोन के ऊर वंश के पूर्व बेबीलोन मे बास शिशुनाग (Basha-Shushinak का राज्य था।[3] इस राज्यकाल का एक लेख मिलता है जिसमे बाई ओर खुदाई पर सेमीटिक भाषा तथा दाहिनी ओर ऐलम की भाषा खुदी हुई है। किन्तु ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व अजन या अशन लिपि लगभग समाप्त होकर केवल मात्र सेमिटिक लिपि रह गई थी।

धर्म

इनके देवता का वास जंगल मे एक पवित्र जगह पर होता था। प्रमुख देवता को पवित्र या रहस्यमय (sacred & secret) माना जाता था। वही जाकर शिशुनाग रहता था। इस मुख्य पवित्र देवता के अतिरिक्त छ अन्य देवताओ को भी पूजा जाता था। उनमे से एक Amman Kashihar या अमन काशिवर

१ ओवज का ही बिगड़ा हुआ स्वरूप हुज दिखता है। पृष्ठ ५०, सर पर्सी
२. Herodotus VII (70)
३. आर्य लोग नागों को हमेशा अपना विरोधी मानते आये हैं।

था। ये लोग जब युद्ध के लिए बाहर जाते थे तो ये अपने देवताओं को भी रण-क्षेत्र में ले जाते थे। शिशुनाग वंश के एक शीलाक्ष राजा (Shilkhak) के समय का एक धातु का टुकड़ा मिला है जिससे इनकी राजधानी सूसा का अधिक हाल मालूम हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि संसार भर मे इस नगर को सबसे पुरानी राजधानी होने का श्रेय है। इस राजधानी के अतिरिक्त एक अन्य (Ke-rakha) के-रक्ष नाम का भी नगर था, जो नदी के दोनों ओर बसा हुआ था। यह चार भागो मे बटा हुआ शहर था। इसके दुर्ग की ऊँचाई ३८ मीटर थी। इस शाही नगर मे आदान या सिंहासन भी प्राप्त हुआ है। तथा ८,००० वर्ष पूर्व की पाटरी भी मिली है। इसी भूखंड के नवपुर (Nippur) नामक नगर में ईंटों का एक बड़ा टावर बना था जिसमे देवता अल-लिल (अल्लाह) का पूजन होता था। संस्कृत भाषा मे भी ईश्वर को अल कहते हैं। कहा जाता है कि यह टावर संसार मे सबसे पुराना ज्ञात साम्राज्य सुमेरियन के ऐरिष (Erieh) नगर के प्रधान पुरोहित द्वारा ही स्थापित किया गया था। नवपुर के लेख के अनुसार यह साम्राज्य फारस की खाडी के नीचे से भूमध्य सागर के ऊपरी भाग तक फैला हुआ था।

भाषा

प्रसिद्ध लेखक एच जी वेल्स ने लिखा है कि भाषाओ के एक ही बड़े समूह ने समस्त यूरोप से लेकर भारत तक को घेर रखा है। जिसमे अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मनी, स्पेनिश, इटली, यूनानी, रूसी, आरमीनियन, फारसी और भारत की विविध भाषाए सम्मिलित हैं। यह समूह भारतीय यूरोपियन अथवा आर्य कुटुम्ब कहा जाता है।[१] वही तत्त्व और एक ही व्याकरणीय विचार इस पूरे कुटुम्ब मे दिखलाई देता है। तुलना कीजिए, उदाहरण के लिए अंग्रेजी का फादर-मदर, जर्मन का बतर-मतर, लेटिन का पातर-मतर, यूनान का पातर-मेतर्, फ्रास का पेर-मेर, आर्मीनिया का एमर-मेअर तथा संस्कृत का पितृ-मातृ—एक ही से शब्द है। इसी प्रकार आर्य भाषाएँ कुछ मुख्य शब्दो मे हेर-फेर से बोली जाती हैं, जैसे जर्मन भाषा का शब्द 'फ' लेटिन भाषा मे 'प' हो जाता है।[२]

एच. एच. जास्टन के अनुसार मध्य पूर्व तथा पश्चिमी ऐशिया मे कई घुमक्कड जातियां फिरती रहती थी जो कि एक ही भाषा बोलती थी। उनको आर्य जाति कहना उचित होगा। इनको आर्य रूसी लोग कहना और उचित होगा।[३]

परन्तु वेल्स ने आर्य भाषा को ईसा से पाँच या छ सहस्र वर्ष पूर्व मे भी प्रचलित भाषा होना बतलाया है।[४]

१. H. G. Wells · Outlines of History, पृष्ठ ११८
२. वही, ११८
३. वही, ११८
४. वही, ११८

४

असुरों का आगमन और संघर्ष

सुमेरियन राज्यसत्ता से निरंतर युद्ध करनेवाली पश्चिम की एक और दूसरी घुमक्कड़ जाति थी। इस जाति का महान नेता सारगोन (Sargon) था जोकि ईसा से २७५० वर्ष पूर्व हुआ है। उसने अपनी जाति का विशाल संगठन करके सुमेर जाति को पराजित कर दिया और जो नया साम्राज्य स्थापित किया वह सुमेरियन अक्कड़ साम्राज्य कहलाया।

जिस प्रकार पश्चिम से यह सेमेटिक जाति आई थी उसी प्रकार से सुमेरियन-अक्कड़ जाति के पराभव होने के बाद पूर्व की ओर से एक और सशक्त जाति आई जो ऐलम या एलमतु जाति कहलाती थी। प्राय: इसी समय पश्चिम से एक और सेमीटिक जाति अमोरित आई। इन दोनों जातियों ने सुमेर अक्कड साम्राज्य को बीच मे धर दबोचा। अमोरित लोग बेबीलोन नामक एक नदी के किनारे के नगर मे बस गये। इसी जाति मे इब्राहीम और बाद मे यहूदी लोग उत्पन्न हुए। १०० वर्षों के निरतर युद्ध के बाद उन्होने वर्तमान टर्की पर कब्जा कर लिया। सन् २१०० ई० पू० इनका बडा राजा हम्मूरबी हुआ है जिसने बेबीलोन का साम्राज्य प्रथम बार स्थापित किया।

प्राय. इसी समय तिगरिस नदी मे ऊपर एक और असुर जाति ने नगर बसाना प्रारंभ कर दिया था। ये नगर निनेवाह् तथा असुर (Ninevah and Assur) थे। इन असुरों के शरीर की बनावट वर्तमान मे पोलेंड मे यहूदियों जैसी लम्बी नाक और मोटे ओठों वाली थी। यद्यपि एच. जी. वेल्स ने उन्हें सेमीटिक लिखा है किन्तु भारतीय ग्रंथो मे असुरो का बहुत वर्णन आया है। उनके गुरु शुक्र का होना तथा उनकी सस्कृति बिल्कुल आर्यों की-सी होने के कारण वेल्स का कथन सही मालूम नही होता।[१] वे निश्चय ही आर्यवंशी लोग थे। ये लोग लम्बी दाढ़ी रखते थे तथा घुंघराले बालो के शौकीन थे। उनके पहिनावे मे लंबी

---

१. शतपथ के अनुसार देव व असुर दोनो आर्य थे।

टोपी तथा लंबे उत्तरीय (चोगे) थे। ये हिट्टी (Hittee) लोगों से युद्ध करते रहते थे। इनको सारगन प्रथम ने पराजित कर दिया था परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेश के एक दशरथ[1] (Tushratta) ने इनकी राजधानी निनेवाह पर अधिकार कर लिया। तब इन लोगो ने बेबीलोन के विरुद्ध मिस्र देश से षड्यंत्र स्थापित किया और वहाँ से रणविद्या मे निपुणता प्राप्त की। बाद में वे अश्वारोहियों और रथों की सहायता से हिट्टियों से युद्ध करते रहे और अन्त में संधि करके बेबीलोन को विजय कर लिया।

इस समय के जो प्राचीन भित्तिचित्र मिले हैं उनकी भारत की सभ्यता से आश्चर्यजनक समानता है। एक चित्र मे एक वृद्ध जिसके हाथो मे कंकण हैं और जो सिर पर पगडी बाँधे हुए है सूत कातता हुआ बतलाया गया है। उसी प्रकार के चित्र भारत मे देखने को मिलते हैं।

उस समय के गिल-गेम्स (Gil-games) के काव्य मे प्रलय का वर्णन किया गया है। ऐसा विदित होता है कि उसी से 'होलीरिट' नामक ईसाई ग्रंथ को प्रेरणा मिली है। पश्चिम जगत के अनुसार यह सबसे प्राचीन धर्मकथा मानी जाती है।

ऐलम के एक प्रसिद्ध शासक का नाम 'क्षेम-भाव' था जिसे पश्चिमी इतिहासकारों ने खुम-वावा (Khum Baba) लिखा है। इस शासक ने बेबीलोन पर चढ़ाई की और उसे विजय करके वहाँ के मन्दिरों और भवनो का सर्वनाश किया। उसने वहाँ अपने ऐलम देवताओं को पुजवाया। किन्तु यह शासक अन्त मे बेबीलोन के विद्रोहियो द्वारा मारा गया।

इसके बाद दूसरा शासक खुमवस्तीर या क्षेमवस्त्र (Khumbastir) हुआ। इसके तथा इसके बाद के शासक गुरुड-कुकूमल (Gudur-Kukumal) ने बेबीलोन के विरुद्ध बराबर संग्राम जारी रखा और अन्त मे बेबीलोन को हरा ही दिया।

यह ऐलम राज्य वर्तमान अरबिस्तान, लूरिस्तान, पश्तकोह तथा बख्तयारी पहाडियो की श्रेणी से लगा हुआ था। दक्षिण मे लिंगा तक फैला हुआ था। उत्तर मे बेबीलोन से लेकर एक-पट्टन नगर (Ec-Batana) तक इसकी सीमाएँ थी तथा पश्चिम मे टिगरिस नदी तक फैला था।

ऐलम के प्रमुख नगरो मे करखा या केरक्ष (Kerkha) नदी पर बसा हुआ एक नगर मदाक्तू भी था। इसके अतिरिक्त खेदालू जिसे बाद में खुर्रमाबाद कहा जाने लगा अहवाज, शुस्तर तथा मलामीर थे।

---

१. भविष्य पुराण में एक स्थल पर पश्चिम के एक राजा का नाम दशरथ आया है जो म्लेच्छ था।

सुमेर

सुमेर प्रशासन के चार जिले प्रमुख थे। सुम्मा, एरब, ऊर और चौथा लर्स था। इसी प्रकार अक्कड़ राज्य के समय प्रमुख तीन भाग थे। सिप्पर, द्वितीय किश और तीसरा बेबीलोन। इसी बेबीलोन को प्राचीन काल मे बेल्डियन राज्य कहा जाता था। यहाँ का प्रसिद्ध नगर नवपुर था जिसे यूनानियों ने निपपुर लिखा है। यह आश्चर्य की बात है कि ऐसे अधिकाश नाम प्रायः या तो शुद्ध संस्कृत में अथवा उसके अपभ्रंश रूप मे मिलते हैं। इससे विदित होता है कि पश्चिमी देशों के विद्वानों के अनुसार जो यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाता है कि सुमेर और अक्कड़ राज्यो के पतन के बाद ही पश्चिम की ओर बाहर से घुमक्कड़ आर्य आये और वे अपने साथ आर्य सभ्यता, भाषा और संस्कृति लाये, सर्वथा गलत है।

इस बेबीलोन की सभ्यता ने, कहा जाता है कि भारत को गेहूँ और जौ दिया और इसके बदले में भारत ने बेबीलोन को सबसे प्रथम चावल के दर्शन कराये। इससे पूर्व इन देशों में इन अनाजो का उत्पादन नही होता था। एच जी. वेल्स ने लिखा है कि सुमेरियन व्यापार और उसके निवासियों की बस्तियों के चिह्न उत्तर पश्चिमी भारत मे पाये गये हैं। परन्तु यह पता नही चलता कि ये लोग जल या स्थल किस रास्ते से यहाँ आये।[1]

पश्चिमी इतिहासकारो ने सभ्यता के उदयकाल को निम्न भागों मे बाँटा है।

"ईसा से १८००० पूर्व से लेकर १५००० वर्ष तक के काल को प्रविष्ट काल माना है अर्थात् इस समय मनुष्य मानव बनने का यत्न कर रहा था। १५ सहस्र वर्ष पूर्व से लेकर १३००० वर्ष पूर्व तक के काल को वन्य अथवा परिवर्तनकाल कहा जाता है। इसके बाद के काल को एजीलियम् काल पुकारते है। ईसा से दस सहस्र वर्ष पूर्व से लेकर ८००० वर्ष तक के काल को न्यूलाधिक मेन अर्थात् नव पत्थर काल गिना जाता है जोकि यूरोप मे प्रारम्भ हुआ। इस काल को हेलियोलिथिक युग अर्थात् सूर्य-पत्थर-युग भी माना जाता है। आठ सहस्र वर्ष से लेकर ३००० ई० पूर्व तक के काल को यूरोप मे कांस्य युग, मिस्र मे पिरामिड युग, शाम देश में कास्य युग तथा नवपुर और इरिदु नगरो का काल गिना जाता है। कहा जाता है कि इसी काल मे सुमेरियन सभ्यता ने लिखने की कला को जन्म दिया। ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व से लेकर एक सहस्र वर्ष पूर्व तक आर्यों के विस्तार का काल गिना जाता है। इसमे भाषाओं का विकास हुआ। ईसा से एक सहस्र वर्ष पूर्व के युग को लौहकाल गिना जाता है।

---

1. Outlines of History by H. G. Wells, page 133

एक विद्वान के अनुसार भारत के द्रविड़ लोगों तथा मिस्र देश के वासियों का एक ही जन्म स्रोत था। ऐसा हक्सले विद्वान का मत है। इस मत के अनुसार बहुत पूर्व अथवा प्राचीन काल में भारत के पीतवर्णीय निवासी चीन देश तक छाये हुए थे।[1]

ग्रिफिथ टेलर नामक विद्वान ने लिखा है कि आदिम मानव के उत्थान में आर्य बनावट का विकास भी मंगोलियन मानव के रूप मे हुआ जो कि मंगोल और नार्डिक जातियो का सामान्य आधार था।[2] किन्तु यह मत अभी भी विवादास्पद है।

प्रसिद्ध विद्वान इलियट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'माइग्रेशन आफ अर्ली कल्चर' अर्थात् "प्राचीन सभ्यता की अदला बदली" मे लिखा है कि पत्थर युग की संस्कृति की यह विशेषता रही है कि वह समस्त संसार मे विस्तीर्ण होते हुए भी ऐसा विदित होता है मानो वह एक ही सस्कृति की देन हो। उसने जो ६ प्रकार की देन गिनाई, उनमें आर्यों के स्वस्तिक चिह्न को भी मंगलदायक चिह्न माना है।[3] यह विचित्र किन्तु छोटा-सा चिह्न संसार के चारो ओर तेज के साथ घूमता है। किन्तु इस चिह्न को एच. जी वेल्स ने अपनी पुस्तक में उल्टा बनाया है जोकि आर्य स्वस्तिक से सर्वथा भिन्न है।[4]

प्राचीन काल मे जो भी भित्ति-चित्र प्राप्त होते हैं उनसे सुमेरियन और अक्कड़ लोगो की सभ्यता पर भली भाँति प्रकाश पड़ता है। सुमेर लोग सिर और दाढी मुडाते थे। वे बहुधा भारत के सन्यासियों की तरह रहते थे। वे भारतीयों की भाँति ही बाएँ कंधे पर शाल भी डालते थे।

अक्कड लोग इसके विपरीत बाल तथा दाढी रखते थे। वे अपने शाल या उत्तरीय को चारो ओर लपेटकर एक हिस्सा कधे पर डाल लेते थे। यह जाति अपनी उत्पत्ति-कथा के विषय मे भारतीय पौराणिक कथाओं की भाँति ही विश्वास करती थी। इनके अनुसार इस जाति की उत्पत्ति एक 'मनु' (Ounnes) नामक मनुष्य से हुई जो आधा मत्स्य स्वरूप व आधा मनुष्य की आकृति का था। कहा जाता है कि यह मानव कही दक्षिण दिशा से आया और उसने उनको सभ्य बनाया तथा अनेक कानूनो और नियमो को बनाया। उनके अनुसार इसकी उत्पत्ति को ६ लाख ६१ हजार वर्ष हो चुके हैं। किन्तु कहा जाता है कि ये लोग संभवत: सेमीटिक हो। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। इनके प्रमुख नगर का नाम

1. Wilfrid "Seaven blunt" in above, page 103
2. Outlines of History by H. G. Wells, page 103
3. Ibid, 103
4. Ibid, Page 133

नफ्पुर अथवा (Nippur) था। यह और अक्कड़ लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे।

सुमेर लोगों का प्रसिद्ध मंदिर 'सिद्ध गृह' (Ziggurath) में था। वे कुछ अच्छे देवताओं में तथा कुछ दुष्ट आत्माओं मे विश्वास करते थे। दक्षिण-पश्चिम हवाओं में से वे दानवों का आना बतलाते थे। ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए पुजारी ही माध्यम होता था, जिसके द्वारा वे अपनी मनोकामना पूर्ण कराते थे। इन दुभाषियों को वे पतेसी (Patesi) कहते थे।

ये लोग विशेषकर तीन देवताओं मे या 'त्रिदेव' मे विश्वास करते थे। आकाश का देवता अनु था, अथाह जल का देवता 'ई' (EA) तथा पृथ्वी का देवता 'बलि' (Bel) था। ये लोग दूसरे लोक अथवा परलोक में भी विश्वास करते थे, जहाँ उन्हें भूख, प्यास तथा कष्टों से मुक्ति मिलती थी। मृत्यु हो जाने के बाद सुमेर लोगों को अपने पुजारी को 'कर' देना पड़ता था। जिसमे बहुधा शवस्थान पर रखे जानेवाले पात्र के से ७ पात्र, मदिरा,४२० रोटियाँ, १२० नाप गल्ला, १ वस्त्र, एक बकरी का बच्चा, १ पलग और एक गद्दी देनी पड़ती थी।[१]

भारत की भाँति सुमेर लोगों मे भी जल-प्रलय की कथा प्रचलित है। जहाँ तक सुमेर लोगो की सबसे प्राचीन भाषा का पता चलता है वह लगभग दो सहस्र वर्ष ई० पूर्व की मानी जाती है। 'स्यात शुद्ध' (Ziad Suddu) नाम के एक पुजारी राजा को उसके देवता अकि (Enki) ने उसे होने वाले जल प्रलय का बोध करा दिया था। परिणामस्वरूप उसने एक नाव मे ७ दिन ७ रातों तक अपने समस्त पशुओं आदि को रखा। सात दिन के बाद अंधकार को चीरकर जब सूर्य निकला तो प्रसन्नता मे उसने देव को प्रसन्न करने के लिए बैल तथा बकरे की बलि दी। फिर अल्लिल का विधिवत् पूजन किया। जैसा ऊपर बताया गया है सुमेर लोगो के प्रसिद्ध नगर सूसा और अनशन थे।

ईसा से ३ सहस्र वर्ष पूर्व लगश (सुमेर) का राजा इन्नातुम था। उसने अपने पड़ोसी राजा उम्मा को हराया। सुमेर तथा अक्कड़ दोनों राज्य ऐलम को अपना शत्रु मानते थे। और वे उसे बराबर शक्तिहीन करने की चेष्टा करते रहते थे।

इन्नातुम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इज्जातुम द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके समय मे सर्वप्रथम पुजारी लिपि मिलती है। इस सुमेर वश के पतन के बाद फिर अक्कड़ वश चला। यह एक किश द्वारा चलाया गया था। इसके राजा मनिश्तु ने अंशन पर भयंकर आक्रमण करके उसे लूटा तथा राजा से अपार धन

१. ये सारी प्रथाएँ 'भारतीय प्रथाओं' से मिलती हैं। कुछ अन्तर के साथ आर्य लोग भी त्रिदेव को मानते हैं। इसी प्रकार परलोक तथा वहाँ की कल्पनाएँ और श्मशान कर भी आर्यों में प्रचलित रहा है।

प्राप्त किया। यह वृत्तांत नवपुर के एक बर्तन पर खुदा मिला है।

सन् २८०० ई० पू० में अक्कड़ वंश के एक प्रसिद्ध राजा अगाधि (Agade) का पता चलता है। इसके काल मे अक्कड़ राज्य की बहुत उन्नति हुई। उसने सुमेर राज्य की भाषा, धर्म, जादू-टोना को ही प्रचलित कराकर उसके कानूनों का अपनी भाषा मे अनुवाद कराया। आगे चलकर पन्द्रह सौ वर्ष बाद असुर लोगों ने इन नियमों को फिर प्रचलित करवा दिया था।

ऐलम के ऊपर सरगोन का आक्रमण

फारस के बगदाद और किरमानशाह के बीच में जगरस नाम के एक जिले मे लुलुबी स्थान पर जो खोज हुई है उससे पता चलता है कि एक सेमीटिक राजा जिसका नाम 'अनु-पाणिनि' (Anu-Banini) था, उसकी कुल देवी निन्नी थी इस देवी अथवा (Ishtar) का भी उस खोज मे वर्णन आया है।

इसी समय एक और राज्य का पता चलता है। यह गुटी का राज्य था जिसने बाद मे ऐलम और बेबीलोन दोनो को परास्त कर दिया। इसके अतिरिक्त इरिष नामक नगर का एक अन्य राजा उतुक्षेगल (Uta Khegol) था जिसने गुटी राजा त्रिकोन (Trikon) अथवा त्रिगुण को हराया था।

सन् २५०० ई० पू० मे लगश के एक अन्य पुरोहित राजा गुदी (Gudea) का पता चलता है। यह पुरोहित पतेसी कहलाते है। यह पतेसी शब्द संभवतः पुरोहित शब्द का ही बिगडा हुआ स्वरूप है। इस राजा ने निन गिरि-शू नाम का मंदिर बनवाया। इसके निर्माण के लिए उसने ऐलम और बेबीलोन से कारीगरो को बुलवाया था।

सन् २४५० ई० पू० मे अन्य तूर वंश का पता चला है। यह वंश तूर नाम के नगर का स्वामी था। यह बडा प्रसिद्ध वंश हुआ है। इस पर ऐलम राज्य ने चढ़ाई की। सन् २२८० ई० पू० मे कुसुरनन खडी राजा ने इस पर आक्रमण करके ईरिष नगर को नष्ट कर खाक कर दिया। इसके समकालीन 'निशिन' वंश भी २३३९ से २११५ ई० पू० तक सोलह पीढ़ियो तक चला। ये लोग सुमेरियन जाति के थे।

बेबीलोन राज्य की उन्नति मे सेमिटिक लोगों का सुमेरियन बस्तियो पर काफी प्रभाव बढ गया। जसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, इस वंश का प्रवर्तक वाशा शिशुनाग था किन्तु यह वंश आस-पास के क्षेत्रों मे होनेवाली छुट-पुट लड़ाइयों के बाद भी क्षत्रण तृप्ति (Khutran tepti) के समय तक चला। इसमें एक प्रसिद्ध राजा कुक्कर नश हुआ है। इन लोगो के प्रधान मंत्रियो को सक्कुल कहा जाता था। इसके पश्चात् जब इन लोगो पर ऐलमवालो ने भयंकर आक्रमण किया तो ये लोग प्राण बचाने इधर-उधर भागे।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक मार्गेन के अनुसार ये असुरपूजक लोग तिगरिस की तराई में भागकर जा छिपे थे और वहाँ उन्होने एक नये राज्य 'असुर साम्राज्य' की नींव डाली। जो लोग सीरिया से लगे हुए समुद्र तट की ओर भागे वे वही जाकर बस गये और उन्हें यूनानी लोग फोनीशियन कहने लगे।[१] इसी प्रकार उत्तरी मेसोपोटामिया मे आर्य लोगो का जो हमला हुआ उससे भागकर कुछ लोग मिस्र जाकर बस गये।[२]

इस प्रकार बेबीलोन राज्य के सेमिटिक वश का उदय सन् २२७५ ई० पू० मे हुआ जो सन् १६२६ ई० पूर्व तक चलता रहा। इसमे छठा शासक हम्मूरवी (२११३ से २०८१) प्रसिद्ध हुआ है। इसका बनाया हुआ कानून हब्बारवी बहुत प्रसिद्ध है। इस शासक का लड़का शबशु दलूम हुआ।

इसके बाद सन् २०६८ ई० पू० से लेकर १७१० ई० पू० तक दूसरा आक्रमण हुआ। यह आक्रमण हिट्टियो[३] (क्षत्रियो) ने किया था। इन लोगो ने ११ वंश तक राज्य किया। अन्त मे इन लोगो पर क्षस्सी (Kassites)[४] लोगों के नेता गधाश

---

१. फोनीशियन लोग ईश्वर को अल नाम से पुकारते थे। सस्कृत मे भी ईश्वर का नाम अल्ल बताया गया है। फोनीशिया भाषा पर तत्कालीन सस्कृत भाषा का कितना प्रभाव था, यह नीचे लिखी शब्दावली से प्रकट हो जायगा।

कोट—दुर्ग
बाल—प्रभू   कोतवाल—दुर्गपति
सेयेश—सूर्य

इसी प्रकार नरसिंह के लिए आकृति भारतीय नरसिंह की बतलाई गई है। परन्तु उसके लिए शब्द 'मलकर्थ' उपयोग मे आता है।

डाकन Dagan—मत्स्यदेव
अदिति—सूर्य
सत्यक—सत्य
ईश्वर—Ashtoreth = चन्द्र

अश्तरथ—अश्वत्थ (पीपल का वृक्ष जो फोनीशिया मे प्राय मन्दिर के आँगनों मे लगाया जाने वाला पवित्र वृक्ष है और जिसकी पूजा होती है।

देखिये History of Phonaecians by Rawlinson, page 109

अब प्राचीन भारतीय अक्षरो से फोनीशिया के निम्नलिखित अक्षरों का साम्य देखिये।

4LH7K4 7,4YULV٨HK4I4

२. Sir Percy, page 75

३. रावलिंसन ने इस जाति को खत्ती या हित्ती (Khatti or Hittie) लिखा है। खत्ती क्षत्रिय शब्द का अपभ्रंश मालूम होता है। भारत मे कई स्थानों पर क्षत्री को खत्ती कहते हैं। (Rawlinson, page 109)

४. यह भी क्षत्रिय जाति मालूम पड़ती है।

(Gandash or Gaddash) ने आक्रमण किया। यह तीसरा वंश था।

इस प्रसिद्ध जाति के विषय मे साधिकार कहा जाता है कि यह ऐलम के उत्तर मे सागरस पर्वत की ओर से इस तरफ आने वाली जाति थी।[1] इनका प्रमुख देवता सूर्याश (Suryash) (सूर्य था) यह सूर्याश शब्द भारतीयों का सूर्य और यूनानियो का हेलियो शब्द ही है।[2] इसी जाति का प्रभुत्व सन् १६२५ ई० पू० से १८८५ ई० पू० तक रहा। इसी समय मे असुर प्रदेश भी एक बड़ी शक्ति बन चुका था। इस शक्ति का नाम प्राचीन काल के लोगो ने असुर (Assur) लिखा है किन्तु बाद मे यह (Assyria) (असीरिया) कहलाने लगे जैसा कि यूनानियो ने इसके विषय मे लिखा है। यह लोग टिगरिस नदी तक फैल गये थे। सन् १५०० ई० पू० मे क्षस्सी या क्षत्रियो की असुरों के साथ हुई एक संधि का वर्णन मिलता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार हॉल ने लिखा है कि इन लोगो का देवता सूर्याश वास्तव मे आर्यों का सूर्य ही है जिसे यूनानियो ने हेलिओ (Helio) कहा है। सन् १२७५ और ११०० ई० पू० मे उत्तरी क्षेत्र के कबीलो ने असुरो पर भयकर आक्रमण किये। इन दोनो आक्रमणो से असुर जाति की काफी क्षति हुई।

इसी समय असुरो का मित्र देश से सम्पर्क हो गया। इस समय ऐलम राज्य अपने वैभव के चरम उत्कर्ष पर था। वह बढते हुए असुर प्रभाव को कैसे सहन कर सकता था। परिणामस्वरूप दोनो ओर से युद्ध हुआ। अन्त मे असुरो ने, पश्चिमी इतिहासकारो के अनुसार, ऐलम की अधीनता स्वीकार कर ली।

इस युग की एक बात विशेष महत्त्व की है। क्षत्रिय (Kassites) लोगों के जमाने मे इधर सबसे पहले रथो मे घोडे जोते जाने की परिपाटी डाली गई।

क्षत्रिय वश की बढ़ती हुई शक्ति का इससे भी भास होता है कि इस वंश के बेबीलोन के राजा कुरिगलमु (Kurigalzu) पर ऐलम के राजा क्षुर पातलि (Khur Batila) ने चढाई की। परन्तु उसके सामने वह बुरी तरह पराजित होकर पकड लिया गया और उसे बन्दी जीवन व्यतीत करना पड़ा। युद्ध मे सूसानगर को जीत लिया गया। कुछ दिनो के पश्चात् ऐलम के राजा कीर्तिन क्षत्रबाश (Kidin-Khutrubash) ने बेबीलोन को जीत लिया और अनेक सैनिको को पकड़कर बदी बना लिया जहाँ से बाद मे वह अपनी राजधानी को ले गया।

सन् ११९० ई० पू० मे ऐलम का राजा शत्रुघ्न क्षुन्द ((Shutruk-Nakhunta) हुआ। इसने बेबीलोन के राजा के साथ घोर युद्ध किया। उसने शासक को न केवल हराया ही अपितु राजधानी तथा राजमहलो की अनेक सुन्दर वस्तुओ को उठवाकर भी वह ऐलम राज्य मे ले गया। इस राजा ने

1. Sir Percy, page 78
२. हॉल, पृ० २०१

प्रसिद्ध नरसिंह (Naram Shir)[1] देवता की मूर्ति को बेबीलोन से हटवा दिया और उसे सूसा ले गया तथा मरदुक (मारुति ?) की मूर्ति को भी ले आकर उसे तीस वर्षों तक अपनी कैद में रखा। इस प्रकार भयंकर आक्रमण और उसके पश्चात् अत्याचार द्वारा उसने (ऐलम के शासक ने) क्षत्रिय वंश की कीर्ति को पूरी तरह ही नष्ट कर दिया।

शत्रुघ्न राजा का लड़का शीलाक्षिन (Shilakhak-in) जिसे शिशुनाग (Shusinak) भी कहा जाता है, उसके बाद सिंहासन पर बैठा। यह बहुत उच्च कोटि का प्रशासक तथा निर्माण का शौकीन व्यक्ति था। इस राजा ने अनेक भवनों का जीर्णोद्धार करके उन पर अंकित पूर्व के राजाओं का जो उल्लेख था, उनमें उसने अपना नाम भी जोड़ लिया।

इस शासक ने अपनी अंशनीय भाषा में सेमीटिक भाषा के शब्दों का अनुवाद कराया। इसका लाभ आगे चलकर संसार के इतिहासकारों को यह हुआ कि इतिहास काल में जो २००० वर्षों की एक रिक्ति आ गई थी, वह पूरी हो गई। कला की दृष्टि से यह ऐलम का स्वर्ण युग कहा जाता है। कला और संस्कृति का वह स्वयं भी ज्ञानी था और उनके समय में इसकी काफी उन्नति हुई। उसके समय के कांसे के खंभे बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त ईंटों पर खुदे हुए प्राचीन लेख भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

भाष वंश (सन् १८८४ ई० पू० से १०५३ ई० पू०)

अब बेबीलोन की बारी आई। उसने ऐलम शासन को हराकर मारुति की मूर्ति को पुनः प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त कर ली। इस समय यहाँ का शासक नमोसदन असुर था। इसने अपनी राज्य-सीमाएँ मेडीटेरेनियन के समुद्र तट तक फैलाईं। इसके पश्चात् बेबीलान राज्य मे वासी (Bazi) वंश का प्रादुर्भाव हो गया। १०११ ई० पू० से लेकर १००६ ई० पू० तक यहाँ तीन राजाओ ने राज्य किया। किन्तु बाद में इस राज्यवंश ने ऐलम मे ही राज्य करना शुरू कर दिया। यह राज्य सन् १०११ से लेकर १००६ ई० पू० तक कायम रहा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बेबीलोन राज्य के काल में ही गुटियन राज्य भी बड़ा शक्तिशाली था। उन लोगों ने बेबीलोन पर आक्रमणो का करना जारी रखा, जिससे वह पतनोन्मुख हो गया।

नमोसदन असुर के लड़के जिसने बेलास सिंहासन पर कब्जा कर लिया था और जिसका नाम अपलोद्धन (Aplu-iddina)[2] था, के समय मे अनेक कबीले वालों ने अक्कड़ और सुमेर राज्यों को तहस-नहस कर डाला। इन लोगों ने

१. भारत में नरसिंह भी असुरों का देव माना गया है।
२. गौतम बुद्ध के पिता का नाम भी इसी प्रकार का 'शुद्धोधन' था।

ग्रामों और नगरों को विध्वंस किया तथा आगजनी और लूटपाट से त्राहि-त्राहि मचा दी। यहाँ तक कि मन्दिरों तक को भी नहीं छोड़ा गया। इनका मुकाबला करने के लिए इसने असुरो से मित्रता की और अपनी लड़की असुरों के नेता को विवाह दी। इससे ऐलम को कुछ राहत अवश्य मिली किन्तु वह स्थाई लाभ उठाने में असमर्थ रहा। ऐलम और असुर दोनो से प्रायः बेबीलोन नगर घिरा ही रहा

चेल्डियन वंश ९७०-७३२ ई० पू० (Chaldian dynasty)

जब ऐलम इस समय संकट काल मे से गुज़र रहा था, इसी समय उस पर जंगली चेल्डियन लोगों ने आक्रमण किया। ये लोग पूर्वी अरब प्रदेश की तरफ से निकले परन्तु मेसोपोटामिया मे दक्षिण दिशा की तरफ से घुस गए। इस प्रकार इस तीसरे वंश ने भी बेबीलोन पर कब्ज़े का यत्न किया। अन्त में नमोनतक्षीर (Nabu-Natsir) (सन् ७४७ से ७३२ ई० पू०) के शासन काल में एक नई असुर जाति ने बेबीलोन पर कब्जा कर ही लिया।

५

असुर साम्राज्य

पश्चिमी इतिहासकारो के अनुसार असुर पहले एक नगर का नाम था। बाद मे जब असुर जाति ने आसपास के क्षेत्रो पर विजय प्राप्त करके उन्हे अपनी राज्य-सीमाओ से मिला लिया तो यह पूरा प्रदेश ही असुर प्रदेश कहलाने लगा। सबसे पीछे असुर शहर का उल्लेख हम्मुरबी के समय के एक पत्र से मिलता है[1] प्राय. सभी इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि जिस प्रदेश को पहले असुर प्रदेश कहा जाता था, बाद मे यूनानियो ने उसी प्रदेश को असीरिया (Assyria) कहना प्रारम्भ कर दिया और अन्त मे वही आजकल सीरिया बन गया।

परन्तु एच. जी. वेल्स का कहना है कि असुर तथा असीरिया अलग-अलग प्रदेश थे। यह जानकारी उसने किस खोज के आधार पर दी, इसका उसने कोई उल्लेख नही किया है। तथापि यह मानने मे सदेह नही है कि असुर और असीरिया एक ही क्षेत्र है।

जिस प्रकार बेबीलोन नगर का धीरे-धीरे विकास हुआ और अन्त मे वह शक्तिशाली राज्य के रूप मे परिणत हो गया, उसी भाँति असुर प्रदेश की शक्ति भी शनै -शनै. बढी और अन्त मे उसकी शक्ति बढ़ गई। इतिहास मे असुर नगर का जिक्र सबसे पहले हम्मूरबी ने तब किया है, जब यह नगर उसके विस्तार-क्षेत्र मे आ गया था। सन् १८०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक के बीच मे असुर लोग फिर स्वतत्र हो गये और उन्होने स्वतत्रतापूर्वक अपना राज्य प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले असुर शहर कलशेरघट (Kala-Sherghat) का पता चलता है। इसके बाद जहाँ आज का नीमरूद नगर बसा है उस स्थान पर पहले कल्कि या काला या कलख नाम का नगर स्थापित हुआ था। यही आगे चलकर असुरो की प्रसिद्ध राजधानी निनेवाह के नाम से ससार प्रसिद्ध हो गई।

---

1. Winckler, page 180

जहाँ बेबीलोन के जन्मदाता उच्च घराने के सामंत लोग थे वहाँ असुर प्रदेश के जन्मदाता साधारण श्रेणी के कृषक-वर्ग में से उत्पन्न हुए व्यक्ति थे। इन कृषकों में से ही असुरों की संसार प्रसिद्ध सेना का निर्माण होता था। ऐसा भी कई बार हुआ है कि असुर प्रदेश में जब सैनिकों की कमी हो गई तो बाह्य प्रदेशों से भी सेना की भरती जारी की गई। असुर वाणीपाल के इतिहास-लेखकों से इन तथ्यों पर काफी प्रकाश पडता है। ऐसा प्रथम उल्लेख क्षत्री सम्राट कराइन दस्यु (Kassite Karain-Dashue) और असुर राजा असुर रिम्नी-शिशु (Assur Rimni-Shishu) का है। दूसरी पीढ़ी के बाद फिर एक अन्य राजा असुर उबेलित (Uballit) द्वितीय तथा इसी समय मिश्र के शासक अमीनोफस चतुर्थ का वर्णन है। इस वर्णन मे असुर राजा ने अपने पितामह राजा असुर नदिन अखि (Nadin Akhi) का उल्लेख किया है जिसकी ओर से एक पत्र संभवत अमीनोफस तृतीय को लिखा गया था।

सन् १३०० ई० पू० से असुर राजा अदिति नरहरि (Adad Nirari) ने मितान्नी राज्य पर कब्जा कर लिया। इसके साथ ही उसका प्रभुत्व समस्त मेसोपोटामिया पर छा गया। सन् १२७० ई० पू० मे उसके लड़के शालिवाहन असुर (Shalmanesar) प्रथम ने कल्ह्व राजधानी जो तिगरिस और अपर जाव के बीच मे बसी थी, पर कब्जा कर लिया। इसके बाद ही उसका मितान्नी[१] क्षेत्र पर भी कब्जा हो गया। सन् १२४८ ई० पू० मे इस वश के एक राजा तिक्षुली निनिवी (Tukuli Ninivi) ने बेबीलोन पर, जिसे ऐलम क्षेत्र वालों ने अत्यधिक परेशान कर रक्खा था, आधिपत्य कर लिया। किन्तु इसी बीच जब असुर लोग अपनी लडाई मे उलझ गये तो बेबीलोन फिर स्वतन्त्र हो गया।

ईसा पूर्व सन् ११०० के लगभग असुर जाति एक महान् शक्ति बन गई। त्रिगलथपाल असुर प्रथम (Trigalathpaleser) या त्रिगलथपालेश्वर ने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और अपनी सीमा को तिगरस के उद्गम तक जा पहुँचाया। जहाँ पर आज भी उसकी प्रतिमूर्ति (effigy) रखी हुई है। इस प्रतिलिपि के नीचे उसकी तीन विजयश्री का उल्लेख वर्णित है। प्रथम मे उसने जब पश्चिमी ईरान को जीता था। इसके बाद उसने क्षत्रियो (Hitties) को हराकर मेडीटरेनियन प्रदेशो को विजित किया था। एक विजयश्री मे अर्वद के एक बेड़े का बड़ा मनोरंजक वर्णन किया गया है। जब उसने मिस्र देश पर आक्रमण करने का विचार किया तो वहाँ के शासक ने सन्धि द्वारा उसे मकरो की आकृतियाँ भेंट की। इस शासक के काल मे असुरो का पराक्रम बराबर बढ़ता ही चला जा रहा था। कुछ वर्षों मे उसने बेबीलोन पर

१ यह मितान्नी अथवा मिताणि जाति आर्य थी जो आर्य देवता मित्र की उपासक थी और इसीलिए मिताणि कहलाने लगी थी—Sir Percy

भी कब्जा कर लिया।

सन् १३०० ई० पू० में आर्यमणि (Armenian) देश जिसे प्राचीन समय में हयस्थान से सम्बोधित किया जाता था और जो अपने हय अर्थात् घोड़ों के लिए संसार प्रसिद्ध था, ने भी उन्नति करना शुरू कर दी। आर्यमणि देश के लोग अरब राज्यों मे से घुसते हुए असुर साम्राज्य मे दाखिल हो गये और उन्होंने शीघ्र ही सारे नीचे के प्रदेशों को रौंद डाला। असल मे इन लोगों ने एक प्रकार से असुर राज्य को पूरी तरह तहस-नहस ही कर दिया। इन लोगों ने वर्तमान दमिश्क, एलप्पो और सीरिया के अनेक राज्यों पर कब्जा कर लिया।

सन् १००० ई० पू० के लगभग ये लोग फोनीशिया वाले आर्यों के सम्पर्क में आये जिनसे इन्होंने पढ़ना-लिखना सीख लिया और फिर बड़े व्यापारी बन गये।

कुछ दिनो के अस्त-व्यस्त राज्य-प्रशासन के बाद असुरों ने फिर एक बार ज़ोर मारा। सन् ६०० से लेकर ७४५ ई० पू० तक ये लोग आर्यमणि देश को जीतकर चारो ओर फैल गये। इन्होंने तिगरिस के उत्तर से लेकर नेहरूल-कस्ब प्रदेश तक जिसे अब बेरुत का क्षेत्र कहा जाता है आधिपत्य कर लिया। असुरो के नियम सम्बन्धी अनेक शिलालेख यहाँ प्राप्त हुए हैं।

असुरों के काल मे नरहरि अदिनि द्वितीय का काल बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इसका समय ६११ से लेकर ८१० ई० पू० तक का गिना गया है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हॉल के अनुसार इस समय के बाद से ही सिलसिलेवार इतिहास का मिलना शुरू हो जाता है।[२]

यह राजा के एक लेख से विदित होता है कि इस राजा का पितामह त्रिगलथपाल असुर प्रथम, राजा सुलेमान और शिशक राजा का समकालीन था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध और महान् विजेता नक्षत्रपाल असुर (Assur Natsir pal) हुआ है। इसका काल सन् ८८४ ई० पू० से ८६० ई० पू० तक का गिना जाता है। इसने अपने बाहुबल से फिर असुर साम्राज्य को त्रिगलथपाल की पुरानी सीमाओं तक जा लगाया। किन्तु यह शासक अपनी निर्दयता के लिए कुख्यात है। यह उसके चरित्र पर निश्चय ही एक धब्बा है। जब उसकी आज्ञा होती थी बूढ़े, बच्चे, युवा सब व्यक्तियों को जिन्दा जला दिया जाता था।

उसका पुत्र शैलमान असुर द्वितीय हुआ। उसने अपने राज्य-विस्तार के हेतु दमिश्क पर भयकर आक्रमण किया। परन्तु कई महीनो तक उसे घेरे रहने

---

१. हयस्थान संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ घोड़े का स्थान है। आज भी रूस क्षेत्र के अन्तर्गत इस स्थान को आरमीनिया न कहकर हयस्थान कहा जाता है। रूसी भाषा में इस स्थान से जो पत्रिका निकलती है उस पर 'हयस्थान' ही लिखा रहता है।

2. Accurated history begins—Hall

के बाद भी वह उसे ले न सका। इस समय दमिश्क के शासक की यहूदी प्रदेश का शासक अहब (Ahab) सहायता कर रहा था। इन दो राज्यों के भय से असुर सदा सावधान रहते थे। यदि यह कहा जाये तो अनुचित न होगा कि इन्हीं राज्यों से सतर्क रहने के कारण असुरों को अपनी साज-सेना बलिष्ठ रखनी पड़ी जिसका परिणाम यह हुआ कि वे शक्तिशाली होते चले गये। यहाँ तक कि अन्त में वे केवल ऐलम और मिस्र को छोड़कर लगभग आसपास के प्रदेशों के राजा हो गये। किन्तु इस समय उर्वतु अथवा Ararat राज्य शनैः-शनैः उन्नति कर रहा था, जिसने आगे चलकर असुरों की सत्ता क्षीण कर दी और फिर उन्हें एक बड़े विद्रोह का भी मुकाबला करना पड़ा।

त्रिगलथपाल असुर चतुर्थ (७४५ ई० पू० से ६०६ ई० पू०)

इस असुर राजा ने अपनी शक्ति का और भी विस्तार किया। उसने पूर्व के एशिया को जीतकर ईरानी प्लेटो से लेकर मेडीटरेनियन तक के सारे क्षेत्र जीत लिये और उन पर अपनी विजय-पताका फहरा दी। अब असुरों का एक बृहत् साम्राज्य हो गया था, जो लगभग एक शताब्दी तक चलता रहा। असुर चतुर्थ ने अपना लक्ष्य बेबीलोन के शक्तिशाली शासक को बनाया और उसको प्रथम आक्रमण में ही बड़ी भारी शिकस्त दी। इस विजय के कारण उसने अपने को बेबीलोन का सम्राट घोषित किया और बेबीलोन के शासक नबोनक्षत्र (Nabu-Natsir) को अपना राज्यपाल बना लिया। अब बेबीलोन के राज्य से छुट्टी पाकर उसने उत्तर की ओर अपना ध्यान फेरा। इस समय उत्तर में उर्वतु राज्य अपनी चरम शक्ति पर था। उससे लड़ना कोई हँसी खेल नही था। असुर चतुर्थ इस बात को अच्छी तरह जानता था परन्तु उसकी विजय अभिलाषा उसे रोक नही पा रही थी। अन्त मे उसने उर्वतु राज्य पर आक्रमण कर ही दिया। परन्तु बहुत काल के लम्बे संघर्ष के बाद भी वह उसे लेने में सफल न हो सका। हाँ; इस संघर्ष में वह उस राज्य के दक्षिणी भाग पर आधिपत्य रखने में जरूर सफल हो गया। इस समय दक्षिण प्रान्त की राजधानी वान (Van) थी। सन् ७३२ ई० पू० मे उसने दमिश्क पर हमला किया। दमिश्क का मित्र फिलिस्तीन का राजा अपने मित्र की कोई सहायता न कर सका। फलस्वरूप दमिश्क के पतन से यहूदी प्रदेश फिलिस्तीन स्वयं भी पंगु हो गया। वास्तव में असुर राज्य और फिलिस्तीन के बीच में दमिश्क एक बफर (बीच मे पड़ने वाला) राष्ट्र था जिसके पतन से असुर राज्य सीधा फिलिस्तीन की सीमा-पंक्ति पर आ गया।

बेबीलोन की विजय से सुमेर और अक्कड़ जातियों के स्वामी अथवा राजा के रूप में असुर चतुर्थ की गिनती होने लगी और अब उसने प्रसिद्ध देवता 'बेल

के हाथों को ग्रहण कर लिया।[1]

असुर राजा त्रिगलथपाल फोनीशिया की आर्य जाति के सम्पर्क मे आया। यह जाति ठेठ एशिया के पश्चिमी किनारे पर जिसे आजकल इजरायल का ऊपरी भाग कहा जाता है, निवास करती थी। कहा जाता है कि संसार मे सबसे पहले नाविक या समुद्र में जलनौकाएँ चलानेवाली यही जाति थी। इनके जहाज भूमध्य सागर से स्पेन तथा भारत तक चलते थे। ये बडे कुशल व्यापारी गिने जाते थे।

असुरों के विषय मे ज्ञात है कि यह जाति लगभग ६०० वर्षों तक जीवित जाति के रूप मे विद्यमान रही और लगभग ४०० वर्षों तक इसने राज्य किया। घुडदौड के खेल मे यह जाति अपनी सानी नही रखती थी। इनके रथो को घोडे खीचते थे। ये लोग वल्कल पहनते थे तथा धनुषबाण और भालो का उपयोग करते थे।

पैगम्बर इसियाह (Prophet Isaiah) ने इस जाति के विषय मे इस प्रकार वर्णन किया है—

"देखो, ये अत्यन्त तेजी से बढ रहे हैं। इनमे से कोई भी थकता या रुकता नही है। कोई निद्रा या आलस्य के वशीभूत नही है, उनके कमर-पट्टे ढीले नही हैं, उनके जूतो के तलवे टूटे हुए नही हैं। उनके धनुष झुके हुए हें और बाणो मे पैनी धार है। इनके घोडो के सुम (flunt) की भाँति है। उनके पहियो के चक्र तेजी से अंधूरे (झंझावात) की भाँति घूमते है और उडते चले जा रहे है। उनकी गर्जना सिंहो की भाँति है। वे नव-शावको की भाँति दहाडते हुए अपने शिकारो पर टूटेगे और उसे बिना किसी विरोध के समाप्त कर देंगे। दिन मे वे समुद्र की भाँति उनके विरुद्ध गर्जन करेंगे और यदि कोई भूमि की ओर देखे तो·· देखो · सर्वत्र अन्धकार, निराशा और शोक चारो तरफ दिखाई देगा।"[2]

सन् ८७० ई० पू० में फोनीशिया की शक्ति काफी बढी हुई थी। उसके पास टायर का प्रसिद्ध नगर और जयबाल (जेबाल) शहर था। इसी वर्ष उसने अरवद या अर्वत् को जीत लिया।

सारगुण द्वितीय (७२२ ई० पू० से ७०५ ई० पू०)

इस असुर राज्य ने एक नई शाखा को जन्म दिया। इसके पूर्व मे जितने राजा हुए थे, उन्होंने पुजारियो को समस्त करो से मुक्त कर दिया था, फलस्वरूप पुजा-

१. बेल के हाथ (Hands of Bell) · पश्चिमी देशो में व अरब देशो मे सोने-चाँदी के पंजों को सम्मान की दृष्टि से सेना में आगे रखा जाता है। सम्भवत. यह पजे उसी प्रथा का पूर्व रूप रहा होगा।

2. Prophet Isiah about Assur.

रियो की सख्या अधिक बढ गई और वे मालदार भी होते गये। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लोग किसानी की तरफ कम रुचि रखने लगे। पुजारी धीरे-धीरे शक्तिशाली बनते चले गये। पिछले राज्य के समय इन पुजारियों ने जो विद्रोह का झडा उठाया उनका नेता ही सारगुण बना था। उसने सफलतापूर्वक विद्रोह का सचालन किया। अत बाद मे यही राजा हो गया। इसके समय के बाद से देशी फौजों की महत्ता कम करने की दृष्टि से किराये की फौजो का भरती किया जाना चालू हो गया।

सारगुण ने सबसे पहले ऐलम पर चढाई की। चूंकि ऐलम के कई पडोसी राजा मित्र थे। अतएव सारगुण ने उनको मिलने देने का अवसर ही नहीं आने दिया। और तत्काल ही आक्रमण करके उन्हे हरा दिया। ऐलम की सेना यद्यपि वीर थी तथापि असुरो की भांति उनके पास कवच नही थे। असुरो के पास भारी-कवच थे। उनके पास अपेक्षाकृत धनुष के बाण भी बडे और तीक्ष्ण थे और वे उन्हे चलाने मे अधिक कुशल थे। इसके विपरीत ऐलम वालो के सिरस्त्राण छोटे थे। उनमें यूनानियों की भाँति चद्राकार आकृति नही थी, उनके घोड़े बडे थे, परन्तु उनके अयालो पर गुच्छे नही लगे थे। उनके पास धनुष भी छोटे-छोटे थे। असुर लोग धनुष-बाणो के अतिरिक्त अन्य आयुध जैसे बरछे, भाले और तेगो से लैस थे। इनके पास छोटे-छोटे रथ थे। भारतीय आर्यो की भाँति ये घुडसवार कम रखते थे। परन्तु रथों पर अधिक आश्रित थे। ऐलम प्रान्त के मूसा निवासी वीर यद्यपि शूरवीर थे। परन्तु असुरो की भाँति उनमे एकजुटता का सर्वथा अभाव था। प्राय वे स्वतत्र कबीलों की एक सेना मात्र थी।

पहली लडाई दुरील के मैदान मे हुई किन्तु इसमे असुर लोग सफलता प्राप्त नही कर सके। अत कुछ दिनों के लिए युद्ध-स्थल मे शान्ति छा गई। इसी दौरान इस शान्ति काल का लाभ उठाकर सारगुण ने मिस्र पर अचानक आक्रमण कर दिया और उसे बुरी तरह पराजित कर दिया। दूसरी लडाई मे उसने क्षत्रियो (Hitties) को परास्त करके उनके राज्य को असुर साम्राज्य मे मिला लिया। क्षत्रियो की इस पराजय मे आसपास के राजा भयभीत हो गये। साइप्रस के यूनानी राजा ने तत्काल अधीनता स्वीकार करके असुर राजधानी निनेवाह मे उनके लिए भारी खिलअत भेजी।

सन् ७०५ ई० पू० सारगुण का लडका सेनाचरीब (Sennacherib) अपने पिता की मृत्यु के बाद असुरो के सिंहासन पर बैठा। इसने अपने जन्म-जात शत्रु ऐलम के साथ युद्ध-घोषणा करके उसके दक्षिणी भाग पर कब्जा कर लिया और उसे खूब लूटा। उत्तरी ऐलम मे उसने युद्ध के लिए अपने पुत्र को भेजा किन्तु वहाँ वह कुछ कर न सका और ऐलमवासियों द्वारा पकड लिया गया।

इन लडाइयो का एक परिणाम यह भी हुआ कि ऐलम राज्य मे आपस मे

भी फूट उत्पन्न हो गई। कुछ ऐलम सरदारो ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया और एक दिन ऐलम के राजा खल्लुदाश को महलो मे पकडकर मार डाला। असुरों के लिये यह एक सुन्दर अवसर था। सेनाचरीव तो इस अवसर की बाट ही जोह रहा था। उसने बदला लेने के लिए तत्काल ऐलम पर भयंकर आक्रमण कर दिया। पूरे ऐलम राज्य को ध्वस्त कर दिया गया। अपनी विजयश्री का वर्णन करते हुए स्वयं सेनाचरीव ने लिखा है कि "मैंने पहली बार मे ही ३४ किले लेकर असंख्य आश्रित व्यक्तियों को हमला करके कैद मे डाल दिया।" इन सब किलों को उसने जलाकर राख कर दिया। उसने एक स्थान पर लिखा है "मैंने इतने अधिक अग्निकाण्ड किये हैं कि जिनका धुआँ आकाश मे इस तरह छा गया है जिस प्रकार से "होम के धूम्र" आकाश मे छा जाते हैं।"[1]

उपरोक्त लेख से यह भली-भाँति विदित हो जाता है कि असुर लोग भी आर्य-संस्कृति के पोषक थे। संसार में होम-यज्ञ करने वाली जाति आर्यों के सिवाय कोई दूसरी नहीं है। अत होम के धुएँ से आकाशाच्छन्न हो जाना भारतीय उक्ति का एक उदाहरण है।

सेनाचरीव के भयंकर प्रतिशोध से भयभीत होकर ऐलम के राजा खल्लुदास का पुत्र कुधर-ननगुणादि (Kudur-Nankhundı) जोकि उस राज्य का उत्तराधिकारी भी था, अपनी प्रजा पर आई मुसीबत को देख अपनी प्राण-रक्षा के लिए जंगलो में भाग गया। अपनी विजय से उत्साहित होकर सेनाचरीव ने मदाक्ष नगर (Madaktu) तथा उससे आगे पर्वतीय प्रदेश तक उसका पीछा किया। किन्तु वहाँ अधिक वर्षा, शीत और हिमपात होने के कारण वह आगे न बढ़ सका और लौट आया।

अपनी प्रजा को इस असहाय अवस्था मे छोडकर भाग जाने के कारण कुधर अत्यत अलोकप्रिय हो चुका था। सारी प्रजा उससे नाराज थी। अतएव वह शीघ्र ही प्रजा द्वारा मार डाला गया। उसके स्थान पर उसका छोटा भाई ऊमन मिनाना (Uman Mınana) ऐलम के सिंहासन पर बैठा। इसने किसी अंश तक सफलता प्राप्त की।

सेनाचरीव को बर्फीले तूफानो मे फँसा हुआ देखकर बेबीलोन वालो ने इस अवसर से लाभ उठाना चाहा। उन्होने ईरान के नीचे हिस्से से किराये पर एक सेना बुलाई और असुरों पर भयकर आक्रमण किया। परन्तु वे बुरी तरह पराजित हो गये।

---

१. इस वाक्यांश से विदित होता है कि असुरों मे होम आदि करने की प्रथा जारी थी। वाक्य इस प्रकार है—I caused the smoke of their burning to rise into wild heaven like the smoke of great sacrifice." Sir Percy, page 87

इस प्रतिघात से सेनाचरीब अति क्रोधित हो उठा और सन् ६८९ में उसने बेबीलोन पर भयकर आक्रमण किया। बेबीलोन ने स्वभावतः मित्र होने के कारण ऐलम से सहायता चाही परन्तु वहाँ का शासक लकवा रोग से पीडित था। दूसरे उसे असुरो से भय भी था अत. उसने कोई मदद नही की। सेनाचरीब के क्रोधित आक्रमण के सामने बेबीलोन की सेनाएँ ठहर न सकी। वे रणक्षेत्र छोड़कर इधर-उधर भाग गई। सेनाचरीब ने नगर मे भारी लूट-मार, मार-काट करके पूरे नगर को जलाकर खाक कर दिया। बेबीलोन के बचे-खुचे खडहरो को एक-सा कराकर वहाँ नहर खोद दी गई ताकि बेबीलोन नगर भविष्य मे फिर कभी भी सर न उठा सके। इस प्रकार असुरो का यह भयकर आक्रमण इतिहास मे सदा याद किया जाता रहेगा।

सन् ६८१ के लगभग सेनाचरीब की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका लडका ईश्वर वर्द्धन (Isar-hadden) ६८१-६६९ ई० पू० मे गद्दी पर बैठा। इन दिनो मे बेबीलोन मे जो शासक हुआ उसने व बेबीलोन निवासियो ने १० वर्ष तक कडा परिश्रम करके फिर बेबीलोन नगर को बसाया। दुर्ग बनाकर उसमे बुर्ज, दरवाजे और भव्य प्राचीरो को निर्माण कराके उसको एक सुन्दर शहर बना दिया।

परन्तु इसी समय बेबीलोन और ऐलम राज्यो मे फिर आपस मे झगडा शुरू हो गया। ऐलम के शासक, जिसका नाम खुम्बन खाल्दश द्वितीय था, ने बेबीलोन पर चढाई कर दी। वह प्रदेशो को जीतता हुआ बेबीलोन के शिवपुर (Sippur) तक चढ आया। इन दिनो असुर लोग बाहरी सीमा की लडाइयों मे उलझे हुए थे। अतएव वे इस अन्तरकाल की ओर ध्यान न दे सके। इसके अतिरिक्त बेबीलोन मे असुरो की सेना की सख्या भी बहुत कम की। अत ऐलमवासियो ने शीघ्र ही सूसा पर विजय प्राप्त कर ली। किन्तु इसी बीच मे उनके शासक खाल्दश की मृत्यु हो गई।

उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई उर्तकु (Urtaku) सिंहासन पर बैठा। उसने बेबीलोन वालो को उनके वे देवतागण जो उसका भाई शिवपुर विजय मे लाया था, वापिस कर दिये। इस कृतज्ञता का बदला चुकाने के लिए राजा ईश्वरवर्द्धन (Isar-hadden) ने जब ऐलम मे अकाल पडा तो उसकी पूरी-पूरी सहायता की।

अब ईश्वरवर्द्धन ने अपना ध्यान मिश्र (मिस्र) की ओर फेरा। अभी तक असुरो का मिस्र पर आधिपत्य नही हो पाया था। अपनी विजय-प्राप्ति के लिए प्रबल अभिलाषा से ईश्वरवर्द्धन ने मिस्र पर चढाई की। मिस्र के एक के बाद एक नगर पर उसका आधिपत्य होता चला गया। अन्त मे पूरे मिस्र को जीतकर वहाँ के शासक को ईश्वरवर्द्धन ने अपना दास बनने को विवश कर दिया।

यह असुरों के लिए अभूतपूर्व विजय थी। क्योंकि इनके पूर्व अभी तक मिस्र के शासकों की इतनी दुर्दशा नही हुई थी।

असुर वाणीपाल (६६६ से ६२६ ई० पू०) (Assur-Banipall)[१]

ईश्वरवर्द्धन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र असुर वाणीपाल सन् ६६६ ई० पू० मे असुर राज्य के सिंहासन पर बैठा। इस समय असुर राज्य अपने स्वर्णयुग में जा रहा था। चारों तरफ उसकी कीर्ति और धाक जमी हुई थी। उसने बेबीलोन के खाली सिंहासन पर अपने भाई शमश-शुम-यूकिन Shamash-Shum-Ukin) को आसीन कर दिया।

उसके गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद ही मिस्र देश मे क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति को भडकाने मे इथोपिया के राजा तिरहा ने भारी सहायता की। परन्तु असुर सेनाओ ने चारो ओर से आक्रमण करके मिस्र देश मे विद्रोह को कठोरता के साथ दबा दिया। मिस्र देश का शासक नूबिया वहाँ से भाग गया। वाणीपाल ने मिस्र देश को त्रस्त करके बुरी तरह से बदला लिया।

सन् ६६५ ई० पू० जबकि वाणीपाल मिस्र देश मे अपनी विजय-यात्राएँ कर रहा था। ऐलम के राजा उर्तकु ने एक सेना लेकर चुपचाप तिगरिस नदी को पार किया और बेबीलोन के इलाके मे लूट-मार शुरू कर दी। उसने बडे वेग से बेबीलोन को घेर लिया किन्तु बार-बार यत्न करने पर भी वह उसे न ले सका। अतः उसने आसपास के प्रदेशो को लूट-मार करके प्रजा से भारी रकम धन वसूल किया और फिर वह अपनी राजधानी सूका को लौट गया। वहाँ जाकर कुछ समय के बाद ही वह मर गया। उसके मरने के बाद उसका भाई ऐलम राज्य की गद्दी पर बैठा। इस राजा का नाम थुम्न (Toum-man) था। इस सिंहासन का उत्तराधिकारी उर्तक का बडा लडका भी था जिसे मारने के लिए थुम्न ने अनेक कुचक्र रचे। परिणामस्वरूप ऐलम के घराने के ६० से अधिक राजकुमार वहाँ से भागकर असुर सम्राट् की शरण मे आ गये। इस बदली हुई परिस्थिति का असुर सम्राट ने फायदा उठाया और ऐलम पर आक्रमण कर दिया।

ऐलम निवासी बडी वीरता से लडे। पर असुरो के मुकाबले मे वे बहुत ही

१. असुर वाणीपाल के एक शिलालेख में उसकी वीरता का यों वर्णन है—
सूशन, मदाक्षु और दूसरे नगरो की धूल तक को मैंने असुर राज्य मे लाकर रख दिया। एक मास और एक दिन मे मैंने समस्त ऐलम राज्य को रौंद डाला है। मैने उस देश को पशुओ और भेडो तक से वंचित करके हर्ष के संगीतो की ध्वनि को भी उनसे छुडा दिया है। इस राज्य को मैंने जगली पशुओ, सर्पों, मरुभूमि के जानवरो और भेड़ियो से भर दिया है।

साधन-विहीन थे अतः वे शीघ्र ही पराजित हो गये। असुरों की सेना ने सारे ऐलम प्रदेश को रौंद डाला तथा उस पर कब्जा कर लिया।

इसी समय फिर मिस्र देश मे बगावत हो गई। वाणीपाल उसको दबाने के लिए स्वय एक सेना लेकर नील नदी की ओर रवाना हुआ। यह आक्रमण 'नील नदी के घेरे' के नाम से प्रसिद्ध है। मिस्र की बार-बार की बगावत से वाणीपाल अत्यन्त क्रुद्ध हो गया था। अत उसने उसे पूरा मजा चखाने का संकल्प किया। एक भयकर आक्रमण के बाद प्रसिद्ध नगर थीब्स (Thebes) को लेकर उसे पूरी तरह जलाकर खाक कर दिया गया। भयकर लूट-मार करके नगर-निवासियो का भारी सख्या मे कत्ले-आम किया गया। लूट-मार मे मन्दिरों को भी नही छोडा गया। प्रसिद्ध अमीन के मन्दिर (Temple of Amen) से दो पिरामिडनुमा स्तम्भो को, जो अपनी कला के लिए जगत-प्रसिद्ध थे, राजधानी निनेवा मे भेज दिया गया।

इन प्रदेशो की इस समय यह दशा हो गई थी कि असुर राजाओ के पीठ फेरते ही बगावत के घोडे खडे हो जाते थे। अत जब वाणीपाल मिस्र विजय मे लगा था, ऐलम के राजा द्युम्न ने बहुत से कबीले इकट्ठे किये और उनकी एक बडी फौज इकट्ठी करके असुर सम्राट् वाणीपाल को युद्ध के लिए चुनौती भेजी।

युद्ध-प्रिय कबीलो की इस एक बडी शक्ति से युद्ध करना कोई हँसी-खेल का काम नही था। अत असुर वाणीपाल ने इस समय बहुत ही सोच-समझकर कदम उठाना उचित समझा। उसने अपने सरदारो और मित्रो से सलाह-मशविरा किया व इस कार्य मे चली आ रही मान्यताओ के अनुसार उसने देवताओ की सम्मति भी ली। उनकी सम्मति मिलने के बाद असुरो ने ऐलमवासियो का युद्ध-निमत्रण स्वीकार कर लिया और बडे वेग से उन पर आक्रमण किया।

सन ६५६ ई० पू० मे सूसा नगर के समीप एक बहुत बडा युद्ध हुआ जिसे तुल्लिज का युद्ध (Battle of Tullız) कहा जाता है। असुरो की एक बडी सेना का बाँया पार्श्व इस समय कारुन नदी पर स्थित खजूरो के बाग के दक्षिणी ओर तैयार खडा था। क्योंकि शीघ्रता मे इस नाकेबन्दी से त्राण पाने के लिए ऐलमवासियो को समय की बहुत आवश्यकता थी तो भी सूसा की हार निश्चित थी। अत ऐलम राजा द्युम्न किसी तरह समय निकालना चाहता था। किन्तु वाणीपाल ने ऐलम राजा की समय निकालने की चाल को भाँप लिया और उसने शीघ्र ही लडाई छेड दी।

शीघ्र ही दोनो सेनाओ मे आमने-सामने से लडाई छिड गई और भयकर मार-काट शुरू हो गई। इसी बीच ऐलम की फौज मे से कुछ गद्दार सिपाहियो ने बगावत कर दी। इनमे से एक सिपाही ने दौड़कर द्युम्न पर भयकर वार करके

उसे मारना चाहा। किन्तु द्युम्न ने शीघ्र ही यह सब देख लिया और इसके पूर्व कि सिपाही का वार उस पर पडे, उसने युद्ध-क्षेत्र मे लड रहे अपने पुत्र को चिल्लाकर कहा कि वह स्वयं ही दौडकर अपने पिता का वध कर दे। कही इस देश-द्रोही के हाथो से उसकी मृत्यु न हो। किन्तु घमासान लडाई के कारण वह उसकी सहायता नही कर सका। ऐलमवासियो ने अपने राजा का सिर काट लिया जो बाद मे उपहारस्वरूप असुर राजधानी निनेवाह में भेज दिया गया। उसके साथियो को पकड लिया गया और बाद मे उन पर भयकर अत्याचार किये गये। उनकी जीवित अवस्था मे ही खाल खीचकर उनके शवों को चील-गृद्धो के भोजन हेतु भेज दिया गया। असुर वाणीपाल के विषय मे प्रसिद्ध इतिहासकार रावलिसन ने लिखा है कि उसके सामने २१ राजा मस्तक नवाते थे और उसके चरण चूमने मे गौरव का अनुभव करते थे। इन राजाओ के प्रमुख राज्य ये हैं—

जूडाह, ईडम, मोआव, गजा, अश्किलन, इकरान, जेबल, अर्वद और साइप्रस।[1]

सन् ६६४ ई० मे असुर वाणीपाल ने इन राज्यो से टैक्स के रूप मे लडकियाँ ली।

किन्तु इसी समय ऐलम की राजधानी सूसा मे फिर विद्रोह हो गया। विद्रोहियो ने वहाँ के राजा उर्तक के पुत्र क्षेमवन् ईगाश (Khumban-Igash) को गद्दी पर बैठा दिया। असुर सेना वहाँ बहुत ही थोडी-सी थी। अत क्रान्ति को को वह न दबा सकी और वहाँ से वापस लौट आई।

असुरो ने इस विद्रोह को अपना बहुत बडा अपमान समझा। वाणीपाल ने अपनी पूरी शक्ति से इन विद्रोहियो को सजा देने का सकल्प करके अपनी भारी सेना भेजी। इस विशाल सेना के सामने ऐलम की फौजें ठहर न सकी और फिर भयंकर मार-काट शुरू हो गई। विद्रोहियो को जिन्दा पकड लिया गया उनके शव और कटे हुए मस्तक असुर राजधानी निनेवाह ले गये जहाँ वृक्षो और दरवाजो पर उन्हे लटका दिया गया।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, बेबीलोन मे मम्राट् का छोटा भाई राज्यपाल था। वह किन्ही कारणो से अपने भाई से अप्रसन्न हो गया। उसकी यह हठवादिता सम्राट को पसन्द नही आई। कुछ इतिहासकारो ने लिखा है कि राज्यपाल अपने भाई के दर्पीले स्वभाव से रुष्ट हो गया था। कारण कुछ भी हो परन्तु उसने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। ऐलम के निवासी पहले इस विद्रोह के प्रति उदासीन थे। परन्तु जब असुर वाणीपाल ने उनसे उनके अत्यत लोकप्रिय देवता नाना की मूर्ति माँगी तो वे उसके विरुद्ध हो गये और उन्होने

1. Rawlinson, Page 143.

उसके भाई को विद्रोह मे सहायता देना स्वीकार कर लिया।

सम्राट ने सबसे पहले ऐलम को ही दबाना उचित समझा। उस राज्य के बार-बार के विद्रोह से वह तग भी आ चुका था।

सन् ६५१ ई० पू० मे ऐलम पर द्वितीय आक्रमण किया गया। असुर राजा को इससे अच्छा कोई दूसरा अवसर मिल ही नही सकता था। क्योकि ऐलम में उस समय भारी फूट थी और वह आतरिक कलहो से जर्जर हो रहा था।

इसी समय क्षेमवन् ईगाश के भाई दंम ऋतु (Tamma Ritu) ने ऐलम मे विद्रोह कर दिया। उसका मतव्य अपने भाई को मार कर राज्य पर कब्जा करना था। अत. इस इच्छा से प्रेरित होकर उसने एक दिन धोखे से अपने भाई ईगाश को मार डाला और शीघ्र ही सिंहासन पर कब्जा कर लिया। दंम ऋतु को सफलता तो अवश्य मिल गई किन्तु उसके राज्य का विस्तार बहुत कम हो गया, क्योकि एक अन्य विद्रोही सरदार जिसके नाम से उसका आर्य होना प्रकट होता है (यूनानियो ने इस सरदार का नाम इंडा बुगश (Inda Bugash) लिखा है।[1] समवत उसका नाम सिंधु-विग्रह रहा होगा) ने एक बडे भाग पर कब्जा कर लिया। वाणीपाल ने अपने आक्रमण मे दोनो को हरा दिया। दंम ऋतु लडाई के मैदान मे पकडा गया। उसे गिरफ्तार करके निनेवा भेज दिया गया, किन्तु वाणीपाल ने उसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। इस प्रकार द्वितीय युद्ध मे ऐलम पर असुरो का कब्जा हो गया।

ऐलम के बाद अब बेबीलोन की बारी थी। असुर राजा ने चारो ओर से निबटकर बेबीलोन पर पूरी भयकरता से आक्रमण किया। राजधानी के एक उस प्रसिद्ध स्थान पर जहां पखे वाले बैलो की मूर्तियाँ खुदी हुई थीं, वही पर पकड-पकडकर नगर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध जन-नेताओ और आम जनता का सरे-आम वध किया गया। ४० वर्ष पूर्व सेनाचरीब ने भी इसी प्रकार का कत्ले-आम किया था। बेबीलोन पर पूर्णरूपेण कब्जा कर लिया गया।

ऐलम का तीसरा युद्ध

ऐलम राज्य के अन्तर्गत रहने वाले चैल्डियन कबीलो ने अभी तक अपने उत्पातो मे कमी नही की थी, जिसके कारण न केवल अशाति ही छाई थी अपितु राज्य सेनाओ को भी उनसे युद्ध मे सलग्न रहना पडता था। अत: असुर राजा ने दम ऋतु को एक कठोर सन्देश भेजा कि या तो वह इन कबीले वालों को नियन्त्रण मे रखे अन्यथा उसका हाल उसके भाई की तरह ही होगा। वह सिंहासन से घसीटकर अलग फेंक दिया जावेगा।

१. सर पर्सी के अनुसार यह आर्य नाम है। आधुनिक फारसी भाषा मे जिसे बेग कहते हैं उसे ही स्लेव भाषा मे बुग कहा जाता है। बुग से तात्पर्य ईश्वर से है, पृष्ठ ६०

किन्तु इसी बीच एक नई घटना हो गई। कुछ कबीलो के सरदारो ने सिधु विग्रह को पकड़कर मार डाला और उसके स्थान पर उसके भाई क्षेमभवन् खल्दाश को ऐलम के राज सिंहासन पर बिठाल दिया। वाणीपाल अब अधिक दिनो तक इस विद्रोह को इस प्रकार से चुपचाप नही देख सकता था। फलत: उसने दंभ ऋतु का साथ देने की घोषणा कर दी। उसकी सहायतार्थ एक बडी सेना भेजी गई। जिसे साथ मे लेकर दभ ऋतु ऐलम की राजधानी सूसा मे घुस गया और वहाँ के सिंहासन पर पुन आसीन हो गया।

किन्तु दभ ऋतु एक निर्बल शासक था। कुछ दिनो के बाद उसके राज्य मे फिर बगावत हो गई। उसे पकड कर जेल मे डाल दिया गया। उसकी सहायतार्थ जो असुर सेना सूसा मे नियुक्त थी उसकी सख्या कम थी। अतएव विद्रोहियो ने उसे परास्त कर सूसा छोडकर भाग जाने पर विवश कर दिया।

यह सब काड असुर राजा वाणीपाल की क्रोधाग्नि को भडकाने के लिए काफी था। उसने वहाँ के तत्कालीन विद्रोही राजा को अल्टीमेटम भेजा कि वह शीघ्र ही चेल्डियन विद्रोही कबीले सरदारो को पकडकर असुर राजा के हवाले कर दे अन्यथा सजा भुगतने के लिए तैयार हो जावे। वाणीपाल नाना की मूर्ति को भी चाहता था। अत उसने उसकी भी माँग की।

खल्दाश ने इन माँगो को स्वीकार करने मे अपना अपमान समझा और उसके अल्टीमेटम को नजर अन्दाज कर दिया। फलस्वरूप युद्ध छिड गया। खल्दाश ने बडी वीरता से युद्ध का सचालन किया किन्तु असुरो की विशाल सेना और प्रबल साधनो के सामने उसका टिका रहना सर्वथा असभव था। असुरो ने चारो ओर से भयकर आक्रमण कर दिया। वे एक के बाद एक शहर लेते चले गये और उनको जला-जला कर राख करते गये। उसने ऐलम के १४ वैभव-शाली नगरो को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार जो पहले मित्र बने थे और जिन्होने बेबीलोन की अपार सम्पत्ति को लूटने मे सहयोग दिया था वे अब आपस मे शत्रु बन कर लड रहे थे। असुरो ने ऐलम सम्राटो की ३२ सोने,-चाँदी की मूर्तियो को निनेवाह भेज दिया और पुराने वीरो की कब्रो मे से हड्डियो को निकाल कर उनका भारी अपमान किया। एजकिल ने लिखा है कि ऐलम के चारो तरफ उनकी कब्रो के ढेर बन गये। सब निवासी तलवार के घाट उतार दिये गये थे।[1]

१६३५ वर्षो के बाद नाना देव की मूर्ति वापिस ऐरिच नगर को भेज दी गई।

असुर वाणीपाल ने सूसा को तबाह करके क्षेमवन खल्दाश और उसके भाई दम ऋतु को अन्य दो राजाओ के साथ घोडो की तरह बग्गी मे जोतकर असुर और Istar के मन्दिरो की यात्रा सम्पन्न की।

इस प्रकार ऐलम का वैभव सर्वदा के लिए समाप्त हो गया।

1. Ezekiel XXXII P. 34

६

पारसीक आर्य

ईरान के मैदानो की गर्मी और उमसे घबडाकर जब यात्री ऊपर के पहाड़ी हिस्सो मे चढना प्रारम्भ करता है तो ईरान का वास्तविक दृश्य प्रारम्भ हो जाता है। हरी-भरी उपत्यकाएँ और रमणीय स्थलो की यहाँ भरमार है। दूर-दूर तक रग-बिरगे फूलो से और झरनो से अलकृत घाटियाँ मन को स्वभावत. मोह लेती है।

अपनी प्राचीन सभ्यता मे रह रहे आदिमवासियो की अपेक्षा अब हम नये सभ्य युग की भूमि पर आते हे। यहाँ आर्यो की सभ्यता का हमे दर्शन होता है। यद्यपि असुरों और बेबीलोन की समाज रचना ने इन पर भी प्रभाव डाला है तथापि आर्य जाति जो अभी तक उत्तरी इलाको मे उलझी हुई थी, अब दक्षिण-वासी सेमिटिक जातियो मे सघर्षो की कहानी शुरू करती है और यह कहानी अन्त मे आर्यो की पूर्ण विजय के साथ समाप्त होती है।

ऐसा विदित होता है कि आर्य लोग कही आदिम घरो से निकलकर उत्तरी भू भागो मे छा गये किन्तु इतिहासकार डेनीकर के अनुसार "आर्य भाषाओ का कुटुम्ब" और समवत "प्राचीन आर्य सभ्यता" जोकि बाद मे अनेक वर्गों मे विभाजित हो गई को ही सही दृष्टिकोण माना जाता है।[1]

सर पर्सी स्काइज के मतानुसार हमे आर्य जाति के पैदा होने पर गर्व है किन्तु सुमेर सेमिटिक तथा मेडीटरेनियन समुद्रो की सभ्यताओ का भी आभारी होना चाहिए जहाँ से कि घुमक्कड आर्यो ने बहुत कुछ सीखा।[2]

आर्यो के मूल निवास के बारे मे पश्चिमीय विद्वानो मे भारी मतभेद है, तब भी इस विषय पर विचार करने के लिए कुछ स्रोत अवश्य हैं। ऐसा मालूम होता है कि आर्य जाति मूलत उस देश की निवासी थी जहाँ केवल दो या तीन मौसम

---

1 Deniker 'The Races of the men' Page 318

2 Sir Percy Sykes, Page 96

होते थे। उनकी भाषा से उनका तराइयो मे रहने वाला प्रकट होता है क्योंकि पहाड़ों और जंगलो का उनमे प्रायः अभाव है। वृक्षो के नामो मे भी प्राय: दो तीन वृक्षो का नाम आता है।

चूँकि ईरान मे ये लोग उत्तर से आये थे अत इन तथा अन्य आधारों से इनका खुरासान के उत्तर से आना प्रकट होता है। कुछ विद्वानो के अनुसार कास्पियन समुद्र का दक्षिणी पश्चिमी भाग ही इनका यह निवास था। किन्तु यह सत्य है कि इस प्रश्न पर अभी भी मतैक्य नही है।

ईरानी आर्यों के विषय मे यह तथ्य है कि वे एक देवोपासक थे। उनका यह विश्वास था कि उनके मूल निवास पर दुष्ट आत्मा के प्रकोप से बर्फ पडना प्रारम्भ हो गया था अत. उन्हे घर-बार छोडकर आना पडा। इससे यह परिणाम निकलता है कि बदली हुई मौसमी परिस्थितियो तथा सम्भवत मंगोलियन बर्बर जाति द्वारा खदेडे जाने पर आर्य लोग इस तरफ आ गये थे।

फर्जन्द प्रथम (Ferzend of Vendidad) के अनुसार आर्यों के छोडे हुए निवास का नाम आर्यनम मुज (Aryanem Vaejo) था।[1] जब शीत के भयकर प्रकोप से उनको अपनी स्वर्ग समान भूमि छोडनी पडी तब ये सुगद तथा मेरु (Sugada and Meru) प्रदेशो मे चले आये। आजकल सुगद को बुखारा और मेरु को मर्व कहते हैं। टिड्डियो के आक्रमण तथा बर्बरो के हमलो ने उन्हें और भी आगे खदेड कर जिसे अब बल्ख कहते हैं ला दिया। बल्ख से वे निसाया (Nicea) अर्थात् निशापुर की तरफ बढते हुए पहुँच गये। धीरे-धीरे वे हरयू (Harue)=हिरात और वैकर्त (Vackercta)=काबुल पहुँच गये। इतिहासकारो ने इनकी दो शाखाओ का वर्णन किया है। पूर्व की ओर की शाखा मे आर्यवती=(Arahavati=Archosia), हेतुमन्त (=Haetumant=Helmond) और सप्त सिंधु (=Hafta Hindu=पंजाब) रहे जबकि पश्चिम की ओर जाने वाली शाखायें उर्व (Urvatush=उर्वतुष) (वहिृगण Vehrkana=Gurgan); रग (Rhaga=Rei) तथा वरेण्य (=Varena=Gilan जिलान) की ओर चली गई।[2] इस विभाजन से भारतीय और ईरानी आर्यों पर काफी प्रकाश पडता है।

आर्य नमभुज को आजकल अजरबेजान के उत्तर की ओर स्थित माना जाता है। डी मारगन विद्वान के अनुसार यदि यह अजरबेजान का उत्तरी भाग वास्तव मे आर्य नममुज है तो आर्यों का यहाँ की अधिक लिख सकने वाली सुसस्कृत जाति अर्मीनियन से अवश्य ही सम्पर्क हुआ होगा। तुषारिक

1. "The first of the good lands and countries which I created was Arya-nem-vaejo"—Vendidad-I
2. Sir Percy, Page 97

(Tokharic) के मिलने के बाद जो कि साइबेरिया मे भारत-यूरोप (Indo-European) का अत्यन्त प्राचीन स्वरूप है, इस प्रदेश का दक्षिणी, पश्चिमी भाग भी विचार करने योग्य क्षेत्र है। यह भी हो सकता है कि उस समय इसी अजरबेजान के ऊपरी भाग को ही आर्य नमभुज कहा जा सकता हो। जिंदा-वस्ता के लेखकों द्वारा इसी तथ्य को स्वीकार किया जाना विदित होता है।

फारस में आर्यों का आगमन :

ऐसा कहा जाता है कि मेद लोग दक्षिणी रूस से फारस मे घुसे परन्तु उर्वतु (Urartu or Ararat) देशो की बलशाली जातियो को देख कर वे उनका मुकाबला न करके ईरानी प्लेटो के पश्चिम की ओर बढ गये। आर्यों की दूसरी शाखा अर्थात् फारसी कलात प्रान्त को लाँघकर खुरासान के उत्तर से पूर्वी फारस मे बस गई। यह सिंधुरूद्र (Zenda-Rud) की घाटी से फारस की खाडी तक फैल गई। इसके पश्चिमी भाग पर इलामी लोगो की सीमा लगी थी। आर्यों की तीसरी शाखा आर्य या (Aria = Bactria) वर्तमान बलख (वाल्हीक) से होकर दक्षिण पूर्व की ओर पजाब की ओर चल पडी। इन तीनो के प्रवास के बाद सरगुणो (Hyrcanians) ने वर्तमान अस्तराबाद जिले मे निवास बनाया। फारसियो के बाद किरमानी लोग आये। जिनके नाम पर किरमान प्रान्त बसा हुआ है। इसी तरह बाद मे बलूचिस्तान के Gedrosian (= जेड्रोस) तथा उत्तरी बलूचिस्तान मे Drangians (= द्रग), दक्षिणी अफगानिस्तान मे आर्यकुश (= Arachosians) बस गये। अन्त मे मेरु-(Merv) के मर्गियन तथा बलख के वखियन बसे।[1]

आर्यों के प्रवास की तिथियाँ :

वर्तमान मे ईरान के वगज केई (Boghaz kyoi) मे जोकि प्राचीन प्लीरिया (Pleria) है और जो हिटीज (क्षत्रियो) की राजधानी था, मे एक प्राचीन फारसी लिपि क्यूनी फार्म भाषा का शिलालेख मिला है, जिससे हिटीज और मितन्नियो (Mitannians) = मित्रानी मे हुई आपसी सधि का वर्णन है। यह मित्रानी जाति का उच्च वर्ग निश्चय रूप से आर्य था। इस सधि में ली गई शपथो मे से एक मे वैदिक देवताओ इन्द्र, वरुण और नासात्य बन्धु (अश्विनी कुमारो) का मित्रानियो द्वारा देवताओ के रूप मे माने जाने का न केवल उल्लेख है, अपितु उससे यह बात भी प्रमाणित होती है कि इस सधि के सन् १३५० ई० पू० मे आर्यों का हिन्दूकरण और ईरानीकरण का अभी तक विभेद

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ ६८

नहो हो पाया था। सर पर्सी के अनुसार इससे यह विदित होता है कि भारतीय सभ्यता बहुत प्राचीन नही है।[१]

डि मारगेन के मतानुसार बाल्हीक (बलख) प्रदेश मे आर्यों का आक्रमण ईसा के २५०० वर्ष पूर्व हुआ होगा और वे ईसा से २००० वर्ष पूर्व फारस मे घुसे होगे।[3] यह तथ्य इससे भी प्रकट होता है कि अभी तक क्षत्रिय (Kassite) जाति के विषय मे बहुत कुछ ज्ञान नही था। किन्तु इस तर्क के सिद्ध होने पर कि वे आर्यों की मेद जाति मे थे और उसने बेबीलोनिया के शासन के प्रथम वंश के समकालीन ही ईसा से १६०० वर्ष पूर्व मे अपनी राजसत्ता जमाई, उक्त तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है।[२]

मेद जाति के आक्रमणो ने विजित जातियों को उजाड कर सर्वनाश के कगार पर लाकर खडा कर दिया था। उनमें से बहुत से पर्वतो मे भाग गये किन्तु बहुत सो को उन्होने अपने साथ रहने की स्वीकृति दे दी। यूनानी इतिहासकार हेरोडेटस के अनुसार धीरे-धीरे जिन जातियो ने राष्ट्रो का स्वरूप ग्रहण कर लिया वे बुश (Busae); पर्तसेनी (Paraetaceni); स्त्रूशत (Struchates); आर्यपति (Arizanti) निश्चित रूप से आर्य जातियाँ थी। बुध (Budii) और मागी तूरानियन थे। इनमे से मागीजाति को आर्यो ने उस पद्धति से पूजा करते पाया जो आगे उनकी पूजा-पद्धति से मिश्रण होकर आगे बढी और जो जरस्थु के प्रभाव से जरस्थु धर्म के नाम से ही प्रसिद्ध हो गई।[3]

ये आर्य लोग लिखने से अनभिज्ञ थे। सोना और चाँदी के सम्मिश्रण तथा कासे आदि धातुओ के आभूषण पहनते थे। एक ही डठल से बनी प्राय गाड़ियो मे वे कुल्हाडी आदि लिए हुए यात्राएँ करते थे। बहुपत्नी प्रथा जारी थी। पत्नी को बलात् छीनकर लाना सामान्य बात थी। कुटुम्ब प्रथा पैतृकता पर आधारित थी। वे घोडे, पशु, गाय, बैल, बकरियाँ पालते थे। धीरे-धीरे वे खेती करना सीख गये और मकानो और गावो मे निवास करने लगे। यद्यपि वे अलग-अलग स्वतंत्र रूप से रहते थे तथापि सकट-काल मे वे एक हो जाते थे।

यह बात सर्वदा सत्य है कि कोई धर्म पुराने विश्वासो और श्रद्धाओ के बिना नही पनप सकता। यही बात आर्यों के बारे मे है। पुराने आर्य प्रकृति के पुजारी मालूम पडते है। द्यौ, प्रकाश, अग्नि, वायु और विद्युत को वे दैवीय समझ कर पूजा करते थे। अधकार[४] और अकाल को राक्षसी प्रभाव माना जाता

१. सर पर्सी की उक्त उक्ति अब सदेहास्पद है।

2. Sir Percy Page 99

3. Herodotus, Volume I

४. गाथा ओर अवस्ता मे इस विषय मे मतभेद है। अहुरमज्द या असुरमज्द के अनुसार उसने ही अन्धकार उत्पन्न किया था।

था। इस बहुदेव वाद मे स्वर्ग को देवोपरि माना जाता था। सूर्य को स्वर्ग चक्षु तथा विद्युत को उसका पुत्र माना जाता था। यद्यपि धर्म मे दंत कथाओ को जोडा जाता है, तथापि आर्यों मे सुमेरियन धर्म की भाति अच्छी आत्माओ के साथ दुष्ट आत्माओं का सम्पर्क नही रखा गया है। बल्कि प्रार्थनाओ और बलि द्वारा यज्ञ उन पर विजय करते रहते हैं। यहाँ आदमी का ऊँचा चरित्र बतलाया गया है, जहाँ सकट के समय वे भजन-पूजा बलि और समगात मे विश्वास रखते थे। वे होम[1] का रसपान भी करते थे। इन बलि और पूजा कार्यों से वे दुष्ट अंधकार और अकाल आदि पर विजय करने की भावना रखते थे। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आर्यों के आकाश, देव, वरुण और यूनानियो के ओरेन्स (Ouranos=वरुण) मे कितनी समानता है। यह देवता प्रसन्न होकर कृपा वर्षण करता था और असत्य से दूर रहता था। यह चरित्री प्रभाव ईरानियो पर विशेष परिलक्षित होता है जैसा कि दारा और हेरोडोटस के लेखों से विदित होता है।

स्वर्ग से सबधित दूसरा देव जाज्वल्यमान द्यौ है जिसे मित्र के नाम से सम्बोधित किया गया है। ये देव गण मनुष्यो के हृदय और कर्म की देख-रेख रखते हैं। ये दोनो देवता सर्वज्ञाता और सर्वदृष्टा हैं। अन्धकार के राक्षस से विद्युत के उस आरम्भिक स्वरूप अग्नि द्वारा युद्ध करते रहने के कारण अग्नि को भी उनकी गाथाओ मे विशेष महत्व का दर्जा प्राप्त है। और इन्ही देव-गणो की स्तुति गान मे आर्यों की कवित्व शक्ति का चमत्कार स्थान-स्थान पर बिखरा पडा है।

---

१. होम शब्द मोम का अपभ्र श है। आर्य लोग मोम रम पीते थे। सर पर्सी पृष्ठ १००। ऋग्वेद के अध्याय १६ सूक्त १०८ के एक श्लोक मे "तेनायान मृत्थ तम्थिवामा मोमस्य पिवत सुतस्य" कहकर सोमपान का वर्णन आया है।

७

मेद और पारसियों का धर्म

पारसीक और भारतीय आर्यों के धर्मों मे भारी समानता थी। धर्मों मे ही नही अपितु सस्कृति मे भी समानता थी। दोनो ही पुर्नजन्म में विश्वास करते हैं[1] भारतीय आर्यों के धर्म मे एक विशेषता थी कि उनके पास धर्म का मूल स्रोत लिखित रूप मे वेदो के रूप मे था। सर पर्सी के अनुसार पजाब जीतने के पूर्व आर्यों के पास यह लिखित वेद एक सहस्र छंदो मे था। ईरान और भारत मे धर्म और सस्कृति के इस विकासमान गति में आश्चर्यजनक समता थी। प्रकृति पूजा भी एक-जैसी थी।

जैसा कि एडवर्ड ने लिखा है, न केवल पूजा की पद्धति मे अपितु देवताओ के नामो मे भी एकरूपता थी। जैसे एक नाम असुर है। सस्कृत में असुर, अवस्था मे अहुर है। दूसरा नाम देव (सस्कृत मे देव अवस्ता मे दैव) यह शब्द भारतीय यूरोपियन भाषा मे "स्वर्गीय देवताओं" के लिए प्रयुक्त किया गया है। यूरोपियन भाषा मे यही शब्द देवताओ के लिए प्रयुक्त किया गया है। प्राय. थियोस (Theos = Deus, द्यौ) एक ही नाम है और फिर उसी मे से यूनानी, लेटिन फ्रासीसी तथा अग्रेजी भाषा मे Dicu तथा deity प्रयुक्त किया गया है।[2]

जातियों के आदरसूचक देवताओ मे प्राचीन वैदिक साहित्य मे दो प्रकार के देवतागण मिलते है, एक तो देव और दूसरे उनके प्रतिद्वद्वियो को असुर कहा गया है। भारत मे देवताओ को पितृभाव से सबोधित तथा असुरो को राक्षस

---

1. Zoroster Loquitur "This I will ask ; tell it me right, O, Ahur ! will the good deeds of men be rewarded already before the future life for the good comes ?"
2. Sir Percy 103 तथा हेरोडोटसन ने भी अपनी पुस्तक प्रथम भाग के पृष्ठ १३१ में सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, अग्नि, जल और मारुत को ही केवल इन जातियो द्वारा बलि या पूजा करने का वर्णन किया है।

कहा गया है जबकि दूसरी ओर ईरान मे अहुरो को पितृवश कहा गया है। अहुरो के इस सम्बन्ध के कारण ही ईरान मे धार्मिक जागृति उत्पन्न हुई है। जैसा कि भारत मे असुरों का स्थान नियुक्त किया गया है उसी भाँति ईरान में देवों का भी प्राय: निषेध किया गया है।

दोनो देशो की दन्त कथाओ मे भी भारी समानता है। सबसे अधिक समानता अस्ताचलगामी सूर्य के 'यम' नाम पर है।[1] ईरानी सहित्य में वह 'बहुतो का मार्ग प्रदर्शक' कहा गया है। और इस प्रकार उसे मृत्यु के विशाल कक्ष में सबसे पहले पहुँचने वाला बतलाया गया है। यह मृत्यु जगत का स्वामी अस्वाभाविक रूप से नही हो जाता है। उसके पास दो कुत्ते हैं—भूरे चौड़े नथुनो वाले और चार आँखो वाले "जो कि मृतको को सूँघ-सूँघ कर उन्हें अपने स्वामी के पास ले जाया करते हैं।" इसी प्रकार का संदर्भ हमे ईरानी कहानी मे भी मिलता है जहाँ कि जरस्थु रीति रिवाज मे उसे 'सगदीद'[2] कहते हैं जिस का अर्थ भी श्वान दृष्टि है। अवस्ता मे लिखा है—'चार आँखो वाला एक पीला कुछ अथवा भूरे कानो वाला एक श्वेत श्वान प्रत्येक मृत प्राणी के पास लाया जाता है ताकि उसकी निगाहो के भय से निर्जीव लाश मे राक्षस का प्रवेश न हो जावे। आज तक भी पारसियो में यह प्रथा विद्यमान है चाहे वे अपनी पुरानी परिपाटी भले ही भूल गये हो तथापि वे मरे व्यक्ति की छाती पर एक रोटी का टुकडा अवश्य रख देते है। और यदि कुत्ता उसे खा लेता है तो व्यक्ति को मृतक घोषित कर दिया जाता है। लाश उठाने वाले निम्न श्रेणी के मजदूरो द्वारा उसे दखमा (Dakhma) पर खुले हुए टावर मे रख दिया जाता है।

जरस्थ्रु :

यद्यपि ईरान देश मे इस धर्म सुधारक के बारे मे भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित थी और प्राय यह मान लिया गया था कि जरस्थ्रु कोई भी ऐतिहासिक पुरुष नही, अपितु दतकथाओ मे वर्णित कल्पना की एक प्रतिकृति मात्र है, तथापि अब जागृति के नवकाल मे यह सिद्धात रूप से तय हो गया है कि इस महान् धर्म-सुधारक व्यक्ति का आविर्भाव सर्वथा एक ऐतिहासिक तथ्य है।

जरस्थ्रु का वास्तविक नाम जरथ उष्ट्र है। जिसे लेटिन अपभ्र शो मे जोरोस्तर (Zoroster) कहा गया है। वास्तव मे यह शब्द उष्ट्र धातु से बना है जिसका अर्थ ऊँट से है। आजकल भी फारसी मे उष्ट्र को शुस्तर कहा जाता है। जरस्थु का जन्म अजरबेजान प्रान्त का माना जाता है जिसका कि प्राचीन नाम अथर्व पत्तन था (Atropatene) था। प्राचीन अथर (Athar) जिसका अर्थ

1. See the literature of Mathew Arnold
२ श्वान दृष्टि-शब्दो की समानता देखिये

अग्नि से है। और पुजारी को (जरस्थ् से पूर्व के नाम पर) अथर्वन् "अग्नि का स्वामी" कहा जाता था।[1] यूरूमिया झील के किनारे पर बसे यूरूमिया (Urumia) नाम के ग्राम मे उसका जन्म हुआ था। वह बाल्य काल से ही त्यागी, संयमशील और ध्यान मे अवस्थित रहने वाला व्यक्ति था। अपनी इस ध्यान-अवस्था मे उसने सात दृश्य देखे तथा सैकड़ो प्रलोभनो पर विजय प्राप्त की। जब जरस्थ् को सिद्धि प्राप्त हो गई तो उसने अपना प्रचार प्रारम्भ कर दिया। किन्तु प्रारंभिक दिनों मे उसे बहुत कम सफलता मिली। यहाँ तक कि उन दिनो मे वह केवल एक ही अनुयायी बना पाया।

अत. अब जरस्थ् के मन मे पूर्वी फारस की ओर जाने की प्रेरणा हुई। खुरासान प्रान्त के किश्मार स्थान पर उसे विस्ताश्व (Vistasp) (फिरदोसी की कविता का गुस्तास्प) मिला।[2] इस राजा के दरबार मे उसने वहाँ के मन्त्री के दो पुत्रों और पश्चात् मे वहाँ की रानी को अपने धर्म मे दीक्षित किया। राजा के दरबार मे उसका पाला बुद्धिजीवियो से पड गया और अनेक दिनो तक तर्क-कुतर्कों व वाद-विवादो के पश्चात उन लोगो ने जरस्थ् पर जादू-टोनो का भी प्रभाव डाला। परन्तु उन लोगो की चाल एक भी इस साधु पर न चली। अन्त मे जब वे सब पराजित हो गये तो राजा स्वय भी जरस्थ् का अनुयायी हो गया।

फरवरदीन याश्त ने लिखा है—"अहुर के जरत उष्ट्र द्वारा अनुप्राणित धर्म का अब वह सबल और सहायक बन गया और वह धर्म जो अब तक बेडियो मे जकडा पडा हुआ था, अब उसके पास से सर्वथा मुक्त कर दिया गया।"

राजा विस्ताश्व के धर्म ग्रहण करने के बाद से ही इस धर्म की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति होने लगी। किन्तु इससे एक भयंकर आघात भी हुआ। धर्म परिवर्तन की कथाएँ सुनकर मध्य एशिया की तूरानी आदि आदिवासी जातियाँ क्रुद्ध हो उठी और उन्होने राजा पर बार-बार हमले करने शुरू कर दिये। यहाँ तक कि कई वर्षो तक खुरासान मे ही यह धर्म-युद्ध चलता रहा। अन्त मे, यदि दतकथा को आधार माना जावे तो एक निर्णायक युद्ध वर्तमान सब्जावर शहर के पश्चिम मे लडा गया जिसमे हुए एक दूसरे हमले मे अत्यन्त सम्मान प्राप्त वृद्ध आयु का यह महान धर्म-प्रचारक मारा गया। कहा जाता है कि उसका शव अपने अनुयायियो के मध्य मे एक पवित्र वेदी पर गिरा था।

ऐसा कहा जाता है कि जरस्थ् मागी[3] जाति का था। परन्तु विश्वास-पूर्वक यह बात नही कही जा सकती। और न यह पता चलता है कि वह किस

1. Sir Percy Cykes Page 104 "In pre-Zorostrian days the priest was known as 'Atharvan' or guardian of fire"
2. Journal R G. S for January and February 1911
३ पुजारी जाति (ब्राह्मण ?)

काल में उत्पन्न हुआ था। अनेक विद्वानो के अनुसार वह १००० वर्ष ईसा पूर्व रहा था। जबकि विलियम जेक्सन के अनुसार उसका जन्म ६६० ईसा पूर्व हुआ और सन् ५८३ ईसा पूर्व उसकी मृत्यु हुई। इस अनुमान के प्रबल होने का एक कारण यह भी है जोकि दूसरी बात को अधिक प्रमाणित करता है वह यह कि सम्राट दारा स्वयं जरस्थु अनुयायी मत का प्रथम बडा व्यक्ति हुआ है।

मुस्लिम धर्म के अनुसार ससार के निवासी दो भागो मे विभक्त हैं। एक तो वे जिन्होने इलहाम वाली पुस्तको को प्रकट किया हो और दूसरे वे जिन्होने न किया हो। अत जरस्थु धर्म वाले प्रथम श्रेणी मे आते हैं। अवस्था ग्रंथ जरस्थु पर प्रकट किया गया था। यह पवित्र पुस्तक २१ जिल्दो और बैल-चर्म के १२००० पटलों पर सुनहरी अक्षरो से लिखी गई थी। कहा जाता है कि इसकी भाषा सक्षमान सम्राटो की भाषा से सर्वथा भिन्न है। लोगो की ऐसी धारणा है कि इस ग्रथ का बहुत-सा भाग सक्षमान सम्राटो के पतन काल के समय ही नष्ट हो गया और अब केवल थोडा-सा अंश ही अवशेष रहा है। ईसा की प्रथम शताब्दी के मध्य मे पुलकेशी (Volagases) प्रथम के शासनकाल मे फिर इसका पुनरुद्धार हुआ और आर्देशिर जोकि मसनीय वश का राजा था, के राज्यकाल मे इसको काफी लिखा गया।

जबकि ससार के बहुत से मत-मतान्तर उदाहरणार्थ बाल (Baal), असुर तथा द्यौ (Zeus) आदि समाप्त हो गये। इस धर्म को आज तक जीवित रखने मे इसके नवयुवक अनुयायियो की प्रशसा ही करनी पडेगी। अवस्ता का वर्तमान स्वरूप एक पूरी पुस्तक के रूप मे मिलता है। जिसे वदीदाद या शुद्ध विदेवत (Videvat) कहा जाता है जिसका अर्थ "दानवो के विरुद्ध कानून" का है। दूसरे कई परिच्छेदो मे पूजाविधि का वर्णन है जिसे यस्न (यज्ञ) कहा जाता है। यह पहलवी भाषा के ग्रथो मे सुरक्षित है।

अवस्ता को चार भागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) यस्न (यज्ञ) जो ७२ परिच्छेदो मे वर्णित है और इन सूक्तियो मे 'गाथा'[1] सम्मिलित है।

(२) विस्परद (Vispered) जिनका उपयोग यस्न के साथ होता है।

(३) वदीदाद धर्म पुस्तक जिसमे प्रताडना, पवित्रता, और पश्चात्ताप आदि क्रियाओ का समन्वय है।

(४) मास के विभिन्न दिनो पर अधिकार रखने वाली देव-दूतो के सम्मान मे रची सूक्तियाँ जिन्हे यश्ट कहा जाता है।

इन सब मे पुराना भाग 'गाथा' है जो शुरू मे हिन्न गान के समकालीन का।

---

१ गाथा शुद्ध सस्कृत शब्द है। देखिये "गाथान्य सुरुचोयस्य देवा आश्रण्वन्ति नवमानस्य मर्ता।" ऋग्वेद अध्याय २४, सू० १६०।१

माना जाता है। ऐसा कहते हैं कि इसके मूल में वे ही शब्द हैं जो जरस्थु द्वारा कहे गये हैं और जिनमें पवित्र चरित्र का काफी वर्णन मिलता है।

आर्य देवताओं के वर्णन के सिलसिले मे एक देवता 'वरुण' का काफी उल्लेख हुआ है। आर्य जगत् में ईरानी धारणा के अनुसार यह आकाश सम्बन्धी देव है जिसे पश्चिमी जगत् के व्यक्ति उरुण (Uranus) कहते हैं। जरस्थ्र के उपदेशों के आत्मा सम्बन्धी प्रभाव में इसी वरुण देवता को 'अहुर' अथवा 'अहुर मज्द' माना गया है। इस अहुर मज्द को "बृहत ज्ञान स्वामी", "सर्वोच्च सत्ता" और "संसार का निर्माता" कहा गया है।

सर पर्सी ने लिखा है—Under the spiritual influence of Zoroster's teachings which may be defined as the attributions of a moral character to the powers of nature, VARUNA became "The Lord" or more commonly AHURMAZD (ORMUZD) the Lord of Great Knowledge the Supreme God and the Creater of the world."

अर्थात्—जरस्थ्र धर्म के उन उपदेशो के आध्यात्मिक प्रभाव के अन्तर्गत जिन्हें प्राकृतिक शक्तियो के चरित्र सबधी आचारो के गुणो को परिभाषित किया गया है, वरुण, 'अहुर' या 'स्वामी' या सामान्यत अहुर मज्द या आरमुज अथवा बृहत ज्ञान का प्रभु, सर्वोच्च देव और ससार का निर्माता, समझा जाने लगा है।

वे तथ्य जो जरस्थु को इलहाम द्वारा प्रकट हुए थे, उनकी वार्तालाप मे प्रकट होते है। अहुर मज्द कहता है "मैं ऊपर आकाश को धारण करता हूँ जो दूर से भी दृष्टिगोचर है और अत्यत तेजपूर्ण है और जो पृथ्वी को चारो ओर से घेरे हुए है। यह एक बृहत् भवन सदृश्य है जो कि ईश्वरीय पदार्थों से निर्मित है। उसके दूरगामी सिरे अच्छी तरह से जमे हुए हैं और जो जवाहरात की भाँति तीनो लोको मे चमकता रहता है। यह नक्षत्रो से जडित एक बहुमूल्य उत्तरीय है जो ईश्वरीय पदार्थो से बना है और जिसे अहुर मज्द धारण करता है।[1]

आगे चलकर जरस्थु द्वारा वर्णित इस सर्व-व्यापक देव मे और बाद के काल मे माने जाने वाले देवताओ मे काफी अतर आ गया था। गाथा विश्वास के अनुसार एक ऐसी उदार सत्ता का अस्तित्व भी है जो 'बृहत' और केवल 'जगोत्पादक' है। अहुर मज्द के अन्य विशेषण 'शुद्ध आत्मा', 'सत्यता', शक्ति, पवित्रता, स्वास्थ्य तथा अमरत्व को भी देवस्वरूप मान लिया गया है और उनके लिए अलग-अलग सम्बोधन किया गया है। किन्तु आगे चलकर वे फिर एक ही अहुर मज्द के अनेक सामान्य सर्वनामो के रूप मे मिलते रहते है जिससे एकेश्वरवाद की प्रणाली को ही भारी बल मिलता है।

1. Yasht 13

अवस्ता के उत्तर काल मे फिर बहु देववाद के उस सिद्धांत ने जोर पकडा जिसे इस महान् प्रचारक ने जड़मूल से नष्ट कर दिया था। अहुर मज्द के विशेषणो को देवना मान कर उनकी पूजा होने लगी और प्रकृतिवाद के देवो ने फिर से अपनी जड जमा ली। मित्र की फिर पूजा होने लगी और सेमिटिक जाति की देवी की भाँति 'अनाहता' की फिर पूजा होने लगी। सक्षमान सम्राटों ने अहुर मज्द को अपने जातीय देव के रूप मे स्थिर रखा। 'विस्तून' की खुदाई में जो सामग्री मिली है उसमे सूर्य आभामण्डल के साथ यह योद्धा रूप में खडा हुआ है। यह आभामंडल पखो पर आधारित तथा पक्षी की पूछ सहित है। देव के इस अंकन को असुरों के देव (जोकि मूलत मिस्र से लाया गया है) के रूप मे प्रकट किया गया है।

अहुर मज्द के विरोध मे एक और शक्ति की कल्पना की गई है जोकि अहुर मज्द के सब शुभकर्मों की ओर से मनुष्यो की बुराई की ओर प्रेरित करती है। उस शक्ति का नाम अगरा मन्यु (Angra-Mainyu= अहकार मन) है। इसका अर्थ 'बुरी आत्मा' है। इसे फारसी लोग अहरिमान कहते हैं। यह शक्ति अहुर मज्द की उदारताओ को वधित करती रहती है। कालातर मे आर्यों के देवासुर सग्राम की भाँति ही इन दोनो सत्ताओ मे युद्ध का काफी वर्णन मिलता है। एडवर्ड ने लिखा है कि "अहुर मज्द को ऊँचे सिद्धातो के विरोध मे अहरिमान काली प्रतिच्छाया प्रस्तुत करता है।" यहाँ यह वर्णन करना आवश्यक है कि जरस्थ्रु के लिए सब बुराइयाँ एक 'द्रुज' (झूठापन) के रूप मे ही थी जैसा कि दारा ने भी माना है। परन्तु बाद के काल मे अहरिमान की कल्पना को भी बुराई की प्रतिमूर्ति के रूप मे मान लिया गया है।

जरस्थ्रु धर्म के तीन सिद्धात

वंदीदाद के अनुसार अनेक पूजापद्धतियो के सग्रहरूप मे केवल तीन सिद्धात ही सर्वोपरि हैं।

(१) कृषि और पशुपालन सर्वोत्तम कार्य है।
(२) पूरी उत्पत्ति अच्छे और बुरे मे विभाजित है।
(३) वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी अत्यत पवित्र तत्त्व हैं जिन्हे कभी भी अपवित्र नही करना चाहिए।

एक प्रश्न के उत्तर मे जरस्थ्रु ने स्वय कहा है "जो मनुष्य पशुपालन करता है पत्नी और बच्चो को भवन बनाता है—जहाँ आग जलती हो—जंगल मे पशु चरने जाते हो, और जहाँ भूमि सिंचित करके अनाज उपजाया जाता है वे सौभाग्यशाली है।" इसका तात्पर्य यह है कि कृषि की ओर धर्माचार्य का ध्यान अधिक था। पशुओ की ओर उनका ध्यान भारतीयो की भाँति ही पवित्र था।

दूसरे सिद्धांत के अनुसार अहुर मज्द ने वह सब बनाया जो अच्छा है। और सांप बिच्छु और वे कीडे-मकोडे जो कृषि को नष्ट कर डालते हैं वे सब अहरिमान की देन है।

तीसरे सिद्धात के अनुसार अग्नि की पवित्रता को सुरक्षित रखना है। इसी भाँति पानी को गदा न करने के सख्त आदेश हैं। इसी प्रकार पृथ्वी मे कोई गंदगी पैदा न हो इस कारण मृतकों की लाश को बुर्ज पर रखे जाने का रिवाज है। किन्तु बीमार व्यक्तियों को अहिरमान की देन मानकर उनका उपचार न करने की परम्परा है और केवल गौमूत्र से ही उसे पवित्र और स्वस्थ बनाये रखने का विधान है।[1]

आर्य धर्म का तूरानी सभ्यता पर प्रभाव पडे बिना नही रह सका। इसी कारण अग्नि का आदर कास्पियन समुद्र के पश्चिम मे और भी बढ़ गया है। क्योकि इस क्षेत्र मे अग्नि के चमत्कारी प्रभाव देखने को मिलते हैं जिससे वहाँ के निवासियो की अग्नि के प्रति श्रद्धा और बढ जाती है। बाकू के क्षेत्र मे बरफ-खडो मे से अग्नि-शिखाएँ निकलती देखकर पारसियो मे अधविश्वास भी बढ गया है और इस कारण पारसियो को अग्निपूजक कहा जाता है। क्योकि कोई भी पारसी न तो किसी मोमबत्ती को बुझायेगा और न जलते हुए लट्ठे की अग्नि को शांत ही करेगा।

Barsom या दुफुसी लकडियो के गट्ठे का उपयोग करने का सिद्धात तूरानियो के पवित्र Rods पर से ही लिया गया है। बुरी आत्माओ से बचने के लिए लगातार मन्त्रो का जाप और प्रार्थनाओ के साथ खूँटो की जोडियाँ गाडे जाने का रिवाज जरस्थ्रु से पहले का मालूम होता है। आधुनिक फारस मे भी मुसलमानों द्वारा फर्श मे यह खूँटियाँ गाडी जाती हैं जिसका तात्पर्य यह है कि कुटुम्ब की 'दज्जाल' आदि से रक्षा की जाये।

मार्गा जाति के विषय मे कहा जाता है कि पहिले वह अनार्य जाति थी परन्तु बाद मे आर्य विजेताओ मे घुलमिल गई। सम्भवत. यह जाति तूरानी नस्ल की थी। ऐतिहासिक समय मे वे जरस्थ्रुओं के सहयोगी बन गये। क्योंकि ये वे ही लोग थे जिन्होंने अपराधियो को मारा तथा पवित्र सोम तैयार किया और बरसम के गट्ठे का उपयोग जारी रखा। ये व्यक्ति भविष्य-वक्ताओ की विद्या मे निष्णात थे और ईसा के जन्म के समय की प्रसिद्ध कहानी "कि पूर्व से बुद्धिमान व्यक्ति आये" से भी सम्बन्धित थे। इन्ही परम्परागत् अधविश्वास और धारणाओ ने जरस्थ्रु धर्म मे भी अधविश्वास भर दिया।

अगले जन्म मे कर्मफल के अनुसार दण्ड पाना अथवा सुख भोगने की कल्पना आर्य धर्म के विश्वासानुसार है। यद्यपि गाथा मे इस सिद्धात का पूरा-

१. भारत में भी आर्य लोग गौ-मूत्र को पवित्र मानते हैं। सर पर्सी, पृ० ११०

पूरा विवेचन नही है तथापि वदीदाद मे गाथा से कुछ ज्यादा ही वर्णन मिलता है। अहुर मज्द एक प्रश्न के उत्तर मे कहता है कि "कलकल गति से बहते हुए जल, फलता-फूलता धान्य और अन्य धनादिक वस्तुओ को श्रद्धालु तथा अश्रद्धालु अत मे एक ही रूप से छोडने पर विवश होते हैं और कालगति के अनुसार आत्मा बुरे और भलो मे प्रकट होती है। मृत्यु के बाद तीन दिनो तक आत्मा मृत व्यक्ति के सिरहाने बैठी रहती है और अपने कर्म फल के अनुसार अत्यन्त सुख या दु.ख का अनुभव करती है। जब चौथा प्रभात आता है और सुगंधित हवा दक्षिण से चलती है तो आत्मा चिनवात Chinwat के पुल के पास मिलती है जिसे अलगाव का पुल भी कहते हैं। यह पुल एक अत्यन्त सुन्दर युवती जो कि विश्व की सुन्दरतम युवती है, के द्वारा नरक की तग गली के सामने बिछा दिया जाता है। उस पर पार होकर आत्मा जाती है। आत्मा पूछती है कि 'तू कौन है ?" उत्तर मिलता है—"हे अच्छे विचार, अच्छे शब्द और अच्छे कर्म वाले भाग्यवान ! मैं तो तेरी इच्छा शक्ति हूँ।" फिर वह आत्मा अहुर मज्द के सामने लाई जाती है। वहाँ उसका भारी स्वागत होता है। दुरात्मा उस पुल को पार नही कर सकती और दुर्भवनो मे एक राक्षसी द्वारा गिरा दी जाती है और वहाँ वह अहिरमान की गुलाम हो जाती है।

जरस्थु धर्मावलम्बियो का स्वर्ग हर-बर-जैति (Hera-bere-Zaiti) पर्वत पर जिसे पहलवी समय मे 'अलबुर्ज' कहते थे मे है। यह आश्चर्ययुक्त पर्वत नक्षत्रो से ऊपर असीम प्रकाश मे ऊपर उठा हुआ है और अहुर मज्द के स्वर्ग के 'मगनि निवास' मे आलोकित है। यह वास्तव मे देव मत पर्वत की श्वेत श्रेणियाँ है जो दूर से आते हुए सूर्य के प्रकाश मे स्वय प्रकाश-पुज-सी मालूम पडती हैं। जरस्थु धर्म ने जूदा और क्रिश्चियन धर्म पर भी प्रभाव डाला है। अहिरमान ही जूदा धर्म का शैतान है। जरस्थु धर्म द्वारा आत्मा के अमरत्व का सिद्धात यहूदियो पर कहाँ तक पडा है यह तो ठीक-ठीक रूप से नही कहा जा सकता तथापि उनमे ईसा के जन्मकाल के समय ही यह ठहराया था कि उनके ग्रथो मे देवदूत, आत्मा या प्रलय का कोई सिद्धात नही है। परन्तु एक-जाति देव की अपेक्षा सर्वदेव की उपासना वाला सिद्धात तो यहूदियो को जरस्थु धर्म ने ही दिया था। क्योकि यहूदियो के खलीफा ने ईरान वालो के लिए सम्बोधित किया है कि "ईरानियो का धर्म उनके समान होने से ही वे नरक मे नही पडेंगे।"[1]

---

1 Thus saith the Lord to his anointed to Cyrus "Indeed the Persians alone of the great dominant races are never doomed to Hell by the Prophets".—Isaiah

८

मेद जाति का उत्थान और संघर्ष

बेबीलोन से उत्तर के देश का नाम असुर प्रदेश था। जिसे यूनानी लेखको ने असीरिया लिखा है। वर्तमान मे इसे सीरिया कहते है। इसी असुर प्रदेश के पूर्व मे परशु प्रदेश है जिसे यूनानियो ने परसुआ लिखा है। वर्तमान मे यह प्रदेश फारस कहलाता है। इसी परशु प्रदेश के उत्तर पूर्व मे आर्यो की एक दूसरी शक्तिशाली जाति जो 'मेद' नाम से विख्यात थी, रहती थी। इसने अपने बाहुबल से पृथ्वी का बहुतांश जीतकर पृथ्वी को मेदिनी नाम दिया था।[1] इस देश के पूर्व मे हरिरुद्र तथा रुद्र नदियाँ बहती हैं, जिन्हे अब भी हररूद तथा रूद कहते हैं।

वास्तव मे मेदो का यह आर्य साम्राज्य फारस के आर्य साम्राज्य से बहुत पहले शक्तिशाली और दृढ हो चुका था। उसका कारण यह है कि अपने पश्चिम मे लगे असुर प्रदेश की सेमीटिक जातियो से उन्हे सदैव लोहा लेना पडता था। ये असुर लोग मैसोपोटामिया के जगरस (Zagrus) पर्वत श्रेणी होते हुए इन ईरानी प्लेटो मे घुस आते थे। वे लगातार शताब्दियो तक आक्रमण करते रहे और मेद लोगो से कर वसूल करते रहे। अत सदैव सामना करते-करते मेद जाति स्वय ही वीर बन गई। अब केवल उनके सगठन की कसर शेष थी जो शीघ्र ही जगरस श्रेणी और उसके पूर्व के समतल इलाको के निवासियो के संगठन से पूरी हो गई। इस प्रदेश मे ६ बडी-बडी जातियाँ निवास करती थी। वे धीरे-धीरे आपस मे एक हो गईं। सबसे पहले हमदान क्षेत्र को सगठित किया गया और शीघ्र ही उसका विस्तार उत्तर मे कास्पियन समुद्र तक हो गया। यहाँ पर यह तथ्य भी ध्यान रखने योग्य है कि यह कास्पियन सागर भी कश्यप समुद्र का अपभ्रंश है जिसे यूनानियो ने कास्पियन नाम बाद मे दिया है। इसके उत्तर-पश्चिम मे असुरो को अर्थवन (असरवेजान) पुजारी प्रदेश था, और पूर्व में लूट प्रदेश जहाँ अधिकाश भाग जंगलो से भरा

---

१. देखिये, "यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना। (अथर्ववेद पृथिवी सूक्त मत्र ३३)

पड़ा था। पश्चिम और दक्षिण मे असुरो के सीमा प्रदेश इलोपी (Ellipi) तथा क्षारघर (Kharkhar) प्रदेश थे।

मेद प्रदेश पहले तीन भागो मे विभाजित था। पहला मेद महान् (Media Magna) जिसे अब ईराक कहते हैं, दूसरा मेद अथर्वपट्टन—अर्थवन (अब का अजरबेजान) और तीसरा मेद रागियाना (Rhagiana) = वर्तमान तेहरान है। यह मेद इलाका बहुत अधिक उपजाऊ और जल से परिपूर्ण है। खेती के अतिरिक्त वहाँ के घोडे पूरी एशिया भर मे सबसे उत्कृष्ट कोटि के माने जाते हैं। जगरस घाटी मे उनके चरने को भरपूर स्थान है और इस किस्म के घोडो की नस्ल का वर्णन यूनानी विद्वान हेराडीटस, आर्यन (Arian), मर्सीलिनियम आदि ने बहुत किया है। उनके वश का नाम उन्होने निसाइयन बतलाया है। ये भूरे नीले व श्वेत रंग के होते थे और अपनी गति, सहन शक्ति और सुन्दरता मे जगत प्रसिद्ध थे। श्वेत घाडे तो अत्यत पवित्र माने जाते थे और सक्षमान सम्राटो द्वारा उनको अश्वमेध मे काम मे लाया जाता था।[1] प्रसिद्ध विद्वान स्ट्रेबो (Strabo) के अनुसार पार्थियन घोडा इसी निसाइयन घोडे का वशज रहा है और अब आजकल फारसी घोडे के रूप मे प्रसिद्ध है।

११०० ईसवी पूर्व त्रिगलित पिलेश्वर—त्रिलक्ष पाल असुर (Tiglath Pileser) प्रथम ने मेद पर आक्रमण किया। किन्तु इतिहास मे केवल उन बड़े-बड़े स्थानो का कुछ उल्लेख मिलता है जो उसने छीन लिये थे। जब असुर लोगो की प्रगति चारो ओर हो रही थी, यह उस समय का वर्णन है।

इसके लगभग तीन शताब्दी पश्चात् शालमनेश्वर = शाल्मणि असुर द्वितीय ने नामरी पर (जिसे अब कुर्दिस्थान कहते हैं) आक्रमण किया। यह नगर पहले बेबीलोन के प्रभाव क्षेत्र मे था। इस नगर का स्वामी जो कि सेमिटिक था और जिसका नाम मर्दिक मुदम्मिक था, पहाड़ो मे भाग गया। उसका सारा खजाना और धन शालमनेश्वर ने लूट लिया और राज्य सचालन के लिए आर्येन्द्र (Ianzu) को नियुक्त किया। किन्तु सात वर्षों के बाद ही जब आर्येन्द्र ने बगावत की तो उसे दबाने को शालमनेश्वर परशुआ (ईरान) पर चढ दौडा और वहाँ २१ राजाओ को वश मे कर लिया। बाद मे उसने अमदाई और क्षारघर (Amdai & Kharkhar) पर आक्रमण करके आर्येन्द्र को पकड लिया और उसे अपने असुर प्रदेश मे ले गया। इस आक्रमण की विशेषता इसमे है कि इस घटना का उल्लेख उत्कीर्ण किया हुआ मिलता है। इस सम्बन्ध मे जेनेसिस मे पढा जा सकता है—जाभूति (Japheth), कुमार (Gomer), सिमेरियन,

---

1. The white horses were considered sacred and were offered in Sacrifice by the Achaemenion monarchs"

Sir Percy Page 116

(Cimmerians) मग (अर्मिनियन) मेद (Med) और (Ionia) यवन[1] आदि विजित जातियाँ थी।

शालमनेश्वर के उत्तराधिकारी (Shamshi adad) शंशी अदिति ने मेद पर हमला किया और उसे खूब लूटा। इस तथ्य से केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बार-बार हमले इसलिए किये जाते होगे कि यह एक धनवान प्रदेश था।

ईसा पूर्व ८१० मे अदिति नरहरि (Adad Nirari) तृतीय ने फिर हमला किया। उसकी रानी समूर मनि (Sammuramiut) थी जो बहुत प्रसिद्ध हुई है।

सन् ७४४ ईसा पूर्व मे पुल अथवा त्रिगलस पालेश्वर चतुर्थ जो कि असुर वश के प्रतापी सम्राटो मे से एक प्रमुख गिना जाता है, ने मेदो पर भयकर आक्रमण किया। उसने फूट डालकर मेद प्रात की एक-एक जाति पर कब्जा कर लिया। कहा जाता है कि वह ६०,५०० कैदियो और गाय, बैल, पशु, बकरे, खच्चर आदि की अपरिमित सख्या को अपने असुर प्रदेश मे ले गया, जिसकी राजधानी केले या काल थी। असुरों ने वर्तमान देमवंत (Demvent) तक अपनी सीमा वढा ली।

एक शताब्दी बाद सारगुण द्वितीय (Sargan II) ने समरिया पर विजय प्राप्त की। इसके विषय मे 'राजाओ की पुस्तक (Book of Kings) मे लिखा है "असुर राजा मुष (Hoshea) के राज्यारोहण के नवे वर्ष मे मेद के हाला और हेबर पर उसने विजय प्राप्त की।" यहाँ हाला से मतलब 'काला' से और हैबर से मतलब 'खैबर' से है जिन पर विजय प्राप्त की गई थी। ये स्थान पुरस्ता नदी के पास स्थित थे।[2] इसी राजा ने कुछ वर्षो के पश्चात् मेद जाति के कबीले के एक मित्र राजा मन्नाई पर आक्रमण किया। यह मन्नाई उरूमिया झील के किनारे अथर्वन के निवास करता था परन्तु यह पता नही चलता कि यह एक राजा का नाम था अथवा एक जाति थी। सारगुन द्वितीय ने इन लोगो के एक सरदार द्यौकेश जिसे यूनानियों ने दयाक्षु (Dayakku) लिखा है और जिसका नाम वास्तविक मे द्योकेग (Deiskes) अथवा देवक है को पकड लिया।[3] यही मेद जाति के साम्राज्य का प्रवर्तक था। असुरो की परम्परा के विपरीत सारगुन ने इस राजा को जीवित ही छोड दिया और उसे समथ (Hamath) मे कारावास के रूप मे रहने को विवश किया। इस आक्रमण के फलस्वरूप मेद लोगो ने फिर असुरो की अधीनता स्वीकार कर ली और २२ राजाओ ने आत्म-समर्पण कर दिया।

---

1 Genesis X-2
2 Sir Percy Page 118
3 Kings XVII-6

ईसा पूर्व ६७४ में ईश्वर वर्द्धन (Esar-hadden)—

देववत पहाड में स्थित क्षारीय मरुस्थल और उसकी नील रत्नो की खदान वाले प्रदेश में सन् ६७४ ई० पू० मे असुर सम्राट ईश्वरवर्द्धन ने आक्रमण कर दिया। अभी तक यहाँ कोई भी असुर नही पहुँचा था। कहा जाता है कि उसने यहाँ छोटे-छोटे दो राजाओ प· विजय प्राप्त की और उन्हे असुर प्रदेश मे रहने का दण्ड दिया। अलबत्ता उन्हे अपने अच्छे घोड़ो और २ कूबड वाले ऊँटो को रखने की आज्ञा दे दी। जब मेद जाति ने अपने नेताओ का यह हाल देखा तो उसने भी अपने-अपने हथियार डाल दिये और बहुमूल्य रत्नो और खजानो के साथ असुरो की राजधानी निनेवाह् मे जाकर उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार पूरे मेद क्षेत्र पर असुरो का वर्चस्व स्थापित हो गया। यह घटना सम्भवत. ६७३ ई० पू० की है।

यहाँ हमने पश्चिमी ईरान के उस क्षेत्र का वर्णन किया है जो असुरो के आगे कभी भी सगठित होकर नही लड पाते थे। और एक-एक जिले के रूप मे असुर लोग उनपर कब्जा करते जाते थे। किन्तु चूँकि असुरो का कर-भार इतना भारी था कि यह जीते हुए प्रदेश बार-बार बगावत करते रहते थे जिसके कारण अव्यवस्था और अशाति प्राय बनी ही रहती थी। असुर लोग वर्तमान के आर्मीनिया प्रान्त जिसे उस समय उर्वतु (Ararat) कहा जाता है तक को अपने कब्जे मे कर बैठे थे। इस सबका एक परिणाम यह अवश्य हुआ कि यह लडाकू जातियाँ कालान्तर मे अपने हमलावरो के विरुद्ध एकजुट हो गई और उन्होने अपने मेद साम्राज्य की नीव डाली। इस वश का मूल पुरुष देवक अपनी न्यायप्रियता के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था। यह प्रवरतिष[1] (Phraortes) नामक व्यक्ति का पुत्र था। मेद जाति मे बहुत अधिक लडाई झगडे व उत्पात होते रहते थे। इसकी न्याय-प्रणाली से ये उत्पात बन्द हो गये, और शाति स्थापित हो गई। अत इसने एक दिन अपने समस्त लोकजनो को बुलाकर कहा कि न्यायदान मे वह इतना समय नही दे सकता है जिसके कारण उसके घर का काम-काज सब ही समाप्त हो गया है और फिर उसने न्यायदान देना बन्द कर दिया। इसके पश्चात फिर खून-खराबी और उत्पात शुरू हो गये। तब सब लोग फिर उसके पास पहुँचे और प्रार्थना की कि "अब आप फिर से न्याय सँभालिये। हमारे देश का काम-काज इस प्रकार नही चल सकता। आप कृपा कर राजा बन जाइये ताकि प्रजा को सुख और शाति प्राप्त हो और व्यवस्था कायम हो सके।"

इसके पश्चात् एक चुनाव हुआ और जैसी कि आशा थी, देवक राजा चुन

1. Fravartish Huart Page 30

लिया गया। उसने अपनी रक्षार्थ अंगरक्षको की एक बड़ी सेना तैयार की और फिर इसके पश्चात उसने राजधानी के लिए स्थल की खोज करना शुरू कर दी। सौभाग्य से अर्वन्तु पर्वत (वर्तमान अलवद)[१] पर्वत जोकि बारह सहस्र फुट ऊँचा है के दामन मे छः सहस्र फुट नीचे एक प्राचीन रमणीक स्थान मिल गया। यह स्थान त्रिगलत पालेश्वर प्रथम के समय मे वर्णित एक लेख मे अवदान के नाम से विख्यात था। प्राचीन फारसी साहित्य मे इस स्थान का नाम 'हगमतान' आया है जिसका अर्थ बहुत से मार्गों का मिलने का स्थान है। वास्तव मे यह 'संगम स्थान' है। फारसी मे स को प्राय. ह पढा जाता है। वर्तमान में इस स्थान का नाम हमदान है।[२] यूनानी साहित्यकारो ने इस स्थान को एकवतन या एकपट्टन (Echatana) के नाम से लिखा है। यद्यपि यहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है तथापि गर्मी मे आश्चर्यजनक सुन्दरता है और अब इस स्थान पर लगभग ५० सहस्त्र व्यक्तियो का निवास-स्थान हमदान बसा हुआ है। वर्तमान नगर के पश्चिम मे इस प्राचीन राजधानी के खडहर व किले की दीवारें अभी तक सुरक्षित हैं। किले की सात दीवारे इस प्रकार बनाई गई हैं कि एक को पार करने के बाद दूसरी पर जा सकते है। (यह पद्धति शुद्ध भारतीय ढंग की है। क्योकि चित्तौड, ग्वालियर, रायसेन रणथभौर आदि किलो मे भी प्राय यही पद्धति अपनाई गई है) सातवी दीवार मे प्रवेश करने के बाद राजप्रासाद तथा कोवालम निर्मित है। जिनपर चमकता हुआ मुलम्मा चढाया गया है जबकि बाहरी दीवारो मे विविध रंगो का जोड काफी आकर्षक है। यह प्रासाद बेबीलोन के वारशिव के वीर नीमरुद्र (Biro Nimrud of Borsippa) के महल के प्रकार का बनाया गया है। इसमे राजा के बैठने का अलग स्थान था जहाँ कि प्रजा की दरखास्तें सुनवाई के लिए पेश होनी थी।

यह सारा वर्णन प्रसिद्ध इतिहासकार हेरोडोटम के लेखन पर आधारित है जिसमे कि असत्यता की कोई सभावना नही है। ७१५ ईसा पूर्व मे मन्नाई के मुखिया दयाक्कु (देवक) का हमथ मे भेजा जाना लिखा ही जा चुका है। दो वर्ष बाद हमदान मे दयाक्षु अथवा देवक का वर्णन फिर मिलता है।

मेद भाषा

स्ट्रेबो के अनुसार मेदो की भाषा बहुत कुछ फारसी, आर्यों[3] बाल्हीकि और सोघदियन्स से मिलती-जुलती है। खेद इस बात का है कि इन स्थलो की बार-बार की खोज और खुदाई के बाद भी कोई लेख नही मिला, जिसपर से लिपि की

१. अलवद पर्वत को अवस्ता मे ओरन्त कहा गया है। प्राचीन साहित्य मे इसे ओरोन्तस कहा गया है।

२. सर पर्सी पृष्ठ १२०

3. XV. 2.8 Strabo

जानकारी मिल सके । अत. ऐसा ख्याल किया जाता है कि मेदों की भाषा बोल-चाल तक ही सीमित थी । उस भाषा में कोई अपनी लिपि नही थी । जैसाकि अफगानिस्तान मे है, जहाँ बोलते तो पश्तो भाषा हैं किन्तु लिखी जाती है फारसी । यह सम्भावना भी है कि मेदो की भाषा की लिपि असुर हो, । ओपर्ट विद्वान के अनुसार त्रिभाषा लेखो मे इस भाषा का दूसरा स्थान है और यह सुसियन होना चाहिए । दर्मस्टीटर के अनुसार यह अवस्ता की भाषा है । कुछ भी हो, यह तय है कि यह भाषा आर्य थी और फारसी से मिलती जुलती थी ।

असुर प्रदेश मे जब असुर राजा सेन्नाचरीब अपनी चरम शिखर पर था उसी समय मेद राज्य अपनी उन्नति शुरू कर रहा था । उस दर्पी सम्राट को यह किंचित् पता नही था कि इन चरवाहो की जाति एक दिन उसकी स्वय की राजधानी निनेवाह पर कब्जा करके उसे जलाकर राख कर देगी ।

देवक ने ५३ वर्ष तक राज्य किया । उसकी मृत्यु के पश्चात उसका लडका प्रवरतिष् द्वितीय; जिसे यूनानियों ने (Phraortes) या प्रवरतिष[1] कहा है ६५५ ईसा पूर्व मे गद्दी पर बैठा । यह भी अपने पिता की नीति पर ही चलता रहा । इसने सामने होकर कभी असुरो मे लडाई नही छेडी क्योकि इसके समय मे प्रतापी असुर वाणीपाल सिंहासन पर आरूढ़ था । अत इस प्रवरतिष ने केवल शेष रहे छोटे-छोटे मुखियो को अपने अधीन करके मेद राज्य के सगठन को और मजबूत कर दिया । यह अपने पिता की तरह असुरो को कर-भार देता रहा ।

अब मेद लोगो ने फारसी जाति की ओर अपना ध्यान फेरा । यह जाति छोटे-छोटे टुकडो मे बटी हुई थी और उनमे सगठन का सर्वथा अभाव था । मेद लोगो ने इनके विषय मे कुछ भी लिखा हुआ नही छोडा, अत उनके विषय मे इससे अधिक कि जो कुछ हेरोडोटस ने लिखा है कुछ नही मिलता। मेद लोगो ने धीरे-धीरे इन सब जातियो पर आधिपत्य करके फारस को जीत लिया ।

प्रवरतिष के राज्यकाल सन् ६४५ ईसा पूर्व मे असुर सम्राट असुर वाणीपाल ने ऐलम राज्य को मृत्यु का एक धक्का दिया था और अब वह शातिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा था । इतिहासकारो के अनुसार असुर वाणीपाल इस समय भोग-विलास का हीन जीवन बिता रहा था । किन्तु इस सम्राट का वर्तमान ससार ऋणी रहेगा कि उसने भारी सख्या मे साहित्य का निर्माण कराया जो अब ब्रिटिश म्युजियम मे रखा हुआ ससार को उस समय की अवस्था का ज्ञान करा रहा है । न केवल साहित्य की पुस्तकें ही उस समय बेबीलोन की अलमारियो

---

1. Sir Huart Page 30 'Fravartish

की शोभा बढ़ाती थी वरन् इस सम्राट द्वारा नये निर्मित मदिरो और राज-प्रासादो ने भी पुरातत्व की विशेष सामग्री छोड़ी है। यही नही सेनाचरीव के महलो को भी, जो कि खडहर बन रहे थे फिर इसने अत्यन्त सुन्दर भवनो मे परिवर्तित कर दिया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मेद लोगो ने आपसी सगठन और लगातार सघर्ष से अपने-आपको एक बलशाली राज्य का स्वामी बना लिया था। बाद मे फारसियो पर हुए आक्रमण और विजय से उनके हौसले और भी बढ गये। अतः उन्होने असुरो की शक्ति का गलत अन्दाजा लगाकर असुरो पर आक्रमण कर दिया। किन्तु असुरो की अनुशासित और विशाल संगठित सेना के सामने वे न ठहर सके। उन्हे हार कर वापिस भागना पडा। इस युद्ध मे प्रवरतिष की मृत्यु हो गई और उसकी सेना का एक भारी भाग भी नष्ट हो गया।

सुभागक्षत्र[1]

ऐसे कठिन समय मे जब कि मेद जाति जीवन-मरण के सघर्ष मे रत थी, मेद जाति के सिंहासन पर सुभागक्षत्र (Huvakshatara) नाम का सेनापति जिसे प्राचीन साहित्य मे साइगेक्सरीज (Cyaxares) कहा जाता है, सिंहासन पर बैठा। इसका स्थान ससार के उन थोडे महान् सम्राटो मे है जिनका युद्ध तथा शान्ति काल मे ससार के रग-मच पर उद्भव हुआ है। अपने अनुभव के आधार पर इसने त्वरित ही इस तथ्य को भाँप लिया कि असुरो के मुकाबले के लिए एक बडी अनुशासनबद्ध सेना की आवश्यकता है। अत इसने उन स्वतत्र मुखियो के अन्तर्गत लडने वाली सेना को तोड दिया जो समय-समय पर आकर इकट्ठे हो जाते थे। उनके स्थान पर एक नियमित सेना की स्थापना की जिनको धनुष-बाण और भाले दिये गए। असुरो के सर्वथा प्रतिकूल इस सेना के घुड-सवारो को भी धनुष चलाने की शिक्षा दी गई ताकि बचपन से ये अभ्यस्त मेद, युद्धकाल मे घोडो पर से ही बैठे-बैठे अपने शत्रुओ पर भारी बाण वर्षा कर सके।

सुभागक्षत्र ने इस सेना के माध्यम से असुर सेना के भारी आक्रमण को रोके रखा और बाद मे असुर बाणीपाल के सेनाध्यक्षो को हरा कर दुबारा असुर प्रदेश पर हमला कर दिया।

मेदो को इस बात का पता था कि निनेवाह बहुत ही मजबूत सुरक्षा पक्ति से घिरा हुआ है। तब भी सुभागक्षत्र ने उसको घेर लिया। उसके अश्वारोहियो ने आसपास के मैदान और खेतो मे तबाही मचा दी। नाहुम की पुस्तक मे उसके इस हौसले के विषय मे लिखा है—"निनेवाह का भार, कोडो की आवाज, कूदते

1 Sir Percy ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १२२ व हुअर्ट ने भी अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ३० पर इस राजा का नाम सुभागक्षत्र लिखा है।

हुए घोड़े और चरमराते रथो के पहियो के भयानक शोर रथो की कूद ने, घुड़सवारों की चमकती तलवारे और दमकते हुए भालो ने, वीभित्सका उत्पन्न कर दी। शवो के ढेर लग गये। शवो के ढेरो पर से युद्ध बढ रहा था।[1]

ठीक इसी समय जबकि मेद लोग भयकर सघर्ष मे रत थे सीथियनो ने अचानक पीछे से मेद लोगो पर हमला कर दिया। संभवत: ये लोग असुरो के मित्र थे। यह भयंकर जाति जिसके सामने जो भी आया उसे नष्ट-भ्रष्ट किया बराबर सहार करते हुए आगे बढ रही थी। जेरेमियाह पैगबर ने लिखा है—"वे धनुष वाणो से लैस थे, वे भयकर आततायी हैं। दया रहित है। समुद्र की तरह गर्जन करते हैं ओ! जियोन की पुत्री! वे घोडो पर सवार होकर युद्ध की कतारे बनाकर लडते हैं।"[2]

सुमागक्षत्र को इस आक्रमण के कारण निनेवाह का घेरा उठाना पडा, परन्तु सीथियनो ने उसे भारी शिकस्त दी और सुमागक्षत्र को अन्त मे उनसे सधि करनी पडी। अब सीथियनो को असुर प्रदेश की कमजोरी का पता भी पड चुका था। अत वे ठहरे नही और विद्युत गति से मार-धाड करते, सर्वनाश करते, खेतों-फसलो को चौपट करते हुए असुर प्रदेशो मे भीतर तक घुस गये।

अब सुमागक्षत्र ने चालाकी से काम लिया। यह एक बडा बुद्धिमान व्यक्ति भी था। उसने सीथियन लोगो के सरदार माधव (Madyes) को भोजन के निमन्त्रण पर मय उसके सरदारो के बुलाया। जब भोजन के समय मदिरा के प्याले और रासरग चल रहा था तो धोखे से उसने इन सरदारो पर हमला करके उन्हे मार डाला। अपने नायक और सरदारो के मारे जाने से सीथियन सेना बिना मुखिया और अनुशासनहीन रह गई। फलत वह भाग खडी हुई और सुमागक्षत्र द्वारा उसका सहार कर दिया गया। इसी बीच सन् ६२३ ई० पू० मे प्रतापी असुर वाणीपाल की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारियो मे कोई भी इस योग्य न था कि ऐसे सकट काल मे देश की रक्षा करने मे समर्थ होता।

असुर साम्राज्य के पतन और विखडित होने का समय अब प्रारम्भ हो गया था। असुर वाणीपाल ने वेबीलोन के क्षत्रप क स्थान पर नभ पालेश्वर =नभपाल असुर (Nabopalassur) को नियुक्त किया था किन्तु असुर वाणीपाल के उत्तराधिकारी के गद्दी पर बैठते ही उसने अपने को स्वतत्र राजा घोषित कर दिया।

इधर दजला और फरात की नदियो घाटियो के कुछ आक्रमणकारियो ने इकट्ठे होकर जब आगे बढने का विचार किया तो नभपालेश्वर ने उन्हे खदेड़ने

१. नाहुम III २ और ३
२ नाहुम VI २३

के स्थान पर उनका साथ दिया। इन सबने मिलकर मेद राजा सुमागक्षत्र को संयुक्त कमान का नेता बनने को आह्वान किया। सुमागक्षत्र ऐसा मौका चूकने वाला कब था। वह नेतृत्व लेकर बडी फौज के साथ आगे बढा। असुर उत्तराधिकारी इस बडी फौज का सामना करने में असमर्थ था। अत. उसने अपने आपको निनेवाह् के किले मे बन्द करके फाटक लगवा दिये।

निनेवाह् का पतन (६०६ ई० पू०)

जब निनेवाह् को चारों तरफ से घेर लिया गया तो असुर राजा ने अपनी मुक्ति की कोई समावना नही देखी। अतः उसने बजाय इसके कि वह और उसके निवास की स्त्रियाँ शत्रुओ के हाथ पकडकर अपनी बेइज्जती कराये, लकडी की एक बडी भारी चित्ता बनवाकर पूरे कुटुम्ब के साथ उसमे अपने को भस्मसात कर लिया।[1] क्षेसियस (Ctesias) ने लिखा है कि टिगरिस नदी के प्रवाह ने भी निनेवाह के किले की दीवारें तोड डाली परन्तु रार्वलिसन (Rawlinsion) ने लिखा है[2] कि हज़रत माहूम ने भविष्यवाणी की थी कि नदी के दरवाजे टूट जावेंगे और निनेवाह का सर्वनाश हो जावेगा। इस कारण निनेवाह का पतन हुआ। कोई भी कारण क्यो न हो परन्तु निनेवाह का पतन अचानक और आश्चर्य पूर्ण ढग से हुआ। कुछ लेखको के अनुसार सन् ६०५ ई०पू० मे नमपाल असुर जोकि बेबीलोन का स्वतन्त्र शासक हो गया था। और उसके लडके नमचूड ने इस असुर राजधानी को जलाकर राख कर दिया, और असुरो की सत्ता पूरी तरह मे नष्ट कर दी। नभचूड ने बेबीलोन पर पचास वर्ष तक कब्जा बनाये रखा।[3] असुर साम्राज्य के सितारे का उदय और अस्त इतनी शीघ्रता से हुआ कि ससार उसके सम्राटो के इतिहास के पन्ने बहुत ही जल्दी भूल गया और केवल थोडे से नगरो के खडहर उसकी याद दिलाने को शेष रह गये। एक्जीनीफोन सम्राट की सेना दो शताब्दी के पश्चात जब काला और निनेवाह की भूमि पर से निकलती जा रही थी तो एक्जीनिफोन ने अपने मुसाहिबो से इन नगरो के खंडहरो के विषय मे पूछा तो उसने गलत नाम बतला कर उत्तर दिया कि ये खडहर लारीसा और मेसपीला के हैं। वास्तव मे उन खडहरो को देखकर वे चकित रह गये क्योकि इतने थोडे समय के बाद भी उनको यह पता नही चला कि प्रतापी असुर साम्राज्य के दो प्रमुख नगरो की यह भूमि है।

निनेवाह के पतन के पश्चात् जैसाकि प्राय सब स्थानो मे देखने मे आता है, अधीन राज्यो की शासन व्यवस्था प्राय बदला ही करती है। बेबीलान के

---

१. चिता बनाकर स्त्रियो के आत्मदाह करने की यह प्रथा शुद्ध भारतीय है।
2. Rowlinson Histores y of Phonaecia Page 166.
3. Xenophons=Anabasis III पृष्ठ ४-७

नभपालेश्वर के लडके नभचूड असुर (Nebuchadnezzer) से मेंद राजा सुभागक्षत्र की लडकी अमिति का विवाह हो जाने से उनमे पक्की मित्रता हो गई। यद्यपि बेबीलोन की सपदा और सम्पत्ति को मेंद लोग सदैव ललचाई आँखों से देखते रहे तथापि सुभागक्षत्र ने जीवन-भर मित्रता निबाही।

असुर साम्राज्य के पतन से जहाँ मेद लोगो को लाभ पहुँचा वहाँ उससे अधिक लाभ बेबीलोन को पहुँचा। और बेबीलोन धीरे-धीरे उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा।

नभपालअसुर ने अपने जीवन मे काफी ख्याति अर्जित की थी अत. अपनी वृद्धावस्था में अपने राज्य का भार अपने लडके नभचूड असुर (Neb-u chadnezzer) को सौंप दिया और स्वयं त्याग का जीवन बिताने लगा।[1] निनेवाह के पतन के समय ही मेद राजा से तय हो गया था कि पश्चिमी प्रान्त बेबीलोन को मिलेंगे। फलतः वहाँ के निवासी कोई प्रतिरोध न कर सके और ये प्रांत बेबीलोन मे मिला लिये गये। किन्तु इसी समय जब निनेवाह पर आक्रमण चल रहा था, सन् ६०८ ई०पू० मे मिस्र के राजा द्वितीय निशु (Necho II) ने आगे बढकर फिलिस्तीन और सीरिया पर कब्जा कर लिया। केवल यहूदी राजा जोसिया ने उसका मुकाबला किया किन्तु वह बुरी तरह पराजित हो गया। निशु फरात नदी तक बढता चला गया और उसने कारचेमिस स्थान पर पड़ाव डाल दिया। यह उसकी विजय की सबसे अगाडी पहुँच की प्रतीक थी। जब उसे निनेवाह के पतन का समाचार मिला तो उसने आगे बढने का विचार बदल लिया और कारचेमिस स्थान से ही वापिस लौट गया। रास्ते मे और अपने प्रदेश मे उसकी बडी खातिर और अगवानी हुई। किन्तु सत्यता तो यह थी कि मिस्र की फौजो का बेबीलोन की फौजो से मुकाविला ही नही हुआ।

तीन वर्ष के पश्चात् नभचूड असुर ने आगे बढकर मिस्र देश को सेनाओ द्वारा रक्षित कारचेमिस पर पुन कब्जा कर लिया। सन् ६०४ ई०पू०मे निशु की फौजे और बेबीलोन की फौजो की आमने-सामने की एक बड़ी भयकर लडाई हुई जिसमे मिस्र सेना के यूनानी घुडसवारो की अपूर्व वीरता के बावजूद मिस्र सेना बुरी तरह हार गई। बेबीलोन के राजा ने भागती सेना का मिस्र देश तक पीछा किया किन्तु बीच मे ही उसे उसके पिता की मृत्यु का समाचार मिला। अतः आतंरिक कलह के डर से वह बेबीलोन को लौट चला। अत मे निशु से सधि करके फिर वह रेगिस्तान से होता हुआ बेबीलोन वापिस पहुँच गया।

उसने न केवल अपने राज्य को अपितु राजधानी को भी सुन्दर बनाने मे कोई कोर-कसर नही छोडी। इतिहास का यह सर्वाधिक शाति काल था। उसने

१. वृद्धावस्था मे अपने पुत्र को राज्य सौंपकर स्वय तपस्वी का जीवन बिताना शुद्ध आर्य प्रथा है।

बेबीलोन में अनेक प्रकार के सुन्दर बगीचे लगवाये, जिनमे लटकता हुआ बाग (हैंगिंग गार्डन) ससार के सर्वाधिक ७ आश्चर्यों मे से एक गिना जाता है। यह बगीचा सेमीरापियो के बगीचे के नाम से आगे चलकर विख्यात हो गया। उसने प्रसिद्ध इश्तर देवता का मदिर बनवाया और उसको मिलाने वाली सडक पर प्रसिद्ध इश्तर द्वार बनवाया। उसने 'भेट्टीवाले' नाम का एक बडा बाँध भी बनवाया जो दजला मे फरात नदी तक फैला हुआ था। इससे बेबीलोन नगर के उत्तर मे कभी भी बाढ का पानी निकल सकता था। इसी प्रकार नगर के दक्षिण मे भी उसने एक बाँध बनवाया था। यद्यपि डैनियल[1] लेखक ने उसके पागलपन का काफी उल्लेख किया है तो भी वह एक बहुत बडा सम्राट माना जाता है।

असुरो के पतन के पश्चात् सुमागक्षत्र के विषय मे कोई अधिक जानकारी उपलब्ध नही है। यह तो विदित ही है कि उसने सबसे समृद्ध प्रान्त और उसकी राजधानी बेबीलोन को तो छोड ही दिया था। उसने अपने हिस्से मे परशु के पहाड़ प्रदेश को ही रखा जोकि पहले से ही मेद साम्राज्य का एक भाग था। इसी प्रकार आर्मीनिया जिसे कुछ दिन पहले एक आर्य जाति ने जीत लिया था तथा पश्चिम मे केपेडोसिया (Cappadocia) तक उसके साम्राज्य का विस्तार हुआ था। इतना बडा राज्य होते हुए भी उसने बेबीलोन को कैसे स्वतत्र कर दिया यह एक उलझी हुई गुत्थी है।

सुमागक्षत्र ने धीरे-धीरे पश्चिम के अधिकाश उन प्रान्तो को जो सिमेरियन लोगो और सीथियनोके बार-बार हमले मे उजाड होकर आधे रह गये थे, जीत लिया। इस प्रकार उसने अपना साम्राज्य हेलीस (Halys) नदी तक बढ़ा लिया किन्तु यहाँ उसका एक शक्तिशाली राज्य लीडिया (Lydia) से पाला पड गया।

लीडिया देश—एक अन्य आर्य राज्य

लीडिया के राज्य के विषय मे बहुत ही कम ज्ञात है। पहले सब इतिहासकारो ने उसे सेमीटिक जाति बतलाई थी परन्तु बाद मे यह लगभग निश्चित ही हो गया कि वह न तो आर्य ही थी और न सेमीटिक ही। यद्यपि बाईबिल मे वर्णित नूह के विभिन्न पुत्रो के विषय मे इस देश मे उनके राज्य करने का उल्लेख है तथापि उसमे जाति सबधी तथ्य कम है, राजनीतिक तथ्य अधिक है। कुछ भी हो पहले लीडिया असुर वाणीपाल के राज्य का एक भाग था।

1. Daniel

१

यूनान में आर्य प्रवेश

यूनानस्थित थ्रेस के आर्यों की एक जाति फ्रीजियन (Phrygians) अथवा ब्राइजेस (Bryges) नामक स्थान की थी[1] जो यूनानियो की प्रजा मे धीरे-धीरे घुल-मिलकर एक हो गई। इसी जाति ने एनेतोलिया पर कई बार १०वी और ६वी शताब्दी ई० पू० मे आक्रमण किये थे। इसी के समय मे आठवी शताब्दी पूर्व मे एक मुश्की राज्य भी अस्तित्व मे था जिसका प्रतापी राजा मित्र था जिसे यूनानी साहित्य मे (Mitas) कहा गया है। सन् ७२० ई० पू० मे मित्र ने उरर्वतु राज्य के स्वामी रौप (Rusas) से संधि कर ली और फिर दोनो ने मिलकर असुर राजा सारगोन (सारगुण) मे मुकाबिला किया। इस लडाई का ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है जिसके कारण हमे बहुत-सी सामग्री मिलती है। फ्रीजियन राज्य के निर्माण के पश्चात् ही लीडियन राज्य को काफी बल मिला और वह एक बडा शक्तिशाली साम्राज्य हो गया। परन्तु आगे चलकर ईरान की बढती हुई शक्ति के सामने वह निस्तेज हो गया।

लीडिया के पुराने राजवश के विषय मे अनेक किस्से-कहानी प्रचलित हैं जिन्हे हेरोडोटस ने काफी विस्तार से लिखा है।[2] उसमे से एक के अनुसार हरिकाल (Heraclid) वशी एक राजा सत्यार्थी (Sadyattes) था जिसकी पत्नी से गाइग (Gyges) नामी व्यक्ति प्यार करता था जिसने उसको अततः मारकर नये वश का सूत्रपात किया। इस राजा ने अपना एक अश्वारोही दस्ता बडा ही शक्तिशाली बनाया जिसमे उसने न केवल समुद्र तटवर्ती यूनानी नगरो को ही अपने अधीन किया वरन् उनमे बार-बार संधियां करके बहुत सा धन भी प्राप्त किया। जब वह इन सीमा विवादो मे उलझा हुआ था तो सिमेरियन लोगो ने उस पर चढाई कर दी जिसने उसकी संपूर्ण राज्यसत्ता को तहस-नहस कर

1 Sir Percy, Page 193

2. A commentary on Herodotus by How & Wells.

दिया। सन् ६६७ ई० पू० मे इस राजा ने सिमेरियन राजा के विरुद्ध असुरलोगों से सहायता की आशा से असुर वाणीपाल के पास एक राजदूत भेजा और असुरों की भारी चाटुकारी की। परन्तु असुर राजा भी कम चतुर नही था। उसने दर्प के साथ उलटा यह कहा कि असुर प्रदेश मे आज तक भी लीडिया नाम के प्रान्त का कभी जिक्र भी नही सुना है। यह आश्चर्य है। अन्त मे मीठे-मीठे वचनो और सत्कार द्वारा राजदूत को वापिस कर दिया। असुरो के द्वारा कोई भी सहायता न मिलने से लीडिया का राजा सिमेरियन लोगो द्वारा पराजित करके मार डाला गया। उसके लड़के आर्य देव (Ardyes) ने समस्त शरणार्थियो को इकट्ठा किया और लड़ाई जारी रखी। वह यूनानियों के पास से पालतू खूंखार कुत्तो को लाया। अन्त मे जब सिमेरियन के अश्वो पर वे कुत्ते दौडे तो वे तितर बितर होकर भाग गये। और लीडिया को बच जाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। भागते हुए सिमेरियन लोगो ने पूर्व की ओर असुर प्रदेश मे घुसने का यद्यपि दुस्साहस किया किन्तु वहाँ वे बहुत बुरी तरह रौंद डाले गये। लीडिया ने इस आक्रमण से छुट्टी पाकर अपनी उन्नति की ओर काफी ध्यान दिया और पूर्व की ओर के हेलीष नदी के किनारे के जिलो को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया।

लीडिया का राज्य इसलिए प्रसिद्ध है कि अपने भृत्यगणो अर्थात् यूनानियो को वेतन देने के लिए उसने सिक्के की प्रथा को जारी किया। बेबीलोन मे पहले सिक्के का प्रचलन नही था केवल माप चलता था। लीडियन लोग बडे व्यापारी भी थे। हेरोडाटस के अनुसार उन्होने कई प्रकार के खेलो का आविष्कार भी किया था। यूनानियो ने उन्हे विलासी लिखा है किन्तु यह सत्य नही है। हाँ, वे अच्छे कृषिज्ञाता, कुशल व्यापारी और बडे लडाकू व्यक्ति थे। उनके युद्ध प्रसिद्ध होने के कारण बढते हुए मेद लोगो से उनका मामना होना अनिवार्य था और अन्त मे वह समय आ भी गया।

मेद और लीडिया का युद्ध

इस लड़ाई की शुरूआत भी बडे आश्चर्य ढग से हुई। कहा जाता है कि मेद राजा सुमागक्षत्र ने कुछ सीथियन लोगो को शिकार खेलने मे साथ देने के लिए रख छोडा था। इन शिकारियो की देखभाल के लिए कुछ मेद नवयुवक अश्वारोहियो को भी रखा गया था। एक दिन जब शिकारियो को कोई शिकार हाथ न लगा और वे खाली हाथ लौटे तो राजा ने उनका बडा अपमान किया। इस अपमान से क्रुद्ध होकर शिकारियो ने अपने उच्चाधिकारी एक मेद नवयुवक को टुकड़े-टुकडे कर डाला और उसका मास पकाकर राजा की दावत मे परोस दिया। इसके बाद वे सब भाग कर लीडिया के राजा अलहस्त (Alyattes) की शरण मे चले गये। यद्यपि मेद राजा ने उनकी वापिसी की माँग की किन्तु जब वे

नहीं लौटाये गये तो दोनों राज्यों मे युद्ध छिड गया । मेद लोग संख्या में बहुत अधिक थे परन्तु लीडिया के लोगो के पास यूनानी अश्वारोहियो की सेना बहुत रणबाकुरी थी। अतः दोनो ही ओर दोनो को अपनी-अपनी विजय का पूरा भरोसा था ।

गृहण युद्ध

५८५ ई० पू० मे दोनो राज्यों मे घनघोर युद्ध शुरू हुआ जो ६ दिन तक बराबर चलता रहा । दोनो ओर से कोई हारजीत के लक्षण नही थे । सातवे युद्ध का दिन ग्रहण का दिन था। अत दोनो ओर की सेनाएं इस दिन लडना नही चाहती थी। अतएव बेबीलोन के राजा ने बीच मे पडकर युद्ध बन्द करा दिया और दोनो देशो की संधि करा दी। भविष्य मे हेलीज नदी दोनो राज्यो की सीमा घोषित हो गई। मुमागक्षत्र ने अपनी लडकी का विवाह लीडिया के नवयुवक राजकुमार से कर दिया। मेद को इस संधि से यह लाभ हुआ कि उसने अपने सीमावर्ती राज्य उर्वर्तु को हडप लिया ।

सन् ५८४ ई० पू० मे सुमागक्षत्र की मृत्यु हो गई। अपने समय का यह महान सम्राट हुआ है। इसके राज्यारम के समय मे मेद जाति की स्थिति अत्यन्त सकटापन्न थी। असुर राज्य की बढती हुई शक्ति के सामने उसका स्वतत्र रहना बहुत कठिन था। तथापि उसने नई सेना का जो गठन किया वह केवल सीथियन लोगों से ही हार सकी और जब सीथियन और आर्यों का झगडा छिडा तो उसने अपनी बुद्धिमानी से असुर साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कराने मे अपने अलौकिक यश का परिचय दिया ।

इसके राज्यारोहण के समय के पहिले सेमिटिक जाति का वर्चस्व काल था। किन्तु मृत्यु के समय मे यह वर्चस्व काल बदलकर ईरानियो का हो गया था। इस प्रकार इतिहास मे मुमागक्षत्र एक बडे नेता के रूप मे स्मरण किया जाता रहेगा।

मेद देश का अतिम राजा इष्ट वेगु या इक्षवाकु हुआ[1] जिसे यूनानी लेखको ने अष्टयाजीस (Astyages) लिखा है। यह अपने मेद राज्य के स्वर्णिम युग मे पैदा हुआ था किन्तु बडा क्रूर और आलसी था। परिणामस्वरूप राज्य मे अशान्ति और कलह मच गई। राज्य की तरफ उसका कोई ध्यान नही था। ऐसी विगडी दशा मे उसकी सेना मे असतोष छा गया। राज्य के मिटने का एक कारण और हुआ। वह यह कि राजा के कोई पुत्र नही था अतएव सामन्त और सरदारो में अतर्कलह और षडयन्त्र प्रारम्भ हो गये। अन्त कुरु (Cyrus) के नेतृत्व

१. Sir पर्सी ने इसे इष्ट वेगु या इक्षवाकु लिखा है।

में जब उसके साम्राज्य के अन्तर्गत ही परशु प्रान्त वालो ने हमला किया तो उसकी प्रजा ने सहायता देने की अपेक्षा उसे पकडकर, उसे कुछ कुरु को सौंप दिया। इस प्रकार सन् ५५० ई० पू० मे मेद राज्य की बागडोर एक अन्य आर्य जाति के हाथ मे चली गई। यूनानी लेखकों के अनुसार इस सत्ता-परिवर्तन को एक राज्य से सत्ता का दूसरे राज्य के हाथ मे चला जाना नही माना गया अपितु इसे राज्य के एक अंतर्द्वन्द्व का ही शीर्षक दिया गया है। अर्थात् सत्ता का अन्तवर्तीय हस्तातरण मात्र माना गया है। एक शताब्दी के बाद भी यूनानी लेखको ने इस राज्य के समय को मेद राज्य की ही सज्ञा दी है।

मेद राज्य का वैभव

मेद राज्य अपने वैभव के लिए प्रसिद्ध था। असुर सम्राटो की भाँति ही वे साज-सज्जा और रहन-सहन के शौकीन थे। वे बडे-बडे पर्व और त्यौहार मनाते थे। उसके दरबारी लाल और पीले आभूषणो मे सजकर आते थे। उनकी मान-देयी शृंखलाएँ और कालरो पर सुनहरी काम अकित रहता था। ये शिकारो के बहुत शौकीन थे। वे मैदानो मे ही अपने खेलो को आयोजित करते थे। ये खेल बहुधा नगर के पास के उद्यानो अथवा 'स्वर्गों' मे रचाये जाते थे। वे आर्य भाषा का प्रयोग करते थे।[1]

इधर बेबीलोन मे राजा नमचूड का सन् ५६१ ई० पू० मे देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के बाद गत छः वर्षों मे तीन राजा गद्दी पर बैठे। और अन्त मे नमोनिदस Nabonidues गद्दी पर बैठा। यह एक बडे श्रेष्ठि का लडका था। किन्तु तत्कालीन पुजारी के हाथो की कठपुतली था। यह सन् ५५५ ई० पू० मे गद्दी पर बैठा। ऐसे पतन काल के सकट के समय के लिए यह उत्तराधिकारी किसी दशा मे भी योग्य नही था। किन्तु इसने एक बडा काम किया। इसने पुराने मंदिरो को खुदवाया, उनके जीर्णोद्धार कराये जिसके कारण हमे प्राचीन इतिहास की बहुत सामग्री उपलब्ध हो गई है। यदि यह राजा सिंहासन पर न बैठा होता तो भूतकाल की अनेक महान वस्तुएँ इतिहास के गर्भ मे ही पडी रह जाती।

1. 'The Spoken language was ofcourse Aryan', Sir Percy, 121

१०

परशु साम्राज्य का उदय

परशु का इतिहास लगभग २४०० वर्ष का रहा है जिसमे से आधे से अधिक काल मे उसका इतिहास शूरवीरता, अजेय और शक्तिशाली राज्यो के रूप मे गिना जाता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि परशु का इतिहास मेद देश के इतिहास से ही जुडा हुआ है और यह भी आर्य जाति की एक शाखा ही है। परशु का वश प्रवर्तक ऐलम राज्य का निवासी था जो कि अब फारस देश का ही एक प्रात है। इस प्रकार ऐलम, मेद और बाद मे फारस ये तीनो राज्य जो कि एक ही भूमि के भाग है कुल ६००० वर्षो का इतिहास मनुष्य समाज को देते है।

यद्यपि फिरदोसी ने फारस के पूर्व राजघरानो का इतिहास अपने प्रसिद्ध ग्रथ शाहनामा (राजाओ का इतिहास) मे लिखा है और उससे बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री ली जा सकती है। तथापि उसे सच्चा इतिहास समझना भूल होगी। क्योकि उसमे कई अनहोनी और तर्कहीन बातो का समावेश है जैसा कि उस युग के सब देशो के साहित्य मे प्राय. लिखा जाता था।

दातृ वश (Pisdad)

फारस का इतिहास एक दंतकथा से प्रारम्भ होता है। इस दतकथा के अनुसार पिसदाद (पूर्व-प्राचीन नियम निर्माता) शब्द का तात्पर्य है प्राचीन विधिदाता (Early law giver), मूल सस्कृत मे विश दातृ शब्द से इसकी उत्पत्ति मालूम होती है। वश प्रवर्तक क्षेमर्ष (Keiomarz) है जिसे अवस्ता मे आदम माना गया है और जिसने अपने दो पुत्रो सुशक और तैमर्ष (Hoshang & Tahmura) के साथ फारस मे सभ्यता की नीव डाली। किन्तु उससे अधिक दतकथाओ के साहित्य मे जमशेद का नाम विख्यात है। यह संस्कृत के यमसिद्धि का पर्यायवाची नाम है।[1]

1. The first portion of the name is identical with that Yama or Yima who is mentioned in chapter IX, Shid signifies brilliant —Sir Percy page 134

इसी राजा ने परशुपालि (Persepolis) या परशुपुरी (फारस की राजधानी) की नींव डाली जो कि अब तख्ते जमशेद के नाम से प्रसिद्ध है। फारस देश को बहुत सी कला और संस्कृति की देन भी इसी राजा के कारण गिनी जाती है। अगूरों की वारुणि भी इसी राजा के समय में प्रथम बार बनना कहा जाता है। कहते हैं कि राजा की एक पत्नी बहुत बीमार थी और उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। अतः उसने पास में खड़े हुए अगूरो का रस जो कि पास ही मे रखा हुआ था, अपनी जीवन यात्रा को समाप्त करने के उद्देश्य से विष समझ कर पी लिया। किन्तु मृत्यु के स्थान पर उसे प्रगाढ निद्रा आ गई और उसके स्वास्थ्य मे अन्तर दिखाई देने लगा। बस यही से अगूरी शराब की उत्पत्ति हो गई। और मुस्लिम धर्म ग्रहण करने के बाद कुरान के निषिद्ध करने पर भी आज तक वहाँ शराब पी जाती है।

यमसिद्धि ने काफी वर्षों तक राज्य किया किन्तु बाद मे वह हठी और गर्वीला हो गया। अब उसने देवता का रूप धारण कर लिया। उसकी इस अपवित्रता से उसका वैभव शीघ्र ही नष्ट हो गया। यश्त ने १९वे समुल्लास मे लिखा है कि :—

"इसके पहले कि उसने झूठ और असत्य हेतु जिह्वा और विचार खोले, यम की समस्त कीर्ति और वैभव आँखों के सामने से पक्षी की तरह उड गया।"

यहाँ प्राचीन लेखक यश्त ने भी जमशेद के लिए 'यम' शब्द का प्रयोग किया है।

अत· ईश्वरीय सत्ता ने उसका गर्व चूर करने के लिए असुर प्रदेश के जोहक (प्राचीन भाषा मे जिसे अज-दाहक Serpent कहा गया है) को भेजा जिससे भय-भीत होकर वह शिष्यस्तान (शीस्तान) भारत व चीन की ओर भागा किन्तु वह पकडा गया और मछली की रीड की हड्डी द्वारा बनाये हुए आरे से उसके शरीर को चीर कर मार डाला गया। कहा जाता है कि जोहक के शरीर के कधो पर दो सर्प फुफकार मारा करते थे। इन दोनों सर्पों को भोजन के लिए दो मानवो का मस्तिष्क प्रतिदिन के हिसाब से देना पडता था। अन्त मे 'कब' नामक एक लुहार के दो लडको को भेट किये जाने की बारी आई। यह लुहार व उसके लडके अत्यन्त लोकप्रिय थे। अत. उनके पक्ष मे जोहक के विरुद्ध जन-विद्रोह हो गया। कब ने अपने पहनने के वस्त्र का झडा बनाया और जनता ने फेरीदून नामक एक राज्यवशी के नेतृत्व मे जोहक का सामना किया और उसे हेमवत या देवबत पहाड के दर्रे मे कैद कर दिया। वहाँ धीरे-धीरे उसे घुल-घुल कर मरने की सजा दी गई। वास्तव मे जोहक की यह कथा प्रमेथियस की कथा सी ही मालूम होती है। फरदून (Feridun) (प्रद्रोण) प्राचीन Thratona है जिसे वेद काल मे

त्रैतन नाम से पुकारा गया है जहाँ उसने एक बडे दैत्य का सिर काट कर ख्याति प्राप्त की थी।[1]

दन्त कथा के आधार पर फरदून के तीन लडके थे। बडे लडके क्षेम को उसने पश्चिम का राज्य दिया, मझले लडके तूर को उसने पूर्व का भाग दिया जो आगे चलकर तूरान कहलाया और सबसे छोटे लडके ऐरिज (आर्यंज-Erij) को अपनी मृत्यु के बाद परशु का राज्य देने का संकल्प किया। निश्चय ही यह निर्णय दोनों बडे भाइयो को मान्य नही था। और उन दोनों ने मिल कर आर्यज की दया की प्रार्थना को ठुकराते हुए उसे मार डाला। उसके मस्तक मे मसाला भर के अपने पिता त्रैतन के पास पहुँचा दिया। त्रैतन असहाय था। उसने अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु को खेद और शोक सूचक अश्रुपूर्ण नेत्रो से देखा। कुछ दिन बीतने के बाद जब आर्यज का लडका मनुस्र[2] बडा हो गया, तो उसने शीघ्र ही दोनो भाइयो (अपने काकाओ) को मार कर अपने पिता का ऋण चुका दिया।

अब मनुस्र अपने पितामह त्रैतन या त्रिदोण की जगह गद्दी पर बैठा। उसका मुख्यमन्त्री शिष्यस्थान का राजा साम (Sam) था जिसका लडका शाल (Zal) और उसका लडका रुस्तम बहुत प्रसिद्ध हैं। रुस्तम राजाओ से भी अधिक फारसी साहित्य मे प्रसिद्ध है। भारत ईरान कहानियो मे यह अवश्य ही प्रसिद्ध नही है। यह कहा जाता है कि शाल के उत्पन्न होने के समय इसके शरीर पर श्वेत बाल थे। अतएव उसके पिता साम ने उसे अपना लडका मानने से इनकार कर दिया और यह बतलाया कि वह एक देव का लडका है और उसे अलबुर्ज पहाड पर से फिकवा दिया। जहाँ उसको एक सीमुर्ग ने पाल लिया। बाद मे देववाणी से पता होने पर साम ने पश्चात्ताप किया और उसे शाल मिल गया। वह अफगानिस्तान मे पढने लगा। वहाँ काबुल के राजा मेहराब की लडकी रुदबा (Rudabah) से उसका प्रेम हो गया। और शाल राजकुमारी के महलो पर उसके केशो को रस्सी की भाँति उपयोग करके उपर चढ गया। इसके बाद दोनो मे विवाह हो गया जिससे एक बलशाली पुत्र रुस्तम उत्पन्न हुआ। यह ईरानी साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध है। रुस्तम का अश्व रक्श या रक्ष भी बहुत प्रसिद्ध है।

मनुस्र की मृत्यु के बाद उसके सिंहासन पर उसका लडका नोजर (Nozar) बैठा जिसका राज्य एक पीढी तक चलता रहा। परन्तु यह अत्यन्त अयोग्य था। तूरानी राजा अफ्रेसियाब (Afrasiab) अमराश्व ने नोजर को मार कर फारस पर कब्जा कर लिया और १२ वर्षों तक राज्य करता रहा। इसके बाद ही विशदात् वंश की समाप्ति हो गई।

1 Sir Percy Cykes 135

2. Mnusahr

इस वंश की समाप्ति के बाद एक नया वंश फारस के सिंहासन पर बैठा जिसे क्यानी (Keianian) वंश कहते हैं। इनका समय बहुत कुछ इतिहास पर आधारित है। आजकल शिष्य स्थान के कुछ वंश अब भी अपने को क्यानी वंश का बतलाते हैं। यही हाल भारत मे रहने वाले पारसियों का है। किन्तु कुछ लोग इस वश को बलूचिस्तान का सफर (Saffar) वश मानते है।[1]

इस वश का शासक कैकवाद (कवि कोविद[2]) था जो मनुस्न का वशावलंबी था और जिसे रुस्तम ने लाकर गद्दी पर बैठाया था। रुस्तम ने अफ्रेसियाव या अमराश्व को मल्लयुद्ध मे हरा दिया। रुस्तम ने उसके लगोट को पकड लिया जिसके टूटने से वह भाग गया। अन्त मे वक्षुस नदी को सीमा नदी मानकर दोनों राज्यों मे सधि हो गई।

कवि-कोष, जो अपने पिता के सिंहासन पर बैठा, ने मजनदेरान पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण मे किसी मत्री की सलाह नही ली गई थी और अन्त मे वह 'श्वेतदेवों' (सफेद देवों) से हार गया। श्वेत देव से तात्पर्य सम्भवतः किसी गोरी जाति से है। ऐसा वर्णन है कि इस लडाई मे लोग अन्धे हो गये थे। ऐसा मालूम पडता है कि इस लडाई का वर्णन सुभागक्षत्र और लीडिया के राजा की लडाई का ही एक स्वरूप है। यदि ऐसा है तो कविकोविद को देवक और कवि कोप को सुभाग मानना चाहिए किन्तु वह एक सम्भावना ही है।

अफ्रेसियाव ने परशु पर चढाई की जिसमे शाल और रुस्तम का युद्ध बहुत ही रोचक ढग से हुआ। आगे का वर्णन कवि-कोप के लडके सियावुश का है जिसने अपने पिता को छोडकर अफ्रेसियाव अमराश्व का साथ दिया था। पहले तो अफ्रेसियाव ने उसका आदर सम्मान किया किन्तु बाद मे उसे मरवा डाला। सियावुश का लडका कवसुश्रवा (कै-खुसरु) बाद मे गद्दी पर बैठा।

बहुत से इतिहासकारो ने कैखुसरू को कुरुमहान (Cyrus the great) माना है परन्तु यह सही नही है। वास्तव मे भारत ईरानी दंत कथा के अनुसार कैखुसरू कव-सुश्रवा (Kav-Husurva[3]) है और प्राचीन ऐतिहासिक काल का व्यक्ति है। कई छोटी लडाइयो के बाद सुश्रवा रुस्तम को धन्यवाद देकर अफ्रेसियाव को मार गिराता है और अपने पिता सियावुश अश्वेताश्व का बदला ले लेता है।

---

1. Sir Percy p 229 "Ten thous and miles' भी देखिए।
2. Ibid Page 136
3. Ibid p. 137—Kei Khusru is the Kab Husrava of Indo Iranian legend"

सुश्रवा के पश्चात फारस की गद्दी पर (Lohvasp) लोहाश्व बैठा। उसने गुस्ताश्व के पक्ष मे राज्य त्याग कर दिया। यह वही गुस्ताश्व है जिसने जरस्थ्र् के साथ जरस्थ्र् धर्म अंगीकार कर लिया था। तूरान से इस समय भारी लड़ाइयाँ हुई। उनमे से एक मे लोहाश्व और जरस्थ्र् दोनो वाल्हीकि प्रदेश मे मारे गये।

गुस्ताश्व ने अपने लडके (Isfiandhar) अश्वंधरको कैद मे डाल दिया था। अत: जब लोहाश्व लडाई मे मारा गया तो अश्वधर ने फारस का सम्मान जीवित रखा। उसने विजित प्रदेशो को वापस ले लिया। गुस्ताश्व ने लोहाश्व की भाँति स्वयं गद्दी छोडकर अश्वधर को गद्दी देने का प्रलोभन दिया। परन्तु शर्त यह रखी कि वह रुस्तम को बेडी डालकर सिहासन के सामने लाकर हाजिर कर दे। अश्वंधर इस शर्त को मानकर रुस्तम से लडने गया किन्तु वह उसके हाथों मारा गया। कुछ दिनो बाद स्वय रुस्तम भी अपने भाई द्वारा धोखे से खत्ती मे पटककर मार डाला गया। इस प्रकार फारस के एक बडे प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन का अवसान हुआ।

गुस्ताश्व के पश्चात् उसका पौत्र ब्राह्मण (Bahman) सिंहासन पर बैठा। यूनानी इतिहासकारो ने उसका नाम अर्थक्सरसीज लाँगीमेनस (Artaxerxes Longimanus) लिखा है। वास्तव मे यह लेटिन नाम है। जो फिरदोसी के 'आर्देशिर' 'दोरजदस्त' का अनुवाद है और प्राचीन भाषा का 'दीर्घहस्त' है।[१] यह बहुत बडा विजेता हुआ है।

१. Ardeshir Dıraz dast (लबे हाथो वाला)—सर पर्सी

११

परशु वंश का उत्कर्ष

मूल फारस वालो के इतिहास में भी भेद जाति की भाँति यह तथ्य प्रकट होता है कि इन जातियो मे देश के मूल निवासी भी घुल-मिल गये और एकाकार हो गये। हेरोडोटेस ने भी यही मत प्रकट किया है।[1] उसके अनुसार फारसी जाति मुख्य तीन वर्गों मे विभाजित थी। इनमे प्रमुख जाति पसरगढी (Pasargadae) थी जिस पर अन्य जातियाँ आश्रित थी। दूसरी मर्व (Maravian) और तीसरी मासवीय (Maspians)। इन सबमे परस लोग श्रेष्ठ गिने जाते थे। 'सक्षमान'[२] जाति, जिसमे से प्राय सभी फारसी राजा उत्पन्न हुए हैं उनकी एक प्रमुख शाखा है। शेष फारसी लोग निम्न प्रकार हैं—

(१) पथयाल (Panthialaens) (२) द्रुसी (Derusiaenes) (३) श्रमण (Germanaenes[3]) जो खेती करते हैं, इसके अतिरिक्त दान (Daans); मर्त्य (Mardians); द्रुमग (Dropieans) जगली जातियाँ हैं। यह बात अब सर्वमान्य है कि पहली तीन जातियाँ आर्य विजेताओ की हैं और राज्य वंशी सक्षमानी लोग पसर या परशु जाति मे से हैं।[४] शेष जातिया अनार्य हैं और केवल श्रमणो को छोडकर जो कि कारमीनियन हैं, शेष के देशो का कोई पता नही है।

फारस की राज्य व्यवस्था मे उच्चवशीय शाखाओ का प्राधान्य है। सक्षमानी इनमे प्रमुख हैं परन्तु धीरे-धीरे यह तो राजवंशी लोग हो गये और दूसरी शाखाएँ धीरे-धीरे प्रजा बन गईं। परन्तु उन्हें राजवशियो के सदनो मे जाने का अधिकार पूर्णत सुरक्षित रहा। और वे प्राय मंत्री परिषद मे रहने लगे।

---

1. Herodotus Volume page 125

२. इस शाखा को इतिहासकारो ने हखमान और यूनानियो ने Achaemanes अखमानी लिखा है। हखमान 'सक्षमान' शब्द का ही अपभ्रंश मालूम होता है।

See Huart page 35

३. हर शब्द के पीछे 'इयन' शब्द हिन्दी में 'वाले' की भांति प्रयुक्त होता है।

4. Sir Percy, page 139

कुरु (Cyrus)

क्षेसी (CTesias) ने कुरु को फर्राश[1] होना लिखा है। किन्तु उसकी यह धारणा किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं है। हेरोडोटस ने कुरु के विषय में लिखा है कि अन्तिम मेद राजा अष्टवाक या इष्टवेगु को एक दिन स्वप्न हुआ कि उसकी लड़की मदिनी (Mandane) से एक अपूर्व जलस्रोत बह रहा है जिससे फारस ही नही वरन् सपूर्ण एशिया मे बाढ आ गई है। उसने यह स्वप्न अपने दरबारियों को बतलाया और इस भय से कि कही उसकी सन्तान उसके विनाश का कारण न बने उसका विवाह अपनी जाति से छोटी जाति के एक व्यक्ति से कर दिया। यह युवक बहुत सीधा, गम्भीर और अच्छे वश का था। Combyses (काम्भोज्य)[2] नाम का यह युवक मदिनी को अपने घर ले गया। कुछ दिनो बाद अष्टवाक ने फिर एक स्वप्न देखा कि मदिनी के कुक्ष से एक अगूर का वृक्ष उत्पन्न हुआ है जिसने सारी एशिया को ढक लिया है। अत: उसने अपनी लडकी को अपने घर बुला लिया और जब उसके लडका उत्पन्न हुआ तो राजा ने उसे अपने विश्वास-पात्र सरदार Harpogus (सर्वज्ञ) को सौपकर उसे वध करने की आज्ञा दी। यह सरदार इसको स्वय हाथो से वधकरने को तैयार न हुआ और उसने एक अन्य जाति के मुखिया मित्रदत्त गडरिया को उसे खुली वायु मे फेंकने के लिए दे दिया ताकि उसकी मृत्यु हो जाए। इस मुखिया की पत्नी ने अभी एक शिशु को जन्म दिया था। अत उसने इसे बदलकर अपने शिशु की लाश को सरदार को बता दिया और महान् कुरु इस मुखिया के यहाँ पलने-पोसने लगा। इस दयालु स्त्री का नाम स्पाको था जिसे कि कहानियो मे स्यारिन भी बतलाया गया है। बहुत दिनो के बाद अष्टवाक को जब अपने नाती का पता चला तो उसने प्रसन्नता के साथ उसे बुला लिया।

सर्वज्ञ की दुर्दशा

सभवत अष्टवाक को सर्वज्ञ की इस कृतघ्नता का पता चल गया था, अत: कुछ दिनो के बाद शाही भोजन मे सर्वज्ञ को बुलाया गया और वहाँ भोजन मे उसके नवजवान लडके का मांस परोसा गया और उसके साथ पैर व सिर एक तश्तरी मे रख कर उसे पेश किये गये। इस प्रकार के असहनीय अपमान से सर्वज्ञ जल गया और उसने चुपचाप कुरु को जो कि उस समय अपने पितृ गृह को चला गया था बुलाकर अष्टवाक पर आक्रमण करा दिया। अष्टवाक ने इसी सर्वज्ञ की अधीनता मे उससे लडने को एक सेना भेजी परन्तु वह स्वय कुरु से

1. Sweeper of the palace : CTesias—"passing of the Empire", page 596
2. Kambhu-jya—Huart, page 34

मिल गया और अष्टवाक का सन् ५५३ ई० पू० मे सर्वनाश करा दिया व उसकी राजधानी एकपट्टन का भी सर्वनाश कर दिया।

महान् कुरु का इतिहास

५५० ईसा पूर्व मे कुरु ने अष्टवाक या इक्षवाकु पर आक्रमण किया था जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। इतिहासकार नबोनी दास (Nabonidus) ने लिखा है कि अष्टवाक की सेना कुरु के साथ मिल गई। इस बडी संहारक लडाई के बाद कुरु ने एकबतन या एकपट्टन राजधानी को खूब लूटा। सोना-चाँदी आदि बहुमूल्य वस्तुएँ वह अपने साथ अनशन को ले गया।

वास्तव मे पसर जाति के राजा सक्षमान (Hakhamanish) या Achaemanes ने ही फारसी राजवंशीय घराने की नीव डाली।[1] इसी घराने मे फारस के एक से एक बडे सम्राट और राजा हुए। सक्षमान राजा फारसी राजाओ मे विशेष स्थान रखता है। इसने पसगढ नाम की राजधानी बसाई, जिसके खडहर आज तक विद्यमान हैं। उसके समय का कोई बडा कार्य होना नही पाया जाता। तथापि उसकी याद आज तक लोगो को है। यही उसके प्रसिद्ध होने का भारी कारण है। उसने सभ्य फारसी कबीलो को इकट्ठा करके उन्हे एक सूत्र मे बाँध दिया जो बाद मे इतिहास की सामग्री बने।

हुअर्ट के अनुसार इस वश मे तीन राजा बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। तिष्यपोष (Chishpish), द्वितीय कुरु और काम्भोज्य। सक्षमान के लडके तिष्यपोष ने ऐलम राज्य पर चढाई करके उसे जीत लिया और उसकी राजधानी अनशन पर कब्जा कर लिया। इसके पश्चात् उसने 'शाहंशाह अनशन के सम्राट' की पदवी धारण की। इस राजा के बाद से ही उसके दो पुत्रो ने दो पृथक् राजघरानो की नीव डाली। एक तो अनशन के राजा बने और दूसरे मूल फारस के। इस राज्य की वंशावली निम्न प्रकार है :—

सक्षमान ६५० ई० पू०

तिष्यपोष (अनशन गया)	आर्य रमण (फारस की गद्दी) ६०० ई० पू० Arsmes
कुरु प्रथम (Cyrus I)	हर्षम्—(Arsmes)
काम्भोज्य प्रथम (Cambyses)	असलाश्व –(Hyslespas)
महान् कुरु द्वितीय (Cyrus II)	द्—(Darius)
काम्भोज्य II (Cambyses)	

1. Sir Percy 142
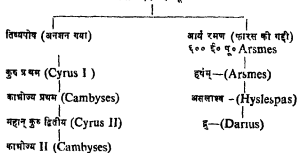
कुरु फारस के सम्राट के रूप में

इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि कुरु एकदम सम्राट कैसे हो गया। सन् ५४६ ई० पू० मे उसे अनशन का राजा लिखा गया है और तीन वर्ष बाद सन् ५४६ के एक लेख मे उसे फारस बादशाह लिखा गया है। संभव है कि उसे फारस का राज्य बिना बहुत लडे ही मिल गया हो। और 'एक वतन' पर आधिपत्य के साथ ही वहाँ का वह स्वामी स्वीकार कर लिया गया हो क्योकि कौटुम्बिक दृष्टि से यह राज्य उसके कुटुम्ब का ही था अर्थात् नाना का था। जब कुरु ने मेद सिंहासन जीता, उसकी अवस्था कोई अच्छी नही थी। सौभाग्य से उस समय बेबीलोन मे नभोनिदस (Nabonidus) राजा राज्य कर रहा था जो कि बडा शांतिप्रिय था। किन्तु लीडिया के विषय मे ऐसी बात नहीं थी। Alyattes अलहरन ने सुभागक्षत्र की लड़की से विवाह कर लिया था यह पहले ही बताया जा चुका है।[1] किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का क्रोष (Croesus) राज्य सिंहासन पर बैठा। यह एक बहुत धनी राजा समझा जाता था। चूकि इसे अपने उत्तराधिकार के लिए ही काफी लडना-झगड़ना पडा था, अत पिता की मृत्यु के बाद ही उसने अपनी विजय जारी रखी और धीरे-धीरे छोटे-छोटे यूनानी द्वीपो पर कब्जा कर लिया। पूर्व दिशा मे भी उसने आगे बढना जारी रखा और दस वर्षो मे ही यह हेलीस नदी के किनारे तक पहुँचकर राज्य स्थापित करने मे समर्थ हो गया। यह उस समय की बात है जब कि इक्षवाकु कुरु के साथ युद्ध मे उलझा हुआ था।

क्रोष को अपने नाना के राज्य का पतन अच्छा नही लगा। क्योकि अभी तक उसे एक मामूली पडोसी से वास्ता था अब उसकी अपेक्षा एक बडे व्यक्ति से उसका पाला पडने वाला था। उसके पास एक बहुत ही दक्ष घुडसवार सेना थी और किराये के यूनानी सैनिको की एक बडी सहायक फौज थी। अत: उसने फारस की शासन सत्ता की पूरी जडें जमने के पहले ही कैपेडोसिया पर आक्रमण करने का विचार किया ताकि फारसियो मे एकदम निपट लिया जाए। उसने प्रसिद्ध यूनानी मदिर डेल्फी के यहाँ भविष्यवाणी[2] के लिए दूत भेजे। मदिर से भविष्यवाणी हुई कि यदि क्रोष आक्रमण कर दे तो वह एक शक्तिशाली साम्राज्य को नष्ट कर देगा। अत: अब चारो तरफ दूत भेजे गये। मिश्र के अमासी राजा तथा बेबीलोन के नभ (Nabo) राजा मेद के पतन से भारी दुखी हुए थे। अत: उनके पास समाचार गया तो वे भी सहायतार्थ तैयार हो गये। यूनान के

---

१. लीडिया (अलस्पी)—लडकी सुभागक्षत्र इक्षवाकु मदिनी कुरु—(फारस)

२. यूनान मे प्राचीन प्रथा थी कि डेल्फी के मंदिर मे भविष्यवाणी हुआ करती थी जिसके अनुसार भक्तगण कार्य किया करते थे।

लोगों के पास भी जो कि वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं संदेश भेजे गये। इस तरह चारों ओर से घेराबन्दी करके लीडिया ने मैदान मे उतरना शुरू किया। किन्तु उधर कुरु भी बेखबर नहीं था। उसने, उसके पहले कि ये सब राजा गण उसके विरुद्ध एक संगठित रूप मे युद्ध के लिए उतरें, लीडिया को शीघ्र ही परास्त करने के लिए कूच कर दिया। लीडिया के क्रोष को भरोसा ही न था कि फारसी लोग एक सहस्र मील भारी और साहसिक यात्रा के साथ उस पर हमला कर सकेंगे। परन्तु जब कुरु कैंपेडोसिया में घुसा तो उसने क्रोष को बिल्कुल सहायता विहीन पाया। अत दोनो राजाओ मे सधि वार्ता शुरू हो गई। कुरु ने शर्त रखी कि यदि क्रोष अधीनता स्वीकार कर लेता है तो वह उसका जीवन और राज्य दोनो छोडने को तत्पर है। क्रोष ने इस शर्त को मानने से इनकार कर दिया। अत. लडाई प्रारम हो गई। पहली लडाई मे लीडिया वाले जीत गये। अत दोनों सेनाओ ने तीन महीने के लिए विराम संधि स्वीकार कर ली। तीन महीने बाद जब युद्ध प्रारभ हुआ तो कुरु की अधिक फौज होने के कारण तेरिया (PTeria) नामक स्थान पर क्रोष की भारी पराजय हुई। वह रात्रि के अन्धकार मे सार्द प्रदेश की ओर भाग गया। रास्ते मे वह अपने देश को उजाड करता गया ताकि कुरु उसका पीछा न कर सके। सर्दी का मौसम आ रहा था। बर्फ पडनी शुरू हो गई थी। पीछे बेबीलोन का प्रतापी राज्य है ही, ऐसा समझ कर उसने पुन युद्ध का कोई खास प्रयत्न भी नही किया।

बेबीलोन के राजा नभ ने अपने साथी का साथ छोड दिया और कुरु की शर्तें स्वीकार कर ली। अत मार्ग की इस बाधा के दूर होते ही कुरु बडे वेग से सार्द प्रदेश (सार्डीज) की ओर चढ दौडा। क्रोष बेखबर था और उसे समलने का अवसर ही नही मिला। निदान हरमस के मैदान मे युद्ध हुआ। कुरु ने शत्रु के सामने वाली अगली पंक्ति मे ऊंट सवारो को खड़ा कर दिया जिसके कारण लीडिया और यूनान के घोडे दुर्गंध से बिचक-बिचककर मैदान से भाग निकले और कुरु को भारी विजयश्री मिल गई।

सन् ५४६ ई० पू० मे कुरु ने सार्डीज पर चढाई कर दी। उसकी फौज ने शहर को १४ दिन तक घेरे रखा। कोई आदमी नगर के भीतर घुस भी नही सकता था। एक दिन अचानक कुरु की फौज के कुछ आदमियो ने किले की चट्टानो से एक आदमी को उतर कर अपना टोप उठाते देखा और वह आदमी फिर वहीं से वापस लौट गया। अतः कुछ फौजियो ने इसे भीतर घुसने का मार्ग संकेत पाकर उस स्थान पर अचानक आक्रमण कर दिया और भीतर घुस कर फाटक के दरवाजे खोल दिये। कुरु की फौज की भारी विजय हुई और क्रोष की फौज के जवान बड़ी वीरता के साथ लड़ते हुए एक-एक करके मारे गये।

क्रोष का अन्त

आधी शताब्दी पूर्व जिस प्रकार निनेवाह् पतन के समय वहाँ के राजा ने हार से अपमानित होकर लकडी की चिता मे बैठकर अपने को स्वाहा किया था, उसी अनुसार क्रोष ने भी अनुसरण किया। वह अपनी बहुमूल्य सपत्ति के साथ अपनी रानी, पुत्रियों, पुत्रो के साथ चिता मे जलकर भस्म हो गया।

चिता में भस्म होने की प्रथा शुद्ध आर्य प्रथा है। महाभारत काल मे भी अर्जुन ने काष्ठ अग्नि मे जलने का आह्वान किया था। यह प्रथा भारत मे काफी समय बाद तक प्रचलित रही। यहाँ तक कि ११वी शताब्दी मे कश्मीर के राजा आनन्दपाल ने भी महमूद गजनवी से पराजित होकर अग्निदाह कर लिया था।

क्रोष ने अग्निदाह के समय शातिपूर्वक तीन बार सूर्य के नाम का उच्चारण किया क्योकि एक साधु ने उससे कहा था कि मृत्यु हो जाने तक कोई आदमी भी सुखी नही है।[1] अत जब वह शातिपूर्वक अविचलित भाव से चिता मे बैठा तो कुरु इसकी धीरता से विचलित हो गया। उसने शीघ्र ही अग्नि को शात करने की आज्ञा दी किन्तु तब तक क्रोष जल चुका था।[2]

1. Edward . Iranian Human Sacrifice.
2. Herodotus

१२

यूनान और उसके ज्ञान-गुरु आर्य

सातवी शताब्दी ई० पू० तक के जो तथ्य यूनान के बारे मे प्रकट हुए हैं उनसे आगे के तथ्य अब तक इतिहास वालो को प्राप्त नही हो सके है। तथापि हाल ही की खुदाई से जो लिखत मे तथा लेख प्राप्त हुए हैं उनसे यूनान के बारे मे कुछ अधिक जानकारी मिल जाती है। यद्यपि यूनानियो के इतिहास मे कुछ ऐसे पृष्ठ हैं जिन पर काफी मतभेद है तथापि उनके सामूहिक चरित्र पर उनकी प्राकृतिक और भौगोलिक स्थिति का जो प्रभाव पडा है उसके कारण बहुत सी इतिहास की सामग्रियो मे सामान्यता भी पाई जाती है। यूनान द्वीप समूह बहुत से छोटे-छोटे टापुओं का एक समूह है। अतएव उनमे अलगाव की भावना के साथ साथ ही समुद्री शक्ति के रूप मे उदय होने और आवश्यकतानुसार एक होकर मुकाबला करने की भी काफी क्षमता पाई जाती है। यह तथ्य प्राय सब विद्वानो द्वारा माना गया है कि यूनान के आदि निवासी और मेडीटेरेनियन समुद्र के उत्तरी किनारे के व्यक्ति काले बालो वाले थे। यह न तो सेमिटिक थे और न आर्य ही। ये लोग पेलसगी नाम से जाने पहचाने जाते थे। इन लोगो की आश्चर्यजनक सभ्यता थी जिसका वर्णन प्रसिद्ध खोजी स्लामेन 'माइसीन' की और इवान्स ने 'नोसिस' की खोजो मे किया है। यह सही है कि उत्तर से आये हुए आर्यों ने इन लोगो को जीत लिया[1] किन्तु इस प्रवास की विजय के सन् सवत का कोई पता नही लगता। कुछ समय के बाद आर्यों ने पुराने निवासियो से अपने संबध बढा लिये और उनसे घुल-मिल गये। आगे चलकर उन्होने उन पर अपनी भाषा भी थोप दी। किन्तु आदि निवासी भी सुरक्षित रहे और उन्होने आर्यो को बहुत से अनार्य शब्दो का ज्ञान भी कराया। इन्ही आर्यो से ही यूनानियो को कलात्मक ज्ञान का विकास भूमध्य सागर के सहवर्तीय क्षेत्र से प्राप्त हुआ।[2]

1. Sir Percy, Page 148
2. Hall, Page 537 and Sir Percy, p. 148

एशिया माइनर की यूनानी बस्तियाँ डोरियन हमले के कारण ही बसी। ये डोरियन लोग उत्तर से आये थे और उन्होने पोलोपानीसस व दूसरे यूनानी भागो को जीत लिया। यह घटना १००० ई० पू० की है। डोरियनो की विजय से भागने वालो की बाढ आ गई जो एशियाई समुद्र के किनारे तक फैल कर बसते गये। यहाँ उन लोगो ने अपूर्व उन्नति की। लीडिया से उनका एक प्रकार से मेल-जोल ही रहा। क्योंकि दोनो एक ही प्रकार के देवताओ को पूजने वाले थे।

जैसाकि ऊपर वर्णन किया जा चुका है क्रोप के पतन के बाद फ्राइजियन्स (Phrygians) तथा मार्गियन्स आदि एशियाई जातियो ने कुरु की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु कुछ बलवान जातिया भी थी जिन्होने आधीनता स्वीकार करने मे इन्कार कर दिया। क्रोप के युद्ध के समय यद्यपि इन लोगो ने कुरु का साथ नही दिया तथापि क्रोप की भी सहायतार्थ अपनी अँगुली नही उठाई। अब उन सबने सकट आया देखकर अपनी रक्षा के लिए यूनान के स्पार्टन लोगों को युद्ध मे सहायता करने हेतु आमत्रण दिया। यूनान के पूरे देश मे स्पार्टा निवासी अपनी शूरवीरता के लिये प्रसिद्ध थे। अत स्पार्टा के दूत ने कुरु को संदेश भेजा कि वह यूनानी शहरो का सम्मान करे अथवा उसे स्पार्टा के क्रोध का भोजन बनना पड़ेगा। सम्राट कुरु जिसका व्यग-हास्य स्पार्टनो से अधिक तीव्र था, ने इस सलाह के लिए उन्हे धन्यवाद दिया व फिर कहा, "मै जल्दी ही तुम लोगो को उवलने का अवसर नही दूँगा। यूनानियो के दुर्भाग्य के कारण नही अपितु स्वय अपने अपराधो के लिए भी उवलने नही दूँगा।" इसके बाद उसने प्रबल वेग से भयकर आक्रमण कर दिया। धीरे-धीरे करके यूनानी बस्तियाँ ले ली गईं। परन्तु कुछ लोगो को स्वाधीनता इतनी प्रिय थी कि वे अपने शहरो को छोड़कर हमेशा के लिए मार्सेलाज मे जाकर बस गये। इनमे फोकल (Phocala) और टेव (Teos) प्रमुख थे।

एशिया माइनर की यूनानी बस्तियो और सार्द (सार्डीज) को लेने के पश्चात् कुरु ने अपना ध्यान पूर्व की ओर फेरा। ५४५ ई० पू० से ५३९ ई० पू० तक उसका कोई वर्णन नही मिलता है। सिवाय इसके कि वह पूर्व के जगली कबीलो को दबाने मे फिरता रहा। पहले उसने वाल्हीक (बलख) मर्व (margiana) समरकद (Sogdiana) तथा फिर क्षीर नदी (Jaxa tes) ले ली व बाद में वहाँ एक किला बनवाया जो सिकन्दर के समय तक विद्यमान था। इस किले का नाम कुरुपुरी (Cyropolis) था। आजकल इसे उरातुवेह कहते हैं। इसके बाद वह शक लोगो व अफगानिस्थान तक के कबीलो पर विजय प्राप्त करता रहा। ऐसा कहा जाता है कि इस सम्राट की बहुत सी फौज मकराने मे नष्ट हो गई। संभवत. ऐसा हुआ हो परन्तु यह सिद्ध नही है।

५३८ ई० पू० कुरु ने फिर वेबीलोन पर चढाई की। बेबीलोन सरीखा एक

राष्ट्र पडोस में स्वतंत्र रहे यह भला कुरु कैसे सहन कर सकता था ! अत: उसने बेबीलोन के दक्षिण भाग पर ऐलम के मार्ग से आक्रमण कर दिया। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, बेबीलोन मे इस समय पुजारियो का वर्चस्व था। राजा का अधिकांश समय प्राचीन समामण्डलो और पूजागृहो तथा प्राचीन वस्तुओं की खोज और साज-सभार पर खर्च हो रहा था जिसके कारण कोष पर भारी बोझ आ पडा था। अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए उसने प्रजा पर टैक्स भी लगाये। अत: प्रजा भी प्रसन्न नही थी। संपूर्ण शासन सत्ता उसके लडके बलि असुर (Belsazzur) के हाथों मे निहित थी। उधर यहूदियो के पैगम्बर ने बेबीलोन के पतन की घोषणा कर ही रखी थी। जो यहूदी बाहर निष्कासित होकर जीवन व्यतीत कर रहे थे; वे भी अवसर की ताक मे थे। नभोनिदास Nabonidus ने बाहर से ऊर, ऊरक, और आर्यंदु (Iridu) से देवगणो और उनके साथ उनमे पुजारियो को राज्य मे रख छोडा था। इन सब कारणो से प्रदेश मे अशाति छा गई थी।

सर पर्सी ने बडे विस्तार के साथ 'नभो' पर यह दोषारोपण लगाया है कि प्रजा उसके देवगणो की भक्ति से ही रूठी हुई थी। किन्तु यह सत्य नही है। बेबीलोन सदृश छोटा सा राष्ट्र शक्तिशाली कुरु का मुकाबला कर ही नही सकता था। सूखे दिनो मे कुरु ने टिगरिस और दियाला नदियो का पानी कम करा दिया। फिर स्वयं उसने बडी सेना के साथ इन्हे पार कर उत्तर की ओर बढना शुरू किया। पता नही देशद्रोह के कारण अथवा अज्ञानता के कारण बेबीलोन की सेना ओपिस नगर से आगे नहीं आई और इस प्रकार उसका सबध बेबीलोन से टूट गया।

इसी समय कुरुका महान सेनापति गौपौरव (Gaubaru)[१] था, जो यूनानी साहित्य मे गोब्रीयस के नाम से प्रसिद्ध है उसने सिपर स्थान पर कब्जा करके बेबीलोन को बिना किसी युद्ध के अपने अधिकार मे ले लिया। जैसा कि कल्पना थी बेबील्लोन के राजा ने जल्दी ही आत्मसमर्पण कर दिया।

कुरु ने मंदिरो की सपूर्ण रक्षा का आदेश देते हुए कठोर शब्दो मे लूटमार न करने की घोषणा की। इस कारण जब महान सम्राट नगर मे घुमा तो उसकी बडी आवभगत की गई। कुरु द्वारा एक लिखतम जोकि 'मिलेन्डर' कहलाती है में कुरु ने अपनी विजय का इस प्रकार वर्णन किया है—मैं जब शाँतिपूर्वक तिन्तिर (बेबीलोन) मे घुसा तो राजभवन मे हर्षजनक ध्वनियाँ और प्रसन्नताएँ अभिव्यक्त की जा रही थी। मैंने सिंहासन पर जाकर आधिपत्य किया।[२]

---

१ Sir Percy ने इसे गौबीरव (गौपौरव –सस्कृत नाम) लिखा है, पृष्ठ १५१
२. वही, पृष्ठ १५१

राजा के पुत्र बलि असुर ने हथियार नहीं डाले। अतः गौपौरव ने उसका पीछा किया और एक युद्ध में उसे मार डाला। इसके बाद गौपौरव को ही कुरु ने बेबीलोन का राज्यपाल नियुक्त किया। ऐसा कहा जाता है कि कुरु को अपने जीवन काल मे इतनी सस्ती विजय शायद ही कही मिली हो जैसी कि इस संसार प्रसिद्ध देवी-देवताओं के प्रथम स्थल में मिली। कुरु ने बडी चतुरता से "बैल के पजे" को ग्रहण कर लिया और शासक नभो द्वारा बेबीलोन में लाई गई देवताओं की प्रतिमाओ को उन शहरो को वापिस भिजवा दिया जिससे उन स्थानो की प्रजा बहुत ही संतुष्ट हुई।

फारस के इतिहास मे सबसे अधिक मतमतान्तर बेबीलोन की कुरु द्वारा विजय के विषय में उपलब्ध होते हैं। अन्य सूत्रो के प्राप्त होने तक नदियो के सुखाने आदि की बात जो हेरोडोटस तथा डेनियल की पुस्तको मे लिखी थी, उस पर ही विश्वास किया जाता रहा था। बहुत सों ने रक्तपात की अतिरंजित घटनाओ के साथ पूर्ण विजय की बात भी लिखी है। इस संबध मे इसैयाह (Isaiah) ने घृणात्मक वाक्यो तक का उपयोग किया है।[1]

लीडिया और बेबीलोन का पतन हो ही चुका था। अब केवल मिश्र शेष रहा था। फोनीशियन्स का बहुमूल्य समुद्री बेडा कुरु के साथ सहयोग कर रहा था। अत अगले आठ वर्ष उसने भावी योजनाओ को बनाने मे निर्धारित किये।

कुरु ने यहूदियो के साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया। पश्चिम के लेखक इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते है कि इसका कारण क्या था कि सम्राट ने यहूदियो के साथ इतनी नरमी बरती। उनका विचार है कि यहूदी और फारसी धर्म मे कई बातो मे समानता है। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि बेबीलोन को हराने मे यहूदियो ने सम्राट का काफी साथ सहयोग दिया हो। सम्राट ने न केवल जेरुसलेम नगर व उसके मन्दिर का जीर्णोद्धार किया अपितु सोने और चाँदी की बहुमूल्य वस्तुएँ भी मन्दिर को वापिस कर दी और 'ईजरा की पुस्तक' के लेखन मे पूरी-पूरी सहायता दी।

रहस्यमय परिस्थितियो मे सम्राट की मृत्यु पूर्व की ओर से हमलावारो को दबाने के सिलसिले मे सन् ५२६ ई० पू० मे हो गई। हेरोडोटस ने लिखा है कि उसने मसकत (massagaete) की रानी तोमरी (Tomyris) को विवाहने की इच्छा प्रकट की जिसे उसने घृणा के साथ अस्वीकार कर दिया। अत उसने उस पर चढाई कर दी। कुरु की सेना ने रानी के मोर्चे की अगली पक्ति को बुरी तरह हरा दिया और उसके बडे लडके को पकड लिया। उस लडके ने तत्काल आत्महत्या कर

1. Hell from beneath is moved for thee to meet them at thy coming, it stirred up the dead for thee, etc—Isaiah

की। बाद में फिर भयंकर संग्राम छिड़ गया जिसमें कुरुकी पराजय हुई और वह मारा गया। रानी ने क्रोध मुद्रा में अपने लडके की मृत्यु का बदला लेने के लिए कुरुके मस्तक को ताजे खून में डुबकियाँ लगवाई और कहा कि "तुझे खून चाहिए तो ले मैं देती हूँ।" किन्तु विद्वानो की राय मे इस दतकथा मे सत्यता का अंश कम है। क्योंकि सम्राट का शव परसगा मे लाया गया था जहाँ उसकी समाधि अभी तक बनी हुई है। बेवोसिस नामक लेखक के अनुसार कुरु की मृत्यु पार्थ देश के दस्युओ (पार्थिया के दह)[1] के विरुद्ध लडे जाने वाले युद्ध मे हुई।

कुरुससार के इतिहास मे महानतम सम्राटो मे गिना जाता है। एक छोटे से राज्य मे जन्म लेकर उसने बडे-बड़े लीडिया और बेबीलोन सरीखे शक्तिशाली और संपन्न राष्ट्रों को कुछ महीने मे ही सर कर लिया। यह उसकी कार्यकुशलता का एक प्रमाण है। उसका रण कौशल भी अद्वितीय था जो उसने लीडिया में क्रोष को पराजित करने मे बताया था। इसी प्रकार सार्द प्रदेश(सार्डीज)मे भी उसने कौशल तथा पराक्रम का चमत्कार बताया था। उसका व्यक्तित्व व चरित्र उत्तम था। उसने कभी भी भोग-विलास मे अपना समय नही गवाया। उसने वर्ण-भी (Pharnaphes) लडकी कसनधनी से विवाह किया था। किन्तु जब उसकी मृत्यु हो गई तो सम्राट ने उसका बहुत ही शोक मनाया। यवन यूनानियों से हुई वार्ता से उसकी अपनी हास्य प्रतिभा का भी काफी पता चलता है।

एक्सोनोफोन ने कुरुपीडिया[2] नामक ग्रथ मे सम्राट के विषय मे लिखा है: "उसने सारे संसार के ऊपर इतनी धाक और आनक जमा रखा है कि किसी को उसके विरुद्ध जाने का साहस ही नही होता। वह अपना मत अपने साथियो मे इतनी प्रसन्नता से स्वीकार करा लेता था कि सब लोग उसकी सलाह और राज्य प्रणाली को चाहते थे।"

होलीरिट (Holywrit) नाम के पवित्र ग्रथ और प्राचीन लेखको के आधार पर यह निश्चय से कहा जा सकता है कि उसके पीछे जो 'महान' पद लगाया गया वह सर्वथा उचित था। उसके देशवासी उसे स्नेह करते थे और पिता कहते थे—"हम भी अनुभव करते है कि एक प्रथम महान आर्य—जिसका चरित्र ससार भर ने देखा वास्तव मे उच्च गुणो से भरपूर था।[3]" उसने विजित देशो की प्रजा के साथ दयालुता का व्यवहार किया। इस मार्ग मे वह असुरो से सर्वथा भिन्न था। परतु लोगो ने जिन नगरो को जीता उन्हें नष्ट-भ्रष्ट नही किया, सिवाय उन दशाओं के जबकि वहाँ भयंकर विद्रोह हुआ। इसके विपरीत असुरो ने जिन नगरो

---

1. Dahae of Parthia
2. Xenophone in Cyropaedea
3. Sir Percy, Page 155

को जीता उनकी चार-दीवारी ढहा दी गई और निवासियों को वहाँ से भाग जाने को विवश कर दिया। एक असुर राजा ने दर्पोक्ति के साथ कहा भी था कि "मैंने नगरों को आग की लपेटो मे झोंक दिया है। उन्हें पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट करके बरबाद कर दिया। उन्हें धूल के ढेर मात्र कर दिये हैं और उन पर मेरी विजय पताकायें गाड़ दी हैं।"[1]

कांभोज्य[2]

"मै द्र महान नरेश, राजाओं का राजा, नरेशों की उस भूमि पर जहाँ प्राचीन काल से अनेक जातियाँ निवास करती चली आ रही हैं, दीर्घ काल से सम्राट बना हुआ हूँ। मैं विश्ताश्व का पुत्र, सक्षमान वंशीय फारसी, और फारसी का पुत्र आर्यवंशीय जाति का आर्य हूँ।" —सम्राट द्र

कुरु और उसकी पत्नी कसनधनी का सबसे बडा लडका कांभोज्य हुआ। एक बडे साम्राज्य का उत्तराधिकारी होने के नाते वह बड़े लालन-पालन के साथ पाला गया। अपने पिता कुरु के शासन काल मे ही वह बेबीलोन का प्रशासक नियुक्त किया गया था। कुरु ने अपने जीवन काल ही मे यह व्यवस्था कर दी थी कि उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रो मे किसी प्रकार का उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद उत्पन्न न हो जावे, इसीलिए उसने छोटे लड़के 'भारतीय'[3] को, जो कि यूनानी साहित्य मे स्मरदिम (Smerdis) के नाम से विख्यात है, क्षुरस्थान-खुरासान (ख्वारिज्म), वाल्हीक (बेक्ट्रिया), पार्थ (पार्थिया); और कर्म-स्थान (किरमान-करमीनिया), आदि सुदूर प्रदेश दे दिये थे जो केन्द्रीय स्थान से काफी दूर पडते थे। किन्तु आगे चल कर ऐसी परिस्थितियो का निर्माण हो गया कि यदि भारतीय बगावत का झडा न उठाता तो उसके प्राण संकट में पड़ जाते, क्योकि काम्भोज्य प्रत्येक मूल्य पर ये प्रदेश स्वय के पास रखना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह 'भारतीय' से इसलिए भी द्वेष रखता था कि भारतीय अत्यंत लोकप्रिय और व्यवहार कुशल व्यक्ति था। जब कि काम्भोज्य अत्यन्त क्रूर था जिसके कारण उसकी प्रजा ने उसका नाम 'आका' रख लिया था। उसकी क्रूरता का एक उदाहरण सामने आया है। उसके समय के ७ न्यायवादियों मे से एक भ्रष्टाचारी था। अत. उसने उस न्यायवादी बृक्षस्पीज Brexapes (बृहस्पति) की जिन्दा खाल उधडवाकर उस सिंहासन में लगा दी जिस पर वह बैठ कर न्याय देता था। बाद मे उसके लड़के को भी जो न्यायधिकारी नियुक्त हुआ, उसी कुर्सी पर

1. Huart Page, 45
२. Kam-Bhujya by Percy
3. सरपर्सी ने इसे बारदीय Bardiya लिखा है। यूनानियो ने इसे Smerdis लिखा है।

बैठ कर न्यायदान करने के लिए विवश किया ।

उसने इसी बीच मे समय-समय पर मिश्र देश के विरुद्ध आक्रमण करने की कई बार योजनाएँ बनाई। परन्तु इन्ही दिनो में कई पश्चिमी देशो से भी बगावत के झंडे उठने लगे ; अत उन सब को दबाने के लिए एक बडी फौज लेकर जाना अत्यन्त आवश्यक था। किन्तु इससे भी आवश्यक यह था कि जब वह सुदूर देश में हो तो घर पर शांति हो। किन्तु 'भारतीय' की लोकप्रियता के कारण कांभोज्य को घर पर भी भारी भय था। समय-समय पर दरबारियो ने भी भारतीय के विरुद्ध सम्राट के कान भरना शुरू कर दिये थे। अत उसने आक्रमण पर जाने के पहले घर से निबटना ही श्रेयस्कर समझा और सन् ५२६ई० पू० मे एक दिन गुप्त रूप से उसने अपने भाई भारतीय को मरवा डाला। पश्चिमी इतिहासकारो ने इसे कोई आश्चर्य-जनक घटना नही माना क्योकि एशिया और पूर्व के राजाओं मे उत्तराधिकार और राज्यो के लिए ऐसे काड हुआ करते थे।[१]

मिश्र पर आक्रमण

मिश्र का अमासी (Amasis) राजा इस बात को भाँप गया था कि फारस की शक्ति का उदय उसे किसी न किसी दिन अवश्य ही कष्ट पहुँचायेगा। अत: उसने चुपचाप धीरे यवन सागर के छोटे-छोटे यूनानी शहरो के अधिस्वामियो से साँठ-गाँठ करना शुरू कर दिया ताकि उनके जल-बेडे समय पर काम आ सके और कामोज्य के फोनीशियन बेडे से टक्कर ले सके। इसके अतिरिक्त उसने स्वयं अपनी सेना भी सगठित कर ली किन्तु समय और काम्भोज्य के सौभाग्य से यूनानियो की आपसी अन्तकलह से यह सहायता अमासी राजा को मिल ही न सकी अपितु उसके शत्रु काम्भोज्य को मिल गई। अत जब लडाई छिड गई तो अमासी को अकेले ही जूझना पडा।

सन् ५२५ ई० पू० मे काम्भोज्य ने पूरी शक्ति और वृहत् सेना के साथ अमासी पर आक्रमण कर दिया। वह सुरक्षित रूप से गजानगर तक बढता चला गया। अब इससे आगे मरुभूमि थी जिस पर से उसकी बडी सेनाओ का जल कष्ट के कारण आगे बढना अत्यंत कठिन था। किन्तु भाग्य उसका साथ दे रहा था। इसी समय फेनिस (Phanes) का राजा हरिकर्णाक्ष (Halicarnssus) उसे किराये पर मिल गया। उसके साथ हजारो ऊँटो ने खालो से पानी ढो-ढो कर सुरक्षित सेना के पड़ावो पर जल भडार उपलब्ध कर दिया। इसप्रकार सेना आगे बढती चली गई। इसी बीच मे मिश्र के दुर्भाग्य से अमासी राजा की

---

१. अनुश्रुति है कि सम्राट अशोक ने भी अपने भाइयो का राज्यारोहण के समय वध किया था।

मृत्यु हो गई। उसका लडका सेमाटी कस तृतीय (Psammetichus III) बिल्कुल नया और अनुभवहीन शासक था। इसलिए उसकी सेना में घोर निराशा फैल गई। सेम पूरी शक्ति के साथ अन्तिम दम तक लड़ा किन्तु उसकी भारी पराजय हुई। और वह अपनी प्राणरक्षा के लिए अन्य स्थान की खोज में पीछे भागा। कांभोज्य ने पेलूसियम नामक प्रसिद्ध राजधानी को जीत लिया। इसी नगर के कारण यह पेलूसियम का युद्ध कहलाता है। इस प्रकार मिश्र को भी पराजित करके कांभोज्य ने अब तक के संसार के सबसे बड़े राज्य का स्वामी होने का दावा सार्थक कर दिया। उसका राज्य नील नदी से वक्षुस नदी तक तथा काले समुद्र से फारस की खाड़ी तक विस्तृत हो गया। मिश्र और लीडिया से ले कर वाल्हीक प्रदेश तक उसका साम्राज्य फैल गला। यह साम्राज्य असुरों के साम्राज्य से भी बडा और विस्तृत था।

काम्भोज्य को बाल्यकाल से ही मिरगी के दौरे आते थे। सन् ५२१ ई० पू० मे जब वह मिश्र देश को पूरी तरह पराजित करके लौटा तो न्युबिया की ओर उसकी दृष्टि गई। किन्तु उसमे मिली असफलता ने उसके मस्तिष्क पर प्रभाव डाल दिया। जब वह घर की ओर लौट रहा था तो असुर प्रदेश मे उसने बगावत का हाल सुना। यह बगावत एक मागी[1] जाति के नेता द्वारा प्रारम्भ की गई थी। यह मागी नेता सूरत शक्ल से 'भारतीय' से मिलता-जुलता था। चूंकि भारतीय के मारे जाने का समाचार उसकी माँ और बहिनो तक को नही था। अत सबने भारतीय की ही यह बगावत समझी। इसी बीच मे काम्भोज्य को पता चला कि उसके कुछ और आदमियो ने उसका साथ छोड दिया है। अत. निराशा मे उसने असुर प्रदेश (असीरिया) के एकपट्टन नामक स्थान मे आत्महत्या कर ली। कुछ विद्वानो की राय के अनुसार जब वह घोडे पर बैठ रहा था तो उसने अपनी जाँघ मे शस्त्र घोप कर आत्महत्या कर ली। परन्तु बाद के सम्राट द्रु (Darius) द्वारा बहिस्तून के शिलालेख मे जो वर्णन मिलता है उससे अन्य गलत धारणाएँ समाप्त हो जाती है और उसकी मृत्यु की सत्यता का पता चल जाता है।

गौमत

गौमत[2] जिसे यूनानियो ने स्यूदो स्मर्दिस (Pseudo Smerdis) कहा है, ने अब कांभोज्य की मृत्यु के पश्चात निर्बाध होकर अपने को भारतीय बता कर सिहासन सम्हाला। चूंकि पूरे साम्राज्य-भर मे वह काम्भोज्य के उत्तराधिकारी के

१. मागी, माखी अर्थात मख = यज्ञ कराने वालो का नाम है। पुरोहित को भी कहते हैं। संस्कृत का अपभ्रंश है।

२. सर पर्सी ने इसे गौमत Gaumata (संस्कृत) नाम लिखा है। पृष्ठ १५६, यूनानियो ने Pseudo-Smerdis लिखा है।

रूप मे सामने आया। अत. उसकी अधीनता सबने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर ली। यह भेद कि वास्तव मे यह 'भारतीय' नही है कुछ ही लोगो को मालूम था। इसलिए यह भेद न फूटने पावे, उसने धीरे-धीरे इस तथ्य को जानने वाले व्यक्तियो को यमलोक भेज दिया। अपनी लोकप्रियता बढाने के लिए उसने सेना में भरती होने के आदेशो मे भी ढील दे दी तथा कई प्रकार के करो से मुक्ति की घोषणा कर दी। बाहरी जगत मे उसका भेद न खुल पाये इसलिए उसने बाह्य जगत से एक प्रकार से अपना सबध ही विच्छेद कर लिया। केवल रनिवास के लोगो मे आना-जाना रह गया। रनिवास के व्यक्तियो का भी आपस मे मिलना-जुलना बद कर दिया गया। इन सब कार्यवाहियो का परिणाम यह हुआ कि लोगो का सदेह और भी बढ गया। सरदारो में यह बात फैल चुकी थी कि यह कुरु का वशज नही है। अतएव उसके विरुद्ध षड्यत्र शुरू हो गये।

आर्य सामंतो का षड्यत्र

पहले के अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार सक्षमान (Achaemanes) घराने के राजवशी लोगो मे इक्ष्वाकु (Hystaspes) का लडका द्रु सबसे प्रमुख था। इस द्रु के साथ अन्य राजघराने के ६ व्यक्ति भी थे। इन सब लोगो ने जब गौमत के नकली होने का समाचार सुना और उसकी पुष्टि हो गई तो उसको समाप्त करने का षड्यत्र रचा।

एक कहानी यह भी प्रचलित है कि फारस के एक सामत ने जिसका नाम उत्तान (Otanes) था इस गौमत की जाँच करने के लिए अपनी लड़की पदमिनी (Phaedymene) का विवाह उससे कर दिया और लडकी को सावधानी से पता लगाने के लिए नियुक्त किया कि क्या सत्यता मे वह 'भारतीय' नही है। लडकी का यह कार्य कोई कम कठिन और प्राणो को सकट मे डालने वाला ही नही था अपितु उसका भेद खुल जाने पर महस्रो परिवारो पर विपत्ति का आमत्रण भी था। गौमत के कान नही थे। इस तथ्य का भी सरदार लडकी ने शीघ्र पता लगा लिया और वह इस परिणाम पर पहुँची कि यह भारतीय नही है। अत. जब द्रु के नेतृत्व मे सातो[1] सामत उसका वध करने के लिए जिस महल के भीतर घुसे

१. बहिश्तून के शिला लेख मे सातो षड्यत्रकारियो के नाम इस प्रकार लिखे हुए हैं: १ विष्यवर्ण जो कि व्यासपुर (Vindafarna Son of Vayaspur) का लड़का था, २. उत्तान जो कि तुषार (Otanes Son of Thukhra) का लडका था, ३. मर्दन जो गौपौरव का लडका था (Mardunia Son of Gau-Baruva); ४. विदर्ण (Vidarna) वाषविघ्न का लडका,, ५. दा दुह्य का लड़का वाघभुक्ष (Da-Duhya Son of Bagbhuksha); ६. वाहुक (Vahuka) का पुत्र, ७. अर्दमान (Ardumanish).
यह सातो नाम शुद्ध सस्कृत के हैं। अत. आर्यों का प्रभुत्व स्पष्ट है।

तो वे कोई भी अन्य साथियो को भीतर नही ले गये। यह महल मेद राज्य के अन्तर्गत सिकायाहुवती (Sika̧av Vatısh)[२] नामक नगर मे जहाँ गौमत ठहरा हुआ था स्थित है। उन्होने घुसते ही एकदम गौमत को मार डाला और शीघ्रता से एकवट्न राजधानी की ओर भागे जहाँ उन्होने इस नकलची के मस्तक का सार्वजनिक प्रदर्शन किया और इसके बाद गौमत के साथियो का पूरी तरह सफाया कर दिया। इस नकलची गौमत को सिंहासन दिलाने वाले पुजारी जाति के व्यक्तियों (ब्राह्मण?) का सभवत सत्ता पर पुन आरूढ होने का यह एक प्रयास था।

इस कथा के साथ एक और रोचक वर्णन है कि जब ये सातो सरदार गौमत का वध करने के लिए भीतर घुसे तो आगे आपस मे यह तय हो गया था कि सूर्योदय के पश्चात जिस सरदार का घोडा सबसे पहले हिनहिनाये, वही सिंहासन का मालिक बने। दु (Darius) न केवल एक अच्छा घुडसवार था अपितु साईस विद्या मे भी बेजोड था। उसने इस प्रकार की तरकीब को कि उसके मालिक (गौमत का घोडा) उसे देखकर सबसे पहले हिनहिना उठा। अतएव सर्व सम्मति से वह राजा घोषित कर दिया गया।

---

२. हुअर्ट ने इस नगर का नाम भी सिकायाहुवती लिखा है। पहिले 'पुर' के स्थान पर आर्यों में 'वती' लगाने की भी परिपाटी थी जैसे पुष्कलावती नगर। सिकायातु का सही शब्द 'सक्षबाहु' दिखता है। जो सभवत सक्षमान वश को प्रकट करता हो।

१३

सम्राट द्रु

एक ही वंश मे उत्पन्न होने के कारण कामोज्य के उत्तराधिकारी के रूप में सन् ५२१ ई० पू० मे द्रु[1] (दारा = डेरियस) गद्दी पर बैठा। इस समय समवत उसके पिता विश्ताश्व (Hystaspes) की मृत्यु हो चुकी थी। गद्दी पर बैठने के बाद ही द्रु ने यह अनुभव कर लिया कि उसकी यह गद्दी सर्वथा सुरक्षित रूप में उसे नहीं मिली है अपितु यह काटो का ताज है। क्योंकि कर घटाकर और युद्ध के लिए सैनिकों की भरती मे ढील देकर गौमत ने काफी लोकप्रियता अर्जित कर ली थी। दूर दूर के राज्यपालो ने भी मेद राज्य के इतिहास की भांति यह कल्पना कर ली थी कि राज्य का अन्त आ गया है अत· वे स्वाधीन होने की चेष्टा करने लगे। अत द्रु ने प्रातों को फिर से जीतना शुरू कर दिया। इस कार्य मे उसे बडी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा। कभी तो केवल कुछ प्रान और थोडी-सी सेना ही उसके पास बच रहती थी।

ऐलम और बेबीलोन पहले राज्य थे जिन्होने बगावत का झडा बुलद किया। ऐलम मे अत्रिन (Atrina) या अथ्रिन नामक सरदार जो कि उपधर्म नाम के एक सामत का लडका और प्राचीन राजघराने का एक ज्यावत था, ने बगावत की किन्तु प्रजा ने उसका साथ नही दिया। वह शीघ्र ही हरा दिया गया और द्रु ने स्वय अपने हाथ से उसका वध किया। अब इसके बाद बेबीलोन की बारी आई। एक निदिन्तु बल (Nidintu-Bel) नामक व्यक्ति ने अपने आपको नभोनिदस (Nab-onidus) का लडका घोषित कर दिया और अपने लिए प्रसिद्ध नभचूड असुर (Nab-chudnazzur) की उपाधि धारण कर ली। द्रु ने स्वयं

---

१. द्रु सस्कृत नाम है। वेदो मे इस प्रकार के कई राजाओ के नाम आये हैं। इन राजाओ ने विशाल भूखडो को जीतकर इद्र पद को धारण किया था। ऋग्वेद के अध्याय २ मे १८वें सूक्त के श्लोक १४ से १७ तक के मत्रो मे दुमित्रास सुदास, और द्रह्य राजाओं को इद्र की श्रेणी मे गिनाया गया है—

"निगव्यवोऽनवो द्रुहवश्च सृष्टि शता सुषुपु षट सहस्रा।"

उसके विरुद्ध चढाई की किन्तु तिगरिस नदी मे उसकी भारी सेना के सामने पहले तो वह कुछ नहीं कर सका पर अन्त मे अनेक कलाबाजियों द्वारा और समय-समय पर शत्रु को धोखा देकर—गायब होकर—फिर प्रकट होते हुए, उसने अपनी सेना को मुकाबले मे झोक दिया और सेना को नदी पार उतार दिया। निदिन्तु-पाल मैदान छोडकर बेबीलोन शहर मे घुस गया और फाटक बन्द कर लिये। अतः द्रु ने उसकी घेराबदी कर दी। इसी समय परशु राज्य के कुगनक (Kuganak) नामक नगर मे एक 'मर्त्य' नाम के सरदार ने सूफियाना में बगावत कर दी। किंतु उसका वध वही के निवासियो ने कर दिया।

इसी समय मेद देश (Media) मे भी कुछ लोगों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाकर एक प्रवरतिष (Phraortes) के रूप मे जिसने अपने आप को सुमागक्षत्र का लडका 'क्षत्रिय' (Kshatrita) बतलाया था, बगावत कर दी और इसी समय ऐलम मे भी एक नकलची जिसका नाम 'भारतीय' था, ने विद्रोह कर दिया।

द्रु ने बेबीलोन की घेराबदी को उठाये बिना ही विदर्ण नाम के योधा के नेतृत्व मे फारसी सरदारो की एक बडी फौज मेद देश (Media) यवन देश (आयोनिया) भेजी। आर्यमणि देश मे दुर्धष नाम का (Dadarshish) योधा भेजा गया। यह योधा स्वय उसी आर्यमणि देश का निवासी था। बाद में जब लडाई लम्बी चली तो एक परशु सरदार बल उमिप को वहाँ भेजा गया और अत मे आर्मिनिया मे सम्राट की बडी शानदार विजय हुई। किन्तु इस विजय की कीर्ति शीघ्र ही धूमिल पड गई क्योकि विजय के साथ ही उसे अपने पिता विश्ताश्व के राज्य हरकेनिया याहर्षेन स्थित पहाडी स्थान सगरतिय पर विद्रोह की सूचना मिली।[1] व मार्गयाना में भी विद्रोह हो गया।[2] सम्राट पर इस समय ऐसा दुर्भाग्य आया हुआ था कि स्वय फारस देश मे भी एक नकलची ने जिसका नाम वाह्याजदत्त (Vahyazdata) था, अपने को 'भारतीय' घोषित करके राज्य सिंहासन पाने के हथकंडे फैलाने शुरू कर दिये। सम्राट ने एक सामत अर्द्धभारतीय (Arta Vardiya) को भेज कर उसे पकड़वा लिया

१. आजकल यह कुद लोगो का निवास स्थान है। सम्राट के पिता विश्ताश्व का उस समय पार्थ और हर्षेन प्रान्तो पर अधिकार था। सम्राट ने अपने पिता को वहीं का राज्यपाल नियुक्त कर दिया था।

२. मार्गयाना मे इस समय वर्द्ध (Frada) नामक राजा सिंहासन पर आसीन था। सम्राट ने वाल्हीक (बलख) के राजा दुर्धष को उस पर विजय करने हेतु भेजा जो शीघ्र ही जीत लिया गया। परन्तु एक विद्रोह 'फिर उठ खडा हुआ। यह विद्रोह चित्र-क्षेम (Chitra- takhma) द्वारा किया गया था, उसने अपने आपको क्षयहर्ष (Xerxes) का वशज बतलाया। सम्राट ने इसे दबाने को परशु-सामत तक्षमपाद (Takhma-spad) को भेजा जिसने विद्रोह को दबा दिया और चित्रक्षेम को फाँसी पर लटका दिया।

व पारसीक प्रदेश के उसके अपने गाँव 'सुवद छाया' मे उसे फाँसी पर लटका दिया गया। वाह्याजदत्त की एक सेना जो बलूचिस्तान पर कब्जा किये बैठी थी, उसे एक अन्य सरदार विवर्ण ने हराकर विद्रोह की इति श्री कर दी। किन्तु द्रु भी एक अत्यन्त साहसी और बुद्धिमान रणनेता था। उसने इन सब कठिनाइयों के कारण हिम्मत न छोडी और अन्त मे सब पर विजय प्राप्त की। अनुभव ने उसे बताया कि बेबीलोन सबसे प्रमुख केन्द्र स्थल है। अत. उस पर पूरा ध्यान केन्द्रित कर सौवीर (Zopyrus) नामक सरदार के सद्प्रयत्नो से बेबीलोन जीतने मे सन् ५१६ मे उसने सफलता प्राप्त कर ली। कुछ समय के बाद सम्राट की सेना ने विध्यवर्ण के नेतृत्व मे बेबीलोन की फौजो को जो आरक्ष (Arakh) के सेनापतित्व मे लड रही थी, हरा दिया।

एक विराट सेना के साथ उसने रेई नामक स्थान पर मेद लोगों को उनके नेता प्रवरतिष सहित हरा दिया। विद्रोहियो को कडा सबक देने के लिए उसने इस प्रवरतिप के हाथ, कान, नाक कटवा लिये और आँखे फुडवा कर उसे इस भयंकर अवस्था मे किले के सामने जजीरो में बाँध कर पटक रखा और उसकी सुखाकर मृत्यु कर डाली। आर्मीनिया और फारस के नकलचियो पर भी विजय प्राप्त कर ली गई। बेबीलोन के एक दूसरे नकलची ने सिर उठाया किन्तु उसे वही की फौज ने दबोच दिया। इस प्रकार सात वर्षों की १६ लड़ाइयो मे सम्राट ने १५०० मील लबे राज्य पर अधिकार कर लिया।

सन् ५१८ ई० पू० मे द्वितीय 'भारतीय' को समाप्त करके सारे साम्राज्य की बगावत का अन्त कर दिया।

प्रशासन

द्रु ने अब अपनी यह नीति बनाई कि जिस राज्यपाल का व्यवहार उसे सदिग्ध लगा उसको कडा दंड दिया और जिस राज्यपाल ने अच्छा व्यवहार रखा उसे सार्वजनिक रूप से पारितोषक दिया। लीडिया के प्रशासक और क्षत्रप उर्त[1] (Oroites) ने जब स्वाधीन होने की चेष्टा की तो सम्राट ने उसे अपने सेनानायकों से मरवा डाला। सम्राट ने स्वय मिस्र देश की यात्रा की और वहाँ के क्षत्रप को सदिग्ध कसूर मे जान से मार डालने की आज्ञा दी। किन्तु वहाँ उसने पुजारियो का आदर सत्कार करके उनसे पूरी सहानुभूति प्राप्त कर ली।

समस्त प्रान्तो मे शान्ति स्थापना के बाद उसने प्रशासन मे सुधार करना प्रारम्भ कर दिया। असुरो के समय तिगलत पालेश्वर काल से ही यह सामान्य

---

१. क्षत्रप फारसी शब्द है जो आर्य भाषा सस्कृत से लिया गया है। जिसका अर्थ देश का स्वामी है—सर पर्सी पृष्ठ, १६२

प्रथा हो गई थी कि एक स्थान की आबादी को हटा कर उसे दूसरे विजित स्थान पर बसा दिया जाता था। उसका स्वाभाविक परिणाम दो रूप में होता था। एक तो राज्य के लिए अनिष्ट रूप मे इसलिए था कि जहाँ पर वे जाकर बसते थे, उन बस्तियों के लोग उन्हें घुसपैठिया समझने लगते थे और उनको अपने में मिलाने का कोई उपाय नही करते थे। दूसरा, राज्य के लिए लाभदायक रूप में यह परिणाम होता था कि ये लोग स्वभावत असुरों की दया पर आश्रित रहते थे और खोज-खबर आदि से समय-समय पर पूरी सहायता देते थे। इसके अतिरिक्त राज्यो को जीत कर उन्हे प्राय अर्थ स्वाधीन रूप में छोड दिया जाता था जिससे आगे भी सिर दर्द बना रहता था।

द्र ने अपनी केन्द्रीय शक्ति को बाँटने का सकल्प किया। फलस्वरूप पूरे राज्य के केन्द्रीयकरण का विचार छोड दिया गया। सत्ता के सामूहीकरण को बाँटने के उद्देश्य से तीन पद कायम किये गये। एक क्षत्रप (राज्यपाल), दूसरा सेनापति और तीसरा राज्य का सचिव। यह तीनो अधिकारी एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र थे और उन्हे सीधे केन्द्र को रिपोर्ट भेजने का अधिकार प्राप्त था। इन तीनो में सत्ता के विभाजन होने से वे एक मत नही होते थे। अत. विद्रोह की कोई आशंका ही नही थी। इनके अतिरिक्त कभी-कभी सम्राट की ओर से राज्यों में जाँच के लिए निरीक्षक भी भेजे जाते थे जिन्हे सजा आदि देने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था। अत विद्रोह का भय सर्वथा मिट गया था।

अब साम्राज्य को उसकी घटबढ के आधार पर २० या २८ क्षेत्रो मे बाँट दिया गया। ये क्षत्रप निम्न प्रकार से थे—

(१) मेद (२) हरकेनिया या हर्येन (३) पार्थ (४) जरंग (५) आर्य (६) क्षारस्थान (खुरासन) (७) वाल्हीक (वलख) (८) सुगध (६) गाधार (१०) शक (११) सत्याक् (१२) वलूच (अराकोसिया) (१३) मकर (मकराना)।

पश्चिम की ओर के क्षत्रप (१४) उवज (ऐलम-सूसियाना) (१५) बेबीलोन (त्रितिन) (१६)शेल्दीया(१७) असुर(असीरिया) (१८) अकुद (अरब, सीरिया और फिलिस्तीन सहित) (१६) मिश्र, इसमे यूनानी टापू, फोनीसिया तथा केप्रियट प्रदेश भी सम्मिलित है। (२०) यवन (Ionia)। इसमे लीसिया केरिया और तटवर्ती यूनानी बस्तियाँ सम्मिलित थी। (२१)स्पार्दा। इसमे लीडिया और हेलीस नदी का पश्चिमी भाग भी सम्मिलित था। (२२)आर्मीनिया (२३) कैपेडोसिया।[1]

इन क्षेत्रपो मे राजस्व की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न थी। कुछ में राजस्व

---

१. सर पर्सी

मुद्राओं में लिया जाता था परन्तु कुछ मे प्रकार मे लिया जाता था। बलूचिस्तान सरीखे निर्धन देश में १७० टैलेन्ट (एक स्वर्ण माप[१]) वसूल होता था। बेबीलोन एक सहस्त्र टैलेन्ट और मिश्र देश मे ७०० टैलेन्ट स्वर्ण का राजस्व लगता था। उपरोक्त आकडे सर पर्सी ने दिये हैं जो पूर्ण रूप से अस्पष्ट हैं।[२] पता नहीं ये सिक्के थे या माप थे या किसी भूमि की माप के आधार पर नियत थे। पूरे राजस्व की वसूल (वर्तमान मे) ३७,०८,२८० पौंड प्रति वर्ष की थी।

द्रु प्रथम सम्राट था जिसने सिक्को का प्रचलन जारी किया। शुद्ध सोने का सिक्का जिसे देरिक कहा जाता था १३० ग्राम भर का होता था। यह प्राचीन मसार-भर में प्रसिद्ध सिक्का था। इसके अतिरिक्त चाँदी के सिक्के भी चलते थे, जिन्हें सिगलास[३] कहते थे। यह एक आश्चर्य का विषय है कि आजकल के ब्रिटेन के पौंड और शिलिंग के सिक्के ठीक पुराने इन सिक्को के बराबर के मूल्य के होते हैं। प्रकार मे अदा होने वाला राजस्व बहुत अधिक था। बेबीलोन के ऊपर एक तृतीय सेना और दरबार को खिलाने का भार था, मिश्र के ऊपर एक लाख बीस हजार सैनिकों को खिलाने का भार था। मेद लोग घोडे, खच्चर तथा भेडें देते थे। आर्मिनियन लोग खर की भेंट देते थे। बेबीलोन वाले क्लीव (नपुसक) व्यक्तियो को भेजते थे। इस कर के अतिरिक्त प्रान्तो को क्षत्रप, उसका दरबार व सेना का खर्च भी उठाना पडता था। चूंकि अधिकारियो को कोई नियत वेतन नही था। अतएव वे पदो को खरीदते थे। क्षत्रप लोग बहुत सावधानी से खर्च चलाते थे। इस व्यवस्था के लागू हो जाने से सम्राट का एक सतुलित बजट हो गया था।

मैसपेरो लेखक के अनुसार यह सिस्टम फौजी रखाव के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। द्रु के अगरक्षको मे २००० अश्वपति व २००० पदाति सैनिक थे। उनके भालो पर सोने तथा चाँदी के गोले लगे होते थे। इनके नीचे १० दस सहस्र अमर (amardis) व्यक्ति होते थे जो दस बटालियनो मे विभक्त थे। वे सब स्वर्ण अनारो द्वारो सज्जायुक्त भालो से लैस रहते थे। यह सेना पूरे साम्राज्य की सेना की सार थी। जो फारस और मेद लोगो द्वारा निर्मित थी। यह सेना प्रमुख केन्द्रो पर तैनात रहती थी। यह उसके अतिरिक्त थी जो स्थानीय सेना के नाम से जानी जाती थी। जब एक बडी लडाई छिड जाती थी तो असख्य ऐसे व्यक्ति जो एक-दूसरे के रीति-रिवाज तथा भाषा तक से अनभिज्ञ होते थे, लडने

---

१. For further detail vide How & Wells Page 405.

२. एक टैलेन्ट—६० मिने—३६०० शेकल। स्वर्ण का एक टैलेन्ट ३ लाख ६० हजार ग्रेन के बराबर होता था।

३. एक चाँदी का सिगलिस—८६॥ ग्रेन

को चढ़ दौडते थे। यही अनुशासनहीन सेना फारस साम्राज्य के पतन का आगे चलकर कारण बनी।

इतने बड़े साम्राज्य की रक्षा और देखभाल के लिए एक सडक की बहुत आवश्यकता अनुभव की गई। अतः सम्राट ने शीघ्र ही एक १५०० लम्बी सडक जो सार्द (Sardes) से सूसा तक गई है, बनाने का आदेश दिया और सड़क भी बनकर तैयार हो गई। यह सडक फ्रीजिया के मध्य से होती हुई टोरिया (जो हिट्टियों की राजधानी थी) तथा तौरष होती हुई आगे समोसन के पास फरात नदी को पार करती हुई आगे बढी है। इस सडक के बन जाने से सम्राट की कीर्ति और प्रताप को चार चांद लग गये।

द्र को इतना अपार साम्राज्य मिल जाने पर भी उसकी तृष्णा शांत नही हुई। वह इस राज्य मे कुछ और वर्द्धन करना चाहता था। इसलिए उसकी सेना हमेशा क्रियाशील रही। उसने सीथिया प्रदेश पर हमला करके उसे जीतने की योजना बनाई। योजना मे उसका यह लक्ष्य था कि यह आदि जाति जो बार-बार अवसर पडने पर साम्राज्य के विरुद्ध हमला या शान्ति कर बैठती थी, उससे एक बार ही पूर्ण रूप से निपट लिया जावे। पश्चिमी लेखको की द्र के इस सीथिया पर हमले की मिश्रित प्रतिक्रिया है। कुछ लोगो ने इसे पागलपन बताया है जब कि दूसरो ने इसे साम्राज्य की रक्षा हेतु उठाया गया आवश्यक कदम बताया है।

ग्रोटे (Grote) ने लिखा है कि "सीथिया पर हमला एक पागलपन का कार्य था।" रावलिसन (Rawlison) ने लिखा है कि यह हमला पूर्णरूप से सोच समझकर यूनान जाने वाले परिवहन मार्गों की रक्षा हेतु किया गया था। मैंस-पैरो ने लिखा है कि आक्रमण करना तो उचित था किन्तु दूरी को ध्यान मे रखते हुए उसे उस समय गलत जानकारी दी गई थी। नो ल्देक ने (Nol deke) ने "एक नये देश को जीतने की उसकी महत्त्वाकाक्षा" बताया है।

हुआर्ट ने लिखा है कि ये सीथियन लोग जो इस समय यूरोप और दक्षिणी रूस मे फैले हुए थे, वास्तव मे आर्य जाति के जंगली लोग थे।[1]

लगभग एक शताब्दी पहले से सीथियन लोगो ने मेद और एशिया माइनर पर बार-बार आक्रमणो के कारण उन प्रदेशो की शोचनीय अवस्था कर रखी थी। अतः द्र ने यह सोचकर कि जब वह यूनान पर आक्रमण करेगा तो ये लोग कही पीछे से उसका परिवहन मार्ग न काट डालें, उन पर हमला किया। सीथियन लोगों पर सम्राट लगातार दो मासो तक आक्रमण करता रहा। इसी बीच मे उसे मालूम हुआ कि यूनान के उत्तरी भाग थ्रेस ने बगावत कर दी है। उसे दबाने को उसने वही से ८०,००० सेना भेजी जिसने बगावत दबा दी और थ्रेस ने अधीनता पुनः

1. Huart, पृष्ठ ५५

स्वीकार कर ली। अब सम्राट सीथियनों को दबाने वापिस लौटा और सार्द (सार्डीज) में १ वर्ष तक ठहरा रहा व उसके बाद एशिया माइनर को छोडकर राजधानी मे वापिस आ गया।

इन सब बातो से पता चलता है कि सम्राट यूनान के थ्रेस और मेसीडोनिया को जीत कर तथा सीथियनो पर विजय प्राप्त करके डेन्यूब नदी तक निर्बाध राज्य करने को उत्सुक था। जैसा कि उसने किया।

सन् ५१२ ई० पू० द्रु ने अपनी सैनिक कुशलता का प्रथम उदाहरण दिया। उसने कैपेडोसिया के क्षत्रप आर्यरमण (Aria'amanes) को उत्तरी काले समुद्र पर आक्रमण करने का निर्देश दिया जो सफल रहा और वहाँ के विद्रोहियो को दबा दिया गया। वहाँ शासक के एक भाई को पकड लिया गया जिससे महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिली।

इसके बाद सम्राट ने महान कूच का आदेश दिया। इसी सन् मे उसने वास फोरस के मुहाने को लकडी की नावो के बने हुए पुल से पार किया। यह पुल पडोस के यूनानी शहरो ने तैयार किया था व उन्ही की देख-रेख मे छोडा गया था। वहाँ से आगे बढकर सम्राट ने थ्रेस पर अधिकार कर लिया। वहाँ केवल एक जाति को छोड़कर सबने अधीनता स्वीकार कर ली। अंततोगत्वा इस जाति ने भी हथियार डाल दिये। अब सम्राट डेन्यूब के डेल्टा की ओर बढा। यूनानी साथियो ने यहाँ पर उसके लिए नावो का पुल तैयार कर दिया और वह उसे पार कर आगे बढ गया। डेन्यूब के इस डेल्टा मे उसने बहुत-सी जगली जातियो को परास्त किया। सीथियन लोग उसका सामना करने मे बराबर कतराते रहे।

हेरोडोटस ने इस प्रसग का बडा रोचक वर्णन लिखा है। उसने लिखा है कि सम्राट ने सीथियन राजा के पास एक दून भेजा और कहलाया कि तू इधर-उधर क्यों भागता फिरता है। यदि तू शक्तिशाली है तो सामने आ। और यदि तुझे ज्ञान है कि मैं शक्तिशाली हूँ तो मेरे पास जल पृथ्वी को भेजकर सधि की प्रार्थना कर। इस पर सीथियन राजा ने उत्तर दिया कि जल और पृथ्वी को मैं नही भेज सकता किन्तु अन्य उपहार भेज रहा हूँ। और एक सैनिक अधिकारी के साथ सीथियन राजा ने एक पक्षी, एक चूहा, एक मेढक और पाँच तीर भेज दिये। सम्राट के चापलूस दरबारियो ने उसका जो अर्थ लगाया उससे राजा बहुत खुश हुआ। सम्राट ने समझा कि सीथियन लोगों ने सधि प्रस्ताव भेजा है। और चूहे तथा मेढक से उसका तात्पर्य यह है कि उसने पृथ्वी और जल भेज दिया है। परन्तु उसके श्वसुर गौवोरव ने दूसरा अर्थ लगाया। उसने बताया—यदि फारसी लोगो तुम पक्षी बनकर यहाँ से न उड न जाओगे या चूहा बनकर बिलो मे भर न जाओगे या मेढक बनकर किनारो मे न घुस जाओगे तो तुम अपने को इस देश से न बचा पाओगे और इन तीरो से तुम्हारे मस्तक भेद दिये जावेगे। स्वभावत. इस

चढाई का परिणाम इन जातियों पर शक्ति-प्रदशन करना मात्र रहा। क्योंकि इस आक्रमण में कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। दो महीनों के लगातार आक्रमणों से सेना भी थकी-मांदी और रोगग्रस्त हो गई थी। इतना ही नहीं, डेन्यूब नदी से जब सम्राट वापस हुआ तो सीथियनों ने यूनानियों को भी बगावत के लिए उकसाया। किन्तु वे लोग स्वामिभक्त ही बने रहे।

५१२ ई० पू० में अपने पुरखे भारतीय आर्यों की भाँति फारसी विजेताओं की दृष्टि ईरान के पूर्वी भाग और पंजाब के बडे मैदानों पर गई। स्काइलेक्स (Scylax=शीलाक्ष) जोकि यूनानी बेडे का नायक था, सिंधु में उतरा और ज्वार-भाटों की परवाह किये बिना ही उसने अरब के किनारो और मकराने पर आक्रमण कर दिया। इन प्रान्तो का एक अलग क्षत्रप बना दिया गया। किन्तु बहिस्तून के लेख मे इस क्षत्रप का कोई उल्लेख नहीं है। यूनानी लेखकों ने स्काइलेक्स (शीलाक्ष) द्वारा वर्णित यात्रा से जिसे अरस्तू ने देखा था, ऐसा अनुमान कर लिया जाना प्रतीत होता है। इन प्रान्तों से बेशुमार सोना-चाँदी ढोकर फारस में भर दिया गया।

भारत पर यह आक्रमण इतना प्रसिद्ध रहा है कि पश्चिम देशों के विद्वानों के अनुसार भारत के काल-निर्णय का इतिहास महात्मा बुद्ध के उपदेशों और इस लडाई से प्रारम्भ होता है।

वास्तव में पश्चिमी विद्वानों का यह लिखना उनकी अज्ञानता का द्योतक है। महात्मा बुद्ध के पहले का इतिहास न होना अज्ञानता का सूचक है। महात्मा बुद्ध के पहले का भी काफी इतिहास भारतीयों को ज्ञात है। और इस लड़ाई को तो भारतीय छात्रों ने कभी पढा भी नही है। स्वय हैरोडोटस के अनुसार स्काईलेक्स (शीलाक्ष) का यह वर्णन सिकन्दर के युद्ध के समय तक कोई नही जानता था। अतः स्काईलेक्स की इस यात्रा का वर्णन कपोल-कल्पित मालूम पडता है। हाँ, किसी अन्य प्रकार से इन स्थानो पर आक्रमण होना माना जा सकता है।

इस प्रकार इस महान् साम्राज्य में, डेन्यूब नदी से लेकर फारस की खाडी व यूनान से लेकर पंजाब तथा सिंधु नदी के मुहाने तक का वृहत्तर क्षेत्र शामिल था, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह संसार के इतिहास में एक महान् सम्राट हुआ है।

खण्ड २

१

प्राचीन परशु भाषा, रीतिरिवाज और शिल्प

हेरोडोटस ने लिखा है कि "फारसियो ने कई बार यूनानियो की बरछियो को तोड़ डाला अर्थात् उन्हे पराजित किया क्योकि उनकी अदम्य साहसिक वृत्ति और युद्धात्मक प्रवृत्ति किसी भाँति भी श्वेत जातियो से कम नही थी।"[१]

स्वयं यूनानियो ने माना है कि फारसियो और मेद जाति मे भारी समता पाई जाती है। इन दोनो जातियो की युद्धप्रियता, आखेट के तरीके, लड़ने के साज-सामान मे भी काफी समानता है। ये दोनों घुमक्कडप्रिय थे। यूनानी यदि इन लोगो से रक्षा करने मे अपने-आपको समर्थ पाकर ख्याति प्राप्त कर सके तो यह भी कम ख्याति की बात नही है क्योकि इन जातियो ने अपूर्व संगठन से, अपेक्षाकृत खराब शस्त्रो से; तथा अपने जीवन की परवाह न करते हुए यूनानियो की रक्षा-पंक्तियो को बार-बार नष्ट कर दिया।

हेरोडोटस ने इनकी प्रशंसा मे जो कुछ लिखा है उससे सर पर्सी भी सहमत है कि प्राचीन फारसी "घुड़-सवारी, धनुष-विद्या और सत्य बोलने मे निष्णात थे।"[२] यह आर्यों की परम्परागत रीतिरिवाज का ही एक ज्वलंत उदाहरण है। वे ऋण लेने से डरते थे। उनमे आदर-सत्कार तथा उदारता की भावना भारी मात्रा मे पाई जाती थी, इस संदर्भ मे एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। हेरोडोटस ने प्रशसा करते हुए लिखा है कि एक बार एक युद्ध मे एक यूनानी, फारसियों से अपने जहाज की रक्षा करते-करते अत्यन्त घायल हो गया। विजेता फारसियो ने जब यह देखा कि इस वीर योद्धा के प्राण बच सकते हैं तो उसे रणभूमि से उठवाकर चिकित्सा-केन्द्र में भिजवा दिया जहाँ उसकी हर संम्भव चिकित्सा की गई। यही नही उसका वीरोचित सम्मान भी किया। इसी प्रकार प्राचीन फारसी लोग बाजारों मे जाकर क्रय-विक्रय करना अपनी शान के विरुद्ध

---

१. हेरोडोटस, नवी जिल्द ६२

२. सर पर्सी, पृष्ठ १७१

समझते थे। आज भी बड़े-बड़े घरानों में यह प्रथा जारी है।

जैसा कि सब उन्नतशील जातियों में पाया जाता है इन फारसियों में भी स्वयं को वश में रख सकने का अभाव, व्यर्थ अभिमान तथा अनाप-सनाप खर्च किये जाने की कुछ बुराइयाँ भी थीं। विशेषत ये लोग भोजन के ऊपर बहुत अधिक व्यय करते थे। कई प्रकार की रसोई-सामग्रियों का निर्माण उनके लिए अति प्रसन्नता का परिचायक था। चाहे कम क्यों न खाया जाये परन्तु भोजन में विविधता का होना आवश्यक माना जाता था।

यूनानी और सीथियनों की भाँति वे मद्यपान भी करते थे। **हेरोडोटस** ने उल्लेख किया है कि वे महत्त्वपूर्ण मामलों का निपटारा प्रायः मद्य पीकर रात्रि को करते थे। प्रात होने पर उस निश्चय को प्रायः बदलते नहीं थे। उनमें अनेक पुत्रों का पिता होना गर्व की बात मानी जाती थी। अपने परिवार की जन-संख्या में बढ़ोतरी देखकर वे प्रसन्न होते थे। लड़ाई के समय चूँकि उन्हें अपने परिवारों से भारी सहायता मिलती थी सम्भवतः इसी कारण उनका वह कुटुम्ब-स्नेह अधिक आकर्षक रहता था।

मेद और फारसियों के कानून बहुत कठोर नहीं थे। राजा को अपनी प्रजा के जीवन और सम्पत्ति पर पूरा अधिकार रहता था। एक बार राजाज्ञा होने के पश्चात् उसको बदलना सम्भव नहीं होता था। भय के कारण प्रजा अन्याय और भ्रष्टाचार से दूर रहती थी। नर-हत्या, बलात्कार, देश-द्रोह तथा इसी प्रकार के बड़े अपराधों में मृत्यु-दंड दिया जाता था। किन्तु उस समय की स्थिति में जब जेलों आदि में कैदियों को रखने की कोई सुविधा नहीं होती थी, उस समय के अपराधियों को (चोर, डाकू, बदमाश और हत्यारों को) अंग-विच्छेद तथा मृत्यु दंड दिया जाना बहुत क्रूरता का द्योतक नहीं समझा जाता था। वर्तमान काल में १९वीं शताब्दी तक ब्रिटेन के विक्टोरिया शासन काल में भेड़ चुराने की सजा मृत्यु दंड थी। राख में दम घोंटकर जिन्दा गाढ़ दिया जाना; जीवित खाल खींच लेना और शूली पर चढ़ाने आदि के क्रूर दण्ड मध्ययुगीय यूरोप में भी प्रचलित थे। अतः उस समय के फारसी दण्ड-विधान को बहुत अनुदार नहीं समझा जाना चाहिए।

इस काल में वहाँ बहुपत्नी प्रथा भी विद्यमान थी और आजकल की भाँति उस समय बड़े-बड़े घरानों में पर्दा-प्रथा भी जारी थी। यात्राओं में वाहनों पर पर्दे लगे हुए रहते थे तथा छोटे-छोटे दरवाजों द्वारा पर्दा कायम रखा जाता था। यह आश्चर्य है कि न तो कहीं शिल्प उत्कीर्ण में और न कहीं किसी लेख में किसी महिला का वर्णन आया है, तो भी जंगली और घुमक्कड़ जातियों में महिलाओं को घूमने-फिरने की पूरी-पूरी आजादी थी। आगे चलकर फारस देश में अन्तःपुर में रहनेवाली इन महिलाओं और नपुंसकों के कारण बड़े-बड़े अंदरूनी कलह हुए

जिनका प्रभाव राजसत्ताओं पर भी पडा और कई साम्राज्य ध्वस्त हो गये।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सत्ता का केन्द्र-विन्दु राजा होता था। अतः प्राचीन साहित्य मे राजाओ के विषय मे बहुत अधिक वर्णन मिलता है। जिस प्रकार मेद लोगो ने अपनी सभ्यता, शिष्टता तथा संस्कृति असुरो से प्राप्त की उसी प्रकार फारस के लोगो ने भी मेद लोगो की नकल की तथा उनमे अपने नामो के साथ बड़े-बडे अलंकार-सूचक पदवियाँ भी उन लोगों से ग्रहण की जो आजतक चली आ रही हैं।

राजाओ को जिस प्रकार हर बात मे एकाधिकार प्राप्त थे उसी तरह कुछ बातो मे उन पर अकुश भी था। उन्हे अपने देश की सभ्यता और मर्यादाओ के भीतर चलना पडता था तथा अपने सरदारो और सामतो से परामर्श लेना पड़ता था। इसी प्रकार उन्हे अपने द्वारा लिये गए निर्णयो पर भी आरूढ रहना पडता था।

भारत की भाँति बड़े-बडे राजाओ द्वारा पीले रग के राजसी चोगे पहनने की प्रथा मेद जाति मे भी विद्यमान थी। परन्तु अपने सिर पर एक बडा उष्णीश जिसे तियारा कहा जाता है, केवल राजा ही बाँध सकता था। यह तियारा बड़ा चमकीला तथा भडकीले रग का होता था। जैसा कि फारस की राजधानी के कई उत्कीर्णों मे अकित है; वह कानो मे कुडल, हाथो मे कडे, तथा जजीर और कमर मे किंकणी पहनता था जो सब सोने की होती थी।[1] इन अलकारो मे भी भारतीय प्रथा प्रकट होती है। मूर्तियो मे बहुधा वह रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए, दाढी रखाये तथा घुँघराले बालो मे प्रदर्शित किया गया है। वह अपने हाथ मे दड धारण किये हुए है जिसमे स्वर्ण की मूठ लगी हुई होती है। उसके पीछे चमर धारण किये हुए एक कर्मचारी बतलाया गया है। दरबार के शीर्ष स्थान पर अगरक्षको का सरदार खडा रहता था। बडे अधिकारियो मे प्रमुख सेवक, गृह (अन्त पुर) के स्वामी तथा नपुसको के सरदार की गिनती होती थी। अन्य दरबारियो मे कोषाध्यक्ष, प्याले रखने वाले, शिकारीगण, संदेशवाहक, संगीतज्ञ तथा पाकशाला के कर्मचारी होते थे। टेसियस (Ctesias) के अनुसार राजा के रसोईघर मे प्रतिदिन १५ सहस्र व्यक्ति भोजन करते थे। भोजन में बैल, भेड, बकरे, ऊँट और घोडो का मास इस्तेमाल होता था। मुर्गाबिया और बत्तख भी पकाये जाते थे। शिकार मे पाये गये छोटे-छोटे पशु-पक्षी भी उपयोग मे लाये जाते थे। राजा प्राय अकेले ही भोजन करता था, किन्तु कभी-कभी वह रानियो और अपने प्रिय बालको के साथ भी भोजन कर लेता था। अपनी स्वर्ण-शैया पर पड़े-पडे वह मद्यपान करता था और बडी-बडी दावतो मे वह किनारे के उच्च आसन पर बैठता था। इन दावतो मे सोने-चाँदी के बर्तनो की भरमार

१. सर पर्सी, पृ० १०३

रहती थी।

शिकार और युद्ध में राजा को अति साहस से काम लेना पड़ता था। शिकार में वह धनुष बाण से बड़े-बड़े पशुओं का आखेट करता था। इसी प्रकार से युद्ध में फौजों के उत्साहवर्धन हेतु उसे बीच फौज में रहना पड़ता था। कभी-कभी असुरों की परंपरा के अनुसार इन राजाओं को बड़े-बड़े घेरों में रखे गये हिंसक पशुओं से युद्ध भी करना पड़ता था।

फारस के राजा अधिकांश मे बिना पढ़े-लिखे होते थे। जबकि असुर राजा-गण प्रायः शिक्षित होते थे। उन्हें अपने और मेद राजाओं के पुराने इतिहास को सुनने में बहुत आनन्द आता था। "आज तक भी फारस मे" सर पर्सी ने लिखा है "बहुत से बड़े-बड़े सरदार बिना पढ़े-लिखे होते हैं और अपनी अज्ञानता को छिपाने के लिए वे दस्तावेजो पर अपने नाम की मुद्राएँ लगा देते हैं।"

फारसी समाज में राजा के बाद उसके सामंतो का नम्बर आता है। उनकी संख्या बहुधा सात रहती है। ये सब सामंत कहाते थे। इनको यह अधिकार था कि वे राजा से उसके महलों मे अकेले मे भी भेंट कर सकते थे। वास्तव में इन लोगों की ही स्थायी समिति बनी हुई होती थी। इनके अतिरिक्त छोटी अवस्था के भी सरदार होते थे किन्तु व्यापारियों को अत्यंत निरादर भाव से देखा जाता था। मुसलमानी राज्यकाल मे भारत मे भी इस प्रकार का आम रिवाज था। साधारण जनता के व्यक्ति जिन्हें दरबार में प्रवेश की आज्ञा मिल जाती थी, हाथ बाँधकर खड़े रहते थे।

उनकी पोशाक के विषय मे हेरोडोटस ने इस प्रकार वर्णन लिखा है —"वह मस्तक पर तियारा बाँधते थे और अपने अंगो पर विविध रगो के बाहोयुक्त कपड़े पहनते थे। पाँवो मे पाजामा पहनते थे। वे सुनहरी कफदार ढाल बाँधते थे। छोटा सा बल्लम रखते थे। पर धनुष बाण बड़ा होता था। बाण एक किस्म के मोटे बाँस का बना होता था। वे कमर मे एक छुरा भी लटकाये रहते थे।

अंत:पुर मे रानी की प्रधानता होती थी। वह अपने मस्तक पर शाही तियारी धारण करती थी और इस कारण दूसरी महिलाओ से प्रमुख गिनी जाती थी। उसे अपने कार्य हेतु निजी वाहक या नौकर की छूट थी। इस हेतु उसकी अलग से आय बँधी होती थी। चरित्रवान रानी की अधिक प्रतिष्ठा होती थी। सैकडो रखेलियो मे जो राजा के साथ रात्रि में रह जावे वह अपने भाग्य की सराहना करती थी। किन्तु इस रानी के अधिकार को भी चुनौती देने वाली उसकी सास होती थी। यह शुद्ध आर्यों की पद्धति मालूम होती है। हिजड़ों की बहुधा भरमार रहती थी जो कभी-कभी राज्य के लिए सिरदर्द भी बन जाते थे। बहु-पत्नीवाद की प्रथा तो ईरान के राजाओ मे २०वी शताब्दी तक पाई जाती थी।

"इन फारसी राजाओ मे इस प्रकार के रीतिरिवाज थे। जब इन आर्य लोगो

के कर्म और ऊँचे विचारों को सामने रखते हैं तो कुछ भी आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि इन्होंने अपना बृहत् साम्राज्य कायम कर सेमीटिक और तूरानी जातियों की संस्कृति को भी अपने में आत्मसात कर लिया था।"[1]

भाषा

(Hyde) हाइड ने "प्राचीन फारसी, पार्थियन और मेद जाति के धर्म के इतिहास" मे लिखा है कि प्राचीन फारसी लेखो मे न तो कोई महत्त्व की बात ही है और न वे पुरानी ईरानी भाषा मे ही लिखे गये हैं।[2] ग्रोट फँड (Grote fend), लैसन (Lassen) तथा रार्वालसन (Rawlinson) आदि विद्वानों ने अत्यन्त परिश्रम करके कुरुष (Curus)[3] की भाषा को पढ़कर उसका कुछ अर्थ निकाला है। उसने बहुत से वे शब्द जो प्राचीन ईरानी भाषा में घोड़े, ऊँट आदि के लिए व्यवहृत होते थे वे आज भी उसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं, के आधार पर इन शिला-लेखो को पढा। वास्तव मे उस समय की भाषा पुरानी फारसी ही थी। लिखावट के लिये उन्होने और मेद लोगो ने असुर देश की लिखावट को ही ग्रहण किया है[4] यह बात अब सर्वमान्य है। याकूत ने जिस स्थान को वेहिस्तून लिखा है और जिसे आजकल विसितून कहते हैं उस चट्टान के लेख से उस समय की भाषा पर काफी प्रकाश पडता है। इस पहाडी चट्टान पर (Darius) द्रु ने अपनी विजययात्रा को अंकितकराया है। इस चट्टान की भाषा का सबसे पहले ईसा की प्रथम शताब्दी मे डायडोरस साइकलस (Diodorus siculus) नामक व्यक्ति ने उल्लेख किया है। उसके अनुसार यह पत्थर की खुदाई का काम सेमी रामियो नाम की जाति का है। इसमे द्रु (Darius) के दाढ़ीवाले चित्र को उसने दंतकथाओ मे वर्णित महान् रानी बताया है। बाद के यात्रियों ने भी इस खुदाई के बारे मे भिन्न-भिन्न भ्रमात्मक विचार प्रकट किये हैं।

सीधी खडी चट्टान मे उत्कीर्ण यह मूर्तियाँ तथा उनके लेख बहुत अधिक कठिनाई से पढ़े गये हैं। इतिहास मे तो इनके बारे मे भिन्न-भिन्न रायें थी, किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि सम्राट द्रु (Darius) की मूर्ति के पास जो दो

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ १७६

2. History of the religion of ancient Persians, Parthians and Meds by Hyde.

३ संस्कृत साहित्य और पुराणो में कुरुष के नाम पर पूरे देश को कारुष देश कहा गया है। —(देखिये विष्णु पुराण, अध्याय ४)।

4. Oppert in 'Le Peuple et la langue de's Me'das'

अधिकारी खड़े हैं उनमे एक उसका ससुर (Gobryas)[१] है जो अपने दुश्मनों को रौंद रहा है। मागी वंश के गोमति के ऊपर सम्राट द्रु अपना बांया पांव जमाये हुए है और वह झुककर हाथ फैलाये हुए मेल करने की मुद्रा मे है। उसके सामने ६ विद्रोही लोग जिनके हाथ बँधे हुए है खडे हैं। उन सबके नाम आकृतियो (Epigraph) से बतलाये गये हैं। उनके नाम इस प्रकार से हैं—

१. Atrina (अत्रिण) प्रथम सूसा का विद्रोही
२. निदिन्तुबेल, प्रथम बेबीलोन का विद्रोही
३. (Phraortes) प्रवरतिष; मेद विद्रोही
४. भारतीय, सूसा का दूसरा विद्रोही
५. चित्रात क्षेम (Citrantakhama); सगर्टियन विद्रोही
६. वेंहजदत्त (Vahyaz data), द्वितीय Pseudo-Smedis (गौमत)
७. आरक्ष (Arakha); बेबीलोन का दूसरा विद्रोही
८. प्राग (Fraga); मार्गी विद्रोही
९. (Skunka) स्कक; सीथियन नेता

इस उत्कीर्ण के ऊपर असुर मज्ददेव है। द्रु (Darius) के हाथ स्तुति में ऊपर उठे हुए हैं। फारसी; सूसी अथवा नव एलामतु (New Elamite) तथा बेबीलोन की त्रिभाषा मे द्रु (Darius) तथा उसके साम्राज्य की सीमाओ का वर्णन है। इसमे (Cambyses) द्वारा भारतीय (Bardiya) की हत्या और मागी गौमत (Pseudo Smedis) द्वारा विद्रोह का वर्णन है। (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) आगे चलकर इसमे द्रु (Darius) के हाथो विद्रोहियो के मारे जाने का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसमे इस उल्लेख को संभावित नष्ट करनेवाले को लताड भी दी गई है ताकि भविष्य मे इस लेख का कोई विनाश न कर दे।

असुर लिपि (Cunei form लेख) के कारण यह उत्कीर्ण शिला बहुत प्रसिद्ध है।[२]

अब सक्षमानो[3] (Achaemenian) की स्थापात्य कला के विषय मे भी थोड़ी जानकारी देना आवश्यक है। पहले बताया जा चुका है कि इन लोगो ने परस

१ गोब्रयस को प्राचीन इतिहासकारो जिनमे सर पर्सी भी शामिल है सस्कृत नाम गौपौरव से उल्लेख किया है। सर पर्सी, पृष्ठ १६५

२. सर पर्सी, पृ० १७७

३. सरपर्सी ने सक्षमानो के सस्कृत नाम का उल्लेख किया है। उसके अनुसार यूनानी Achaemenes शब्द Hakhamanish शब्द का अपभ्रंश है। चूंकि फारसी व्यक्ति 'स' का उच्चारण 'ह' करते हैं इस कारण सही शब्द 'सक्षमान' मालूम पड़ता है। (सर पर्सी, पृ० ३४)।

की राजधानी पसर गड (Gadae) (गढ़ ?) को बनाया था। यूनानियों ने इसका 'पर्सिस' नाम से उल्लेख किया है। यह पसरगढ़ पहले एक छोटे से देश की राजधानी थी। किंतु जब फारसियों का एक बृहत् साम्राज्य बना तो इस शक्तिशाली राज्य की राजधानी को पर्सीपोलिस अथवा परशुपुरी कहा जाने लगा। यह नाम यूनानी भाषा से प्रभावित मालूम होता है क्योंकि पर्सीपोलिस का सही शब्द आधुनिक साहित्य मे प्राप्त नही है।[1] इस प्राचीन नगर स्थल-पर अब एक चबूतरा बना हुआ है जोकि वास्तव मे छोटी पहाड़ियो का एक छोटा-सा गोल घेरा है इसे तख्त सुलेमान कहते हैं। इस चबूतरे का ऊपरी फैलाव ३०० फीट लंबा है और जिसे बड़े-बडे सफेद पत्थरो से लोहे की सलाखो मे फँसाकर और पक्का कर दिया गया है। यह सलाखें अब निकल गई हैं। इसी के पास चूने के पत्थर का एक बडा टीला है जिस पर कुरुष की एक बड़ी प्रतिमा खुदी हुई है। अब यह नीचे की ओर कुछ टूट गई है। आसुरी भाषा में इस पर लिखा हुआ है कि 'मैं कुरुष सक्षमान (Achaemenian) सम्राट'[2] इस लिपि को प्राचीन यात्रियों ने पुन. लिख दिया है। इस मूर्ति मे कुरुष के पखे लगे हुए है जिसे (Fravashi) प्रवशि (or genius) कहा जाता है। यह आदमकद मूर्ति आसुरी ढग की बनी हुई है किंतु इसका मुकुट मिस्री ढग का त्रिकोणात्मक है। इस मूर्ति की सूरत निश्चित ही आर्य रूप की है और इससे पश्चिमी इतिहासकार यह परिणाम निकालते हैं कि सभवत ससार मे यह किसी भी आर्य की सबसे पहली 'प्राप्त मूर्ति है।'[3]

इसी के पास मे एक और पुरातत्व की प्रसिद्ध वस्तु है जिसे सुलेमान की माँ की कब्र कहते हैं। ईरानी भाषा मे इसे 'मसहिदे-मादर सुलेमान' कहा जाता है। यह एक बहुत बडा पत्थरो का सुगठित और सुन्दर टीला है जो चूने के पत्थरो से (भारतीय ढंग की) परिक्रमाओ द्वारा बना हुआ है। इसके भीतर का जो कक्ष है ऐरियन इतिहासकार के समय मे इसमे लिखा हुआ था कि "मैं कुरुष

---

१ सर पर्सी, पृष्ठ १७८

२. महाभारतके सभव पर्व अध्याय ७६ मे पश्चिम के असुर राजाओ के जो नाम गिनाये गये हैं उनमे 'करुष' देश के अनेक राजाओ का उल्लेख आया है। सभवत इसी करुष सम्राट के नाम पर देश का नाम करुष पडा हो। विष्णु पुराण के द्वितीय भाग के अध्याय ३ मे श्लोक १५ में भारत के पश्चिम दिशा मे जो राजा गिनाये गये हैं उनमे (करुष नहीं) कारुष देश का वर्णन है।

3. The face is distinctly Aryan in type and we may therefore believe it to have been a portrait of the first great Aryan whose features have been preserved to us down the ages. Sir Percy, 179.

कांमुज्य (Cambasyes) का पुत्र जिसने फारस के साम्राज्य का निर्माण किया और अब ऐशिया का सम्राट हूँ। ऐ मनुष्यो ! मुझसे इर्ष्या न करना इसलिये यह निर्माण करता हूँ।" अब यहाँ पर इस पक्ष में अरबी के कुछ लेख खुदे रह गये है। इस संदर्भ में लिखते हुए सर पर्सी स्वयं ने अपने को आर्य होने में गौरवशाली माना है।[1]

परशुपुर (पर्सीपोलिस) के महल[2]—'सर्वदस्त' के मैदानों में परशुपुर (पर्सीपोलिस) के ये खंडहर फैले हुए हैं। इस स्थान को राजधानी बनाने के लिये तत्कालीन राजाओं ने ठीक ही चुना था क्योंकि यह बडा रमणीय स्थल है। इन पूरे खंडहरों की ढेरी में से तख्ते जमशेद बहुत प्रसिद्ध है। यह ससनीय[3] वंश द्वारा निर्मित एक बडी भू-चट्टान (Sculpture) है। इसका ४० फीट ऊँचा चबूतरा तीन ओर से समकोण है। इसकी लम्बाई १५०० फीट है जबकि पसरगढ़ के चबूतरे की लम्बाई केवल ३०० फीट ही है। इसकी चौडाई ६०० फीट है। इस पर चढ़ने के लिये बहुत ही कम ऊँचाई की सीडियाँ बनी हुई हैं जिस पर से घोड़े भी आसानी से चढ़ सकते हैं। प्लेटफार्म के ऊपर असुरों की कला में पखों वाले वृषभ खुदे हुए हैं जो क्षयहर्ष (Xerxes) की पोर्च मे स्थित हैं। यहीं पर तीन प्रसिद्ध भाषाओं में उत्कीर्ण लेख हैं। अन्य वर्णन के बाद इनमे लिखा है—"मैं सक्षमान (Aehamenian) सम्राट द्रु (Darius) का पुत्र क्षयहर्ष (Xerxes) हूँ जो कि बहुत बडा सम्राट, शाहंशाह, बहुभाषी देशों का सम्राट; और इस विश्व का सम्राट हूँ। असुर मज्द की कृपा से मैंने इस पोर्च का निर्माण किया है जिसमें सब देशों को भी चित्रित किया गया है।"[4] इसके आगे चलने पर चार बृहत् खंभे हैं जो केन्द्रीय कक्ष को साधे हुए हैं। इनमे से दो खंभो पर उभरते और कक्ष को साधे हुए (विनष्टकारियो के नाश करने के बाद भी) दाढ़ी वाले चेहरे स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ १८०

२. जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है यूनानी भाषा में अंतिम 'स' व्यर्थ होता है तथा 'स' का उच्चारण 'र' होता है।

३. महाभारत के पांडु विजय के वर्णन में एक देश 'खश' का नाम आया है जिसे 'अस' भी कहा गया है। सभव है उस देश के निवासियो को ससन कहा जाता हो। (कल्याण प्रेस का महाभारत, पृष्ठ ३३६)।

कुछ विद्वानों की राय मे भारत के पश्चिम में शिविस्थान नाम का देश था जिसे फारसी जनता आगे चलकर सीस्तान कहने लगी। विष्णु पुराण के अनुसार (द्वितीय भाग, अध्याय ३) पश्चिम के एक राजा शिशिर थे जिन्होने अपने नाम पर अपने देश का शिशिर (वर्ष) रखा।

४. सर पर्सी, पृष्ठ १८१

यह आश्चर्यजनक पोर्च क्षयहर्ष (Xerxes) की बनाई हुई है और प्रसिद्ध महल में जाने के मार्ग में पडती है। ऊपर चढ़ने के लिये जो सीढ़ियाँ हैं वे आश्चर्य-जनक ढंग से बनाई गई हैं। उसके ऊपर जो बड़ा कक्ष है वह बहुत ही दर्शनीय और सुन्दर है।

द्रु (Darius) का महल और भी सुन्दर है। यद्यपि यह आकार में छोटा है तथापि प्लेटफार्म के पीछे १०० खंभों वाला कक्ष है जो सबसे विशाल कक्ष है। इसमें से भीतरी कक्ष मे जाने के लिये दो बडे-बड़े द्वार हैं। इसी के नीचे मूर्तिकक्ष का सुन्दरतम उदाहरण है। इसमें सम्राट बैठा हुआ है ऊपर मारुत गण उड रहे हैं व अगल-बगल मे उसके सामंत बैठे हुए हैं। कहा जाता है कि इसी कक्ष में सिकंदर को भोजन कराया गया था। बाद में यूनानियों की पराजय का बदला लेने के लिये उसने इस कक्ष को जलाकर राख कर डाला था। अभी भी खुदाई में जो भूमि की परतें मिली हैं वे जमी हुई मिट्टी की होने से उपरोक्त ऐतिहासिक सत्यता की पुष्टि करती हैं।

परशुपुर (पर्सीपोलिस) के ये महल यद्यपि परशु सम्राटों की महानता की याद दिलाते हैं तथापि कुछ दूर आगे चलकर शिलाओं के मकबरे जोकि मिस्री पद्धति पर बनाये गए हैं, दर्शनीय स्थल हैं। सीधे पहाड़ पर दूर से चार क्रास स्पष्ट दिखाई पडते हैं। परन्तु उनके नीचे के भीतर जाने वाले पत्थर को तोड दिया गया है। इसके भीतर की ओर जो मूर्ति अंकित है वह राजा की है। यह मूर्ति धनुष बाण लिये हुए है। सर पर्सी की जाँच से यह स्थान द्रु (Darius) की कब्र का मालूम होता है। इसके बीच के एक कक्ष में जो ६० × २० फीट लंबा-चौडा है, ९ कब्रें बनी हुई हैं, जो राजवंश की मालूम पडती हैं।

इसी प्रकार सूसा मे आर्तक्षयहर्ष (Artaxerxes) के महलो में किये हुए ईंटो पर इनेमिल मिट्टी का चिकना पालिश भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। यह आश्चर्यजनक कारीगरी का उत्खनन कार्य श्री डियूलाफाल[1] के द्वारा किया गया था। उसकी सबसे आश्चर्यजनक खोज दो अति गुफाएँ (Friscoes) हैं जिनकी ईंटों पर इनेमिल पालिश को लेप का सर्वोत्तम नमूना माना जाता है। इसमे धनुषधारी व्यक्तियों की एक बडी उत्कीर्ण मूर्ति है जिसमे गोरे रंग से लेकर काले रग मे विविध योद्धाओं को बताया गया है। पता नहीं यह कला फारसियो की है अथवा बेबीलोनवासियों की है।

पश्चिम किरमान के एक भाग मे खिनमान नामक एक स्थान है वहाँ की खुदाई में अकस्मात काँसे के औजार और शस्त्र मिले हैं जोकि प्राचीन फारस की कला पर काफी प्रकाश डालते हैं। इससे विदित होता है कि फारस और उसके आसपास भी आर्य-सभ्यता बहुत ही बढी-चढ़ी थी।

1. Dieulafoy, the great archaeologist.

२

सम्राट द्रु[1] के समय में यूनान और फारस (६ठी शताब्दी पूर्व)

हेरोडोटस ने लिखा है "कि इस काल तक यूनानी लोग परशु लोगों से अत्यत आतंकित और भयभीत रहते थे। इस समय के बाद युद्ध से सजे हुए परशुओं से पहली बार उन्होंने युद्ध करने का साहस किया।"[2] यहाँ पर यह उल्लेख करना तर्कसंगत होगा कि इन दिनों में संगठित पूर्व की परशु सेनाओं ने और उनकी क्षत्रछाया में कारथेज निवासियो ने यनान की बडी-बडी बस्तियो को जोकि असंगठित पश्चिमी जगत् में जगह-जगह बिखरी पडी थी, बार-बार हमलो द्वारा न केवल त्रस्त कर दिया अपितु उन पर लगातार विजय भी प्राप्त की। यह सब वर्णन यूनानियो की पुस्तको से ही प्राप्त हुआ है। चाहे वह घटा-बढा-कर ही क्यो न प्रस्तुत किया गया हो। परन्तु यह सत्य है कि वर्तमान जगत् के लिये और कोई उपलब्ध सामग्री उस काल की नही है।

पश्चिमी इतिहासकारो ने यूनानियो को न केवल यूरोप की संस्कृति का जन्मदाता ही माना है अपितु उन्हें सदैव ही अजेय भी माना है। पश्चिमी इतिहासकारो ने विशेष रूप से जब पश्चिम और पूर्व के युद्धो का वर्णन किया है तो उनमें पश्चिम के प्रति आश्चर्यजनक पक्षपात पाया जाता है। पूर्व की विजय सम्बन्धी सही-सही बातो का उल्लेख करने मे भी उनको जो हिचकिचाहट

१ यूनानी भाषा मे अत मे 'स', अक्षर का लोप होता है, इसलियें 'डेरियस' अग्रेजी का शब्द वास्तव में 'स' रहित होना चाहिये। अर्थात् फारसी भाषा में इस डेरियस का 'दारा' कहा जाता है। ऐसा मालूम पडता है कि मूल मे सस्कृत के द्रुह्यु शब्द को यह अपभ्रंश है। भारतीय इतिहास पुराणो से यह सिद्ध भी होता है। विष्णु पुराण के तीसरे अध्याय में जो दुर्वसु वश का उल्लेख किया गया है उसमे दुर्वसु के पुत्र द्रुह्यु का उल्लेख है। ये सब असुर लोग थे।

२. हेरोडोटस, जिल्द ६, पृष्ठ ११२

होती है उससे उनके एकपक्षीय व्यवहार का पता चल जाता है। यही बात परशु और यूनान के सम्बन्धों के विषय में रही है। यद्यपि एशिया माइनर की यूनानी बस्तियों की विजय तथा थ्रेस और मेसेडोनिया (मकदूनिया) सरीखे बड़े राज्यों को परशु लोगों ने जीत लिया था, तब भी इतिहासकारों ने इसे केवल यूनानियों की एक जाति के तृतीय अंश पर ही विजय बतलाई है फिर उसमें भी यूनानी जहाजी बेडे की उत्कृष्टता, शौर्य तथा स्वतन्त्रता-प्रिय होने का बार-बार उल्लेख किया है।

यूनानियों के साथ परशु लोगों के संबंध दो-तीन प्रकार से प्रारंभ हुए। प्रथम तो एशिया माइनर पर जब परशु लोगों ने आक्रमण किया तो वहाँ से बहुत से यूनानी शरणार्थी भाग-भागकर अपने मूल यूनानी टापुओं और राज्यों में जाकर बस गये। उन लोगों की वहाँ के मूल निवासियों से कलह शुरू हो गई। इन गृह-कलहों में ये शरणार्थी अपनी सहायता के लिये सार्डीज के यूनानी क्षत्रप या उसके मालिक परशुओं को सहायता के लिये कभी-कभी बुलाया करते थे और इस प्रकार इनका आगमन यूनानी देशों में शुरू हो गया। दूसरे, परशु राज्य के लिये अपने स्वाभिमान को भी एक चुनौती थी कि वे इतने बडे-बडे साम्राज्य स्थापित करें किंतु एक कोने मे पडे हुए राज्य को स्वतंत्रता पूर्वक रहने की अपनी महत्वाकाक्षा को अधूरी रहने दे। तीसरे, युद्ध करने मे उनको न केवल ख्याति ही अपितु बडे-बडे भारी क्षेत्र भी मिल जाते थे। अतएव यूनान की ओर इन लोगो का अधिकाधिक ध्यान जाना स्वाभाविक ही था।

यहाँ पर यूनान देश की दशा पर भी विचार कर लेना जरूरी है। इस काल में यूनान आतरिक झगडों मे व्यस्त था। यूनानियों का प्रमुख केन्द्र स्थल एथेन्स इस समय आपसी कलह मे लीन था। सन् ५१० ई० पूर्व में पिसिसट्रेटस वश के हिप्पियस राजा को स्पार्टा राज्य ने उसके तथाकथित जुल्मों के कारण एथेन्स से निकाल दिया था। हिप्पियस ने ट्रोड के राज्य मे स्थित सीजियम में शरण ले रखी थी। यहाँ पर रहते हुए उसने सार्डीज के परशु क्षत्रप से एथेन्स के विरुद्ध सहायता माँगी। इस समय यूनान मे एक उच्चवशीय जाति के क्लीस्थनीज ने एथेंस मे प्रजातंत्रीय पद्धति पर अनेक सुधार कर रखे थे; तथा संविधान को नया स्वरूप दे दिया था। इससे दूसरे उच्चवशीय सरदार रुष्ट हो गये। अत उन्होने यूनानी राज्य स्पार्टा से सहायता माँगी जो तत्काल दी गई और क्लीस्थनीज को हारकर सधि करनी पडी। किंतु जब स्पार्टा वाले एथेन्स का घेरा डाले पड़े हुए थे, एथेन्सवालों ने विद्रोह कर दिया और अपने बंधुओं को, एटीका के क्षेत्र सहित छुडा लिया। यह सब हाल देखकर स्पार्टा वालों ने पेलीपोलीसस राज्य की सहायता से एक और बडा आक्रमण कर दिया। अब एथेन्स वालों के पास सार्डीज के परशु क्षत्रप की सहायता लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय शेष न

था किंतु क्षत्रप ने 'भूमि और पानी की माँग' अर्थात् परशु की अधीनता स्वीकार करने की शर्त पर ही सहायता देना स्वीकार किया। एथेन्सवासियों के राजदूत ने यह शर्त स्वीकार कर ली किंतु सन् ५०८ ई० पू० मे एथेन्सवालों ने इसे रद्द कर दिया। इधर पेलीपोलीसस वालों ने एटीका क्षेत्र पर अकेले ही कब्जा कर लिया। इससे कोरिन्थ वाले रुष्ट हो गये और संघ से वे अलग हो गये। सन् ५०६ ई० पू० में एथेन्सवालो ने सार्डीज के क्षत्रप आर्तवर्ण (Artaphernes) के पास फिर प्रार्थना भेजी कि वह हिप्पियस को सहायता देना बंद कर दे। परंतु इस पर ध्यान न देते हुए उलटे उसने एथेन्सवालों को कडी चेतावनी देते हुए कहा कि आप लोग हिप्पियस को वापस बुला लो अन्यथा परिणाम भुगतने को तैयार हो जाओ। क्षत्रप के रुख में इसलिये भी परिवर्तन हो गया था क्योंकि अब उसे मिसिसट्रेटस से सहायता मिलने की आशा हो गई थी। अंत में यूनानवासियो में क्षत्रप के जासूसों का जाल फैल गया और लडाई की तैयारी शुरू होने लगी।

आर्य-यवन युद्ध (यूनान का विद्रोह)

इसी समय सन् ४६८ ई० पू० में माइलटस बस्ती के हिस्टियूज ने आर्य देश परशु के खिलाफ विद्रोह का झंडा खडा कर दिया। इस व्यक्ति को वीरता के उपलक्ष में स्वयं द्रु सम्राट् ने डेन्यूब के दरवाजे की रक्षा करने के लिये थ्रेस क्षेत्र में एक नगर भेंट किया था। हिस्टियूज इस नगर की रक्षा-पंक्ति बनाने लगा। वास्तव में उसका इरादा शातिपूर्वक रहने का नही था। जब परशु लोगो को यह मालूम हुआ तो उसे सम्राट् ने सूसा मे बुलाया और वहाँ चुपचाप नजरबंद कर लिया किंतु उसके साथ व्यवहार अच्छा किया गया। अब माइलटस बस्ती पर हिस्टियूज के दामाद ने राज्य करना शुरू कर दिया और आस-पास की बस्तियों को बगावत के लिये उकसाया। अंत मे इन सब विद्रोहियों ने ४६८ ई० पू० मे सार्डीज पर धावा करके उस पर कब्जा कर लिया किंतु वे उसे अपने कब्जे में न रख सके। एफीसस स्थान पर वे परशु लोगो द्वारा बुरी तरह पराजित कर दिये गए। इस बगावत से सम्राट् भी बहुत अप्रसन्न हो गया था। कहा जाता है कि यूनान वालों से बदला लेने को वह इतना उतावला हो गया था कि प्रत्येक भोजन के समय एक दास जोर से आवाज लगाकर कि "सम्राट एथेन्स का ध्यान रखें" उसे स्मरण कराया करता था। यह तथ्य कहाँ तक सही है यह तो नहीं कहा जा सकता किंतु यूनानवासियो का यह विद्रोह नितांत असामयिक था क्योंकि उनकी शक्ति विशाल परशु साम्राज्य के सामने अत्यन्त महत्त्वहीन और नगण्य थी। किंतु शाह उनको सजा देने में न्याययुक्त था। सन् ४६४ ई० पू० मे माइलटस के नेतृत्व में फिर ३५० जहाजों का एक बेड़ा युद्ध-सामग्री से लैस होकर बढा किंतु उसे ६०० फोनीशियन तथा साइप्रस जहाजों ने जो परशु की ओर से भेजे

गये थे, घेर लिया। अंत में दोनों ओर से निर्णायक लडाई हुई और माइलटस यूनानियों सहित बुरी तरह पराजित हुआ और लेड स्थान की यह लड़ाई परशु लोगो ने जीत ली। माइलटस अपने साथियों सहित पकडा गया और इस प्रसिद्ध शहर के तमाम पुरुष मार डाले गये। स्त्री तथा बच्चों को टिगरिस नदी के तट पर बसे एम्पी नगर में निर्वासित कर दिया गया। इस तरह यूनानियों का विद्रोह पूरी तरह असफल हो गया।

जिस समय परशु लोग इन लड़ाइयों मे उलझे हुए थे उधर उसी समय इन लडाइयों का लाभ उठाकर थ्रेस और मेसीडोनिया ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। अत: जब सम्राट् इन लडाइयों से निबटा तो उसने फिर इन राज्यो को जीतने का संकल्प किया। एशिया माइनर के अंतिम छोर के बंदरगाह से ये राज्य समुद्री रास्ते से केवल दो सौ मील ही दूर थे और यही सबसे सरल मार्ग था किंतु इस मार्ग में यह खतरा भी था कि समुद्र मे छोटे-छोटे अनेक यूनानी टापुओ में उनकी जहाजी शक्ति काफी बिखरी हुई थी। अत. इस खतरे की विद्यमानता में यह रास्ता अपनाना श्रेयस्कर नहीं था। सबसे पहले इनकी नाविक शक्ति का दमन करना आवश्यक था। दूसरे परशु जाति को समुद्र का इतना ज्ञान भी नही था। अत· उसने भूमि-मार्ग को ही आक्रमण के लिये चुना। इसके दो कारण थे, पहला तो यह कि यह भूमि-मार्ग उसका जाना-पहचाना था। दूसरे भूमि पर परशु लोग अपने को सदैव ही अपराजित समझते थे। अत. भूमि-मार्ग के रास्ते से सम्राट् के भतीजे मर्दन जिसे यूनानियो ने Merdonius कहा है को भारी फौज के साथ भेजा गया। पहले ही आक्रमण में मर्दन ने मेसीडोन के राजा अलैक्जेंडर को पराजित कर दिया और उसके पिता अमितास के समय की की गई संधि पर उसे पुन: उसके हस्ताक्षर करने पर विवश किया। जैसी कि सम्राट द्र की नीति थी सन् ४९२ ई० पू० शाह ने सेनापति मर्दन को वापस बुला लिया और सेनापतित्व का भार लीडिया के क्षत्रप के लडके Artaphernes आर्तवर्ण और एक दिति (Datis) को सौंप दिया।

मैसीडोन को पराजित करने के पश्चात् अब यूनान मे केवल दो ही बड़े राज्य रह गये थे जिनका जीतना सम्राट की प्रतिष्ठा के लिये आवश्यक था। इनमे से एक एथेन्स का राज्य था और दूसरा इरीट्रिया का था। इस विजय का एक लक्ष्य यह भी था कि एथेन्स मे फिर हिप्पियम को राजा बनाया जावे जो कि निश्चय पूर्वक परशु विरोधियो का नाश करने मे समर्थ होता। यद्यपि माउंट एथोस (Atho) मे परशु के बेड़े को भारी क्षति उठानी पडी थी तो भी Aegina और दूसरे द्वीप समूहों ने सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अतएव इस आक्रमण मे समुद्र का सीधा दूसरा रास्ता अपनाया गया। सिलीशिया Cilicia का एलियन (Aleıan) मैदान सेनाओ को इकट्ठा करने के लिए चुना गया।

परशु सेना को सेमोस (Samos) बस्ती से यूनानी द्वीप समूहों में नावों और बजड़ों से लाया गया। ६०० जहाजों के एक विशाल बेडे ने पहले इकेरियन Icarion समुद्र से Noxos की ओर प्रस्थान किया और वहाँ के निवासियों को दास बना लिया गया। इस विजय के पश्चात् देलोस Delos पर आक्रमण किया किंतु वहाँ मंदिर होने के कारण उसे छोड दिया गया। वास्तव मे यह आर्य जाति की महान संस्कृति का ही परिणाम था, जिसकी पश्चिम देशवालों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसके बाद सीधे अटीका (attica) की ओर न जाते हुए यूबिया (Euboea) की ओर यह बेडा बढा।

मुख्य भूमि पर उतरने के बाद यह बेडा उस नदी से आगे बढ़ा जो अटीका और यूबिया को विभाजित करती है। इस सेना ने एकदम इरीट्रिया पर हमला कर दिया और अंत मे बस्ती पर कब्जा करके उसे जलाकर खाक मे मिला दिया, क्योंकि यहाँ के निवासियों ने ही सार्डीज पर हमने मे आगे बढकर भाग लिया था। बहुत-से निवासी पहाडियों में भाग गये और बहुत-सों को पकडकर दूर प्रदेश एलम में निर्वासित कर दिया गया। इस लडाई मे इरीट्रिया का साथ एथेन्सवालो ने नही दिया। परशु के ध्वसात्मक युद्ध मे अकेले केवल इरीट्रिया को ही परशु का कोप-भाजन बनने को छोड दिया गया।

इस समय हिप्पियस भी इस सेना मे आकर मिल गया। उसने सलाह दी कि "मेरेथोन की खाडी' को पहले घेर लिया जावे। यह खाडी अटीका मे स्थित है और एथेन्स नगर से उत्तर-पूर्व की ओर २४ मील दूर स्थित है। हिप्पियस की यह सलाह बहुत ही सामयिक थी। क्योंकि यह स्थान एकरोपोलिस के समीप भी था जहाँ हिप्पियस को अपने बहुत से साथियों के मिल जाने की आशा थी। दूसरे, यह स्थान घुडसवार सेना के लिये भी सर्वोत्तम था। किंतु यहाँ हिप्पियस का साथ देनेवाला कोई नही निकला और उलटे इतने दिनो मे एथेन्स मे ६ या १० सहस्र सैनिक इकट्ठे हो गये। उसने अपनी सेना को तीन भागो मे बाँटकर वाम, दक्षिण व मध्य पार्श्व मे रख दिया। परशु सेना मे बीच के पार्श्व मे महान् योद्धा परशु और शक जाति के शूरमा थे। दोनो ओर से भयंकर लडाई हुई। किंतु परशु लोग एथेन्सवालों को न हरा सके और उनकी भारी हानि हुई। इसके बाद परशु लोग एशिया माइनर की ओर लौट गये।

इस युद्ध में यद्यपि सम्राट की सेनाओ का दसवाँ भाग भी नष्ट नही हुआ था। तथापि पश्चिम वालो ने इस युद्ध को महान् युद्ध की संज्ञा दी है। उनका पक्षपातपूर्ण रवैया स्पष्ट है, क्योकि उनके मतानुसार यह हमला एशियावालो ने यूरोप पर किया था। जिसमे वे पश्चिम वालो की सहज हार को स्वीकार करने तत्पर प्रतीत नही होते हैं। इस तथ्य को स्वयं पश्चिमी इतिहासकारो ने स्वीकार

किया है।[1] हालाँकि यह युद्ध स्वयं द्रु के लिए सिवाय इसके कि वह प्रगति में एक खेदजनक रोक थी अन्य कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं था।

मिस्र का विद्रोह

इसी समय मैरेथन की लडाई की प्रतिक्रियास्वरूप मिस्र में भी बगावत का झंडा उठ खडा हुआ। इस बगावत का सरदार एक आर्येन्द्र नाम का व्यक्ति था जिसे कैम्बेसिस ने क्षत्रप नियुक्त किया था।[2] द्रु के समय मे यद्यपि मिस्र ने अभूतपूर्व उन्नति की तथा परशु साम्राज्य के अन्तर्गत सारे राज्यो के द्वार उसके व्यापार के लिए खुल जाने से उसने खूब आर्थिक लाभ भी उठाया तथापि अब जब अन्य युद्धो मे सम्राट् का खजाना खाली हो गया तो उस पर अनेक कर लगाये गये। मिस्र निवासी सम्राट् की इस कृतज्ञता को कि उसने नील नदी को नहर द्वारा स्वेज की खाड़ी मे मिलाकर उन्हे ऐश्वर्यशाली बना दिया था शीघ्र ही भूल गये और चारो ओर बगावत फैल गई।

द्रु की मृत्यु (४८५ ई० पू०)

द्रु अंत तक शक्तिशाली बना रहा। उसने यूनान को सबक पढाने के लिए जोरदार तैयारियाँ की इसके साथ ही वह मिस्र के विद्रोह को भी दबाना चाहता ही था कि सन् ४८५ ई० पूर्व मे केवल ३६ वर्ष की अल्प-आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

यह परशु देश का भाग्य था कि उसे लगातार दो बड़े सम्राट एक के बाद

---

1. "Perhaps no battle in the world has a moral importance so great as that of Marathon even if there has been exaggeration in the versions handed down to us" Perey, p 193.

२ इस क्षत्रप ने अपने प्रांत की सीमाओं को बढाने के उद्देश्य से पश्चिम के टापुओ पर हमला किया। इनमे से एक टापू का नाम मिरिन था जिसके अधिपति के पुत्र को मार डालने के कारण उसकी माता ने आर्येन्द्र से शिकायत की कि केवल परशु सम्राट् के प्रति वफादारी के कारण विद्रोहियो ने उसके पुत्र को मार डाला है। इस पर आर्येन्द्र ने शीघ्र ही बरका पर कब्जा कर लिया, व बरका के निवासियो को वाल्हीक प्रांत में भेज दिया गया।

उसने मिस्र निवासियो को प्रसन्न करने के लिए सूसा (ग्लम की राजधानी) से मुख्य पुजारी को मिस्र वापस लाकर उसको पुन अपना कार्यभार सौंप दिया।

बरका सीरेन तथा नीबिया को मिस्र देश के साथ सयुक्त कर दिया गया था और यह सयुक्त राज्य सम्राट् के राज्य का छटवाँ क्षत्रप था। आर्येन्द्र ने थीब्स नगर के मुहाने पर अमान का प्रसिद्ध मदिर बनवाया जिसके खडहर आज तक उसकी भव्यताकी याद दिलाते हैं। किन्तु बाद में यह क्षत्रप भी सम्राट द्वारा मरवा दिया गया।

एक मिले, कुरुष ने इस बड़े साम्राज्य की नींव डाली जबकि द्रु महान् ने लगातार विजयो पर विजय प्राप्त करते हुए साम्राज्य का दबदबा और प्रभाव बढ़ाया। द्रु का व्यक्तिगत चरित्र बहुत ऊँचा था। वह अत्यन्त विचारशील और बुद्धिमान था। उसके विरोधी यूनानवासियों ने भी उसकी बड़ी प्रशंसा की है। उसमें आर्य संस्कृति के महान् गुण थे। जैसा कि एकयुद्ध मे ऊपर वर्णन किया जा चुका है, वह दयालु भी था। उसके सरदारो ने जिन्हें उसने अत्याचार करने से रोक रखा था उसको यद्यपि Huckster 'हाकर' कहा है किन्तु यह उसका एक गुण था। यह उसके संगठन तथा बुद्धि का ही परिणाम था कि परशु साम्राज्य गत कई पीढ़ियों तक बराबर उसी ठाठ-बाट से चलता रहा जसा कि उसने छोड़ा था। इतिहासकारों के मतानुसार "परशु (ईरान) मे बडे-बडे सम्राटो की कमी नहीं हुई है। वहाँ एक से एक बलशाली सम्राट् हुए हैं। किन्तु समय को देखते हुए इस सम्राट् को विशेष रूप में गिना जायेगा क्योंकि महान् द्रु उन सब मे महान्तम था, वास्तव मे वह इतिहास के महान्तम आर्य सम्राटो मे बहुत उच्च स्थान रखता है।"[1]

---

1. Darius is among the greatest of them all, indeed he ranks very high among the greatest Aryans of History
Sir Percy 194.

३

सम्राट क्षयहर्ष[1] का आरोहण

महान् द्रु की मृत्यु के पश्चात् सन् ४८५ ई० पू० में क्षयहर्ष उसके विशाल सम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। परशु जाति के अनुसार द्रु महान् की कई स्त्रियाँ थीं। उनमे से एक उस गौपौरव की लडकी भी थी जिसने नकली गौमत के विरुद्ध आक्रमण मे षड्यन्त्रकारियो का साथ दिया था। इस लड़की से द्रु के तीन पुत्र हुए। इनमे से सबसे बडा आर्तवाहन (Artavahanes) गद्दी का उत्तराधिकारी समझा जाने लगा था। किन्तु सम्राट कुरुष की पुत्री आतुषा (Atossa) का दरबार मे और पुराने सम्राट पर भारी प्रभाव था। उसके प्रभाव के कारण ही राजा ने अपने भानजे (Khahayarsha)[2] जिसे यूनानी लोग (Xerxes) एक्सरक्सीज कहते हैं को बिना किसी विरोध के गद्दी पर बैठाया। ईस्थर (Esther) की पुस्तक मे इस सम्राट् को अहसर्ष (Ahasucrus) कहा गया है। यह सम्राट अपनी सुन्दरता तथा शरीर के गठन के लिए संसार प्रसिद्ध था। किन्तु स्वभाव से वह आलसी, कमजोर और दरबारियो की बातो मे शीघ्र आ जानेवाला था। वह स्वभाव से आरामपसद होने के कारण उसे अपने शौर्य बढाने की कोई महत्त्वाकांक्षा नही थी। इस कारण यूनानवासियों को स्वतन्त्र होने के लिये अच्छा अवसर मिल गया।

मिस्र का युद्ध (४८४ ई० पूर्व)

किन्तु कुछ दिनो के पश्चात् ही मरदन (Marduniya) ने जोकि सम्राट् द्रु का भतीजा था यूनान के साथ अपमानजनक युद्ध का बदला लेने को सम्राट् को तैयार कर लिया। फलस्वरूप युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गईं। सम्राट् ने सबसे पहले

---

1. See Page 195, Sir Percy.
2. Clement Huart इतिहासकार ने भी इस सम्राट का नाम सस्कृत शब्द के आधार पर क्षयहर्ष (Khshayarsh) लिखा है।

मिस्र की तरफ ध्यान दिया। एक बडी फौज ने मिस्र मे खब्बीसा (Khabhisha) को सन् ४८४ ई० पू० मे हरा दिया और उसके साथियो को बडा कठोर दड दिया गया। मिस्र पर विजय प्राप्त करने के बाद सम्राट् ने अपने भाई (Achaemenes) सक्षमान को वहाँ का क्षत्रप बना दिया। मिस्र मे पहले की भाँति पुन: शाति छा गई। पुराने सरदारो और पुजारियो को फिर से अपनी संपत्ति और सत्ता पर पूरा-पूरा नियत्रण रखने की छूट दे दी गई।

बेबीलोन का विद्रोह

सन् ४८३ मे बेबीलोन मे भी विद्रोह उठ खडा हुआ। वहाँ एक शमशेरिब (Shama Sherib) नामक सरदार ने अपने को राजा घोषित कर दिया। सम्राट् की आज्ञा से शीघ्र ही बेबीलोन को घेर लिया गया। बेबीलोन को न केवल जीत लिया गया अपितु उसमे आग लगाकर उसे सदैव-सदैव के लिए नष्ट कर दिया गया। यहाँ तक कि मदिरो की सपत्ति को भी नही छोडा गया। बेला मार्दुक (Bel Mardik) के प्रसिद्ध मदिर को भी लूट लिया गया। वहाँ की सोने की मूर्तियो को सम्राट् अपने साथ ले आया। इस प्रकार बेबीलोन नये युग आने तक के लिए ससार की दृष्टि से ओझल हो गया।

यूनान के विरुद्ध बड़े युद्ध की तैयारियाँ तथा यूनान विजय

क्षयहर्ष ने अब अपना ध्यान यूनान की ओर आकर्षित किया। उसने यूनानवासियो को दण्ड देने का पक्का सकल्प करके अपने साम्राज्य के सारे प्रदेशो से वीर जातियो और शूरमाओ की एक बहुत बडी सेना सगठित की। यूनानी इतिहासकारो ने इस बडी सेना के बारे मे अत्यत भारी-भारी अतिशयोक्तियाँ लिखी हैं। यदि उनकी बात को सत्य मान लिया जावे तो इस सेना की सख्या ५० लाख से अधिक ठहरती है जोकि निश्चय ही अतिशयोक्ति है। क्योकि उस युग के काल मे इतनी बडी सेना का केन्द्रीय परशु देश से पश्चिम एशिया के अतिम बिन्दु तक तथा वहाँ से समुद्र पार कर यूनानी टापुओ पर आक्रमण करने मे, पीने के पानी तथा रसद आदि के प्रबन्ध करने मे भारी समस्या उठ खड़ी होती। उस समय इतना सामान जुटाना भी सम्भव नही था। तथापि इसमे कोई सदेह नही है कि उस समय तक के ससार मे लडे हुए किसी युद्ध मे इस सेना की सबसे अधिक संख्या थी। हेरोडोटस ने इस पूरी तैयारी तथा युद्ध मे भाग लेनेवाले सैनिको का पूरा-पूरा वर्णन किया है। परशु और मेद जाति के शूर सबसे प्रमुख सैनिक थे। ये धनुष-बाण, तलवार और बर्छों से लैस थे। इनके पश्चात् किसिट (Kissite)[१]

१. जिस जाति को यूनानियो ने किसिट लिखा है वह वास्तव मे खस जाति है। खसी

तथा हृर्षण (Hyrcanians) जातियाँ थी। ये भी परशु जाति की भाँति ही सुसज्जित थी। इसके पश्चात् असुर लोग काँसे के शिरस्त्राण पहने हुए थे। इनके बाद बाल्हीकि, आर्य, पार्थिव और आसपास की जातियाँ भाले और बल्लम लिये थे। शक जाति के प्रसिद्ध योद्धागण नुकीली टोपियाँ पहने फरसो से लैस थे। भारतीय वीर सूती कोट धारण किये थे। अफ्रीका के इथोपिया के सैनिको के शरीर रँगे हुए थे। उनके पास लबी कमानें तथा बाणों की नोको में पत्थर लगे हुए थे। एशिया के निवासी, इथोपियन तथा मकरान के सैनिक घोडों के मुखों के शिरस्त्राण पहने थे। इन सबके ऊपर एक-एक परशु सेनापति था। यह सेना खण्ड-उपखण्डो तथा छोटी-छोटी टुकडियो मे कायदे से बटी हुई थी। इन सबके ऊपर प्रमुख सेनापति मर्दन (Mardunıya or mordonius) था किन्तु 'अमर' लोगों का सेनापति अलग था।

वाहिनी सेना (जिनमे रथ भी सम्मिलित थे) अधिकाश मे परशु और मेद जाति के वीरो की थी। इनमे उत्तरी परशु के ८००० योद्धा जो सगरथ Sagartıans जाति के थे।[२] नागपाश लिये हुए थे। किसिटी लोग वाहनो पर थे। भारतीय वीर खच्चरो से जुते हुए रथो पर आरूढ थे। परन्तु उनका रणभूमि मे विशेष लाभ नही था। बाल्हीक[3], Bactrıans कश्यप[४] Caspıan और

लोगों को अग्रेजी और यूनानी साहित्यकारो ने खसटी या किसटी जाति लिखा है। हरिवश पुराण के अनुसार कालयवन के साथ भारत पर आक्रमण करने जो पश्चिम देशो की जातियाँ आई थी। उनमें खस जाति के आने का भी उल्लेख है।

२. विष्णु पुराण के तीसरे अध्याय मे हर्यश्व वश के एक राजा सगर का उल्लेख किया गया है जो पश्चिम देश का था। सभव है उसी से सगर जाति की उत्पत्ति हुई हो।

३. वाल्हीक वर्तमान बलख प्रदेश है जो अब रूस का एक भाग है।

४. यह जाति सभवत कश्यप सागर के तट पर बसी हुई थी। इस समुद्र का कश्यप सागर या (Caspıan sea) कैस्पियन नाम भी कोई कम आश्चर्यजनक नही है। सर पर्सी ने भी इसे कश्यप जाति का सागर लिखा है। पुराणों मे कश्यपजी के नाम का बार-बार उल्लेख हुआ है। महाभारत के ६६वें अध्याय मे कश्यप मुनि को असुरो का मूल पुरुष माना है। यह प्रजापति भी थे। इसी प्रकार भविष्य पुराण के 'म्लेच्छागमन अध्याय' मे कश्यप मुनि को म्लेच्छों का भूप अर्थात् राजा माना है। इसी भविष्य पुराण के 'शुक्ल वश चरित्र अध्याय' मे लिखा है कि "कलियुग के एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद देवताओ के राजा इन्द्र ने महान उत्तम ब्रह्मावर्त मे कश्यप को भेजा था, उसने आर्यावती नामक देवशक्ति महिला से विवाह किया जिससे उसे दस पुत्र हुए। इसके पश्चात् कश्यप मिस्र देश को चले गये। मिस्र मे उन्होने अपने बल से दस सहस्र म्लेच्छो को पराजित करके उनको वश मे किया। इसके पश्चात् अपने देश मे आकर उनको अपना शिष्य बनाया। सप्तपुरी के नष्ट हो जाने पर वह सरस्वती और दृषद्वती नदियो के मध्य देश में बस गये। देखिये—श्लोक ११, १२, १३, १४, शुक्ल वश चरित्र।

सहस्रांक कलौप्राप्ते महेन्द्रो देवराट् स्वयम्
कश्यप प्रेषयामास ब्रह्मावर्त्ते महोत्तमे । ११ ॥
मिश्र देशोद्भव म्लेच्छान्वशी कृत्यायुत प्रद ।
स्वदेशो पुनरो गत्य शिष्यागन्स चकार स ॥१२॥

द्विजों मे श्रेष्ठ कश्यप मुनि ने अपने पुत्र शुक्ल को बुलाकर रैवत शृंग को आज्ञाएँ दीं । इस रैवत शृंग नाम के शिष्य ने कश्यप के नौ पुत्रों को मनु का धर्म ग्रहण कराया अर्थात् वैदिक धर्म मे दीक्षित किया (श्लोक १६) इसी के एक वंशज ने सिंधु देश को जीतकर उस प्रदेश का नाम सिंधु देश व्यवहृत किया ।

हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व मे लिखा है,कि दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याएँ कश्यप मुनि को ब्याही थी । (श्लोक ७) उन्ही से सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई । (श्लोक १८) स्पष्ट रूप से कश्यप मुनि भारत ही में पैदा हुए थे । (श्लोक २४)

इसी पुराण के विष्णु पर्व के ७० अध्याय मे इन्द्र ने दानवों को अपना भाई होना स्वीकार किया है (श्लोक २८) तथा कश्यप जी का क्षीर सागर (समुद्र विशेष) मे जाने का उल्लेख किया है .

'बृहस्पति स्तवेवमुक्तवा क्षीरादे सागर गतः ।
आचष्ट मुनये सर्व कश्यपाय माहात्मने ॥ श्लोक ३०

यही नहीं कश्यप मुनि का क्षीर सागर के तट पर रहना भी बतलाया है ।

देवताओं का विश्वास था कि असुर लोग कश्यपजी के अनुयायी होने के कारण केवल उनकी ही बात मानते हैं । अतएव जब कृष्ण के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ तो असुरगण को अधिक बलशाली मानकर देवेन्द्र ने असुरों से संधि के लिये बृहस्पतिजी को भेजा था । कश्यपजी क्षीर सागर के तट पर रहते थे (श्लोक ३०) । बृहस्पतिजी उनसे मिलने उसी तट पर गये । शेष असुरों की भाँति कश्यपजी भी शिव पूजक थे । वे अपनी पत्नी अदिति को साथ लेकर युद्ध क्षेत्र मे आये और उन्होने इन्द्र तथा कृष्ण का आपस मे मेल करा दिया था ।

हरिवंश पुराण के ८६ अध्याय मे यह भी उल्लेख आया है कि वज्रनाभ नाम के असुर को समझाने के लिए कश्यप मुनि को ही भेजा गया था क्योंकि यह असुर उनकी ही बात मानता था ।

महाभारत के भविष्य पर्व के ६७वे अध्याय मे कश्यप के पुत्रों का विष्णु से युद्ध होने का उल्लेख आया है । निश्चय ही यह युद्ध असुरो (कश्यप पुत्रो) और देवो (विष्णु) के बीच लड़ा गया होगा । इस युद्ध के बाद ही कश्यपजी का क्षीर सागर के उत्तर तट पर आराधना के लिए जाने का स्पष्ट उल्लेख है । क्षीर सागर के उत्तर का तट से तात्पर्य क्षीर समुद्र के उत्तर की ओर के भूभागीय तट से है । अर्थात् यह तट कश्यप सागर के भू-भाग का दक्षिणी हिस्सा ही रहा होगा ।

विष्णु पुराण के तीसरे अध्याय में सगर की पत्नी सुमति को जो कश्यप सुता लिखा है उससे यह समझना भूल होगी कि सगर-पत्नी सुमति कश्यपजी की लड़की ही होगी । अपितु उससे यह अर्थ निकालना उचित और तर्कपूर्ण होगा कि वह कश्यपवंशीय (असुरो की) कोई राजकन्या रही होगी । इसी सुमति से सगर राजा को साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ।

उपरोक्त उल्लेखो से साधिकार यह अर्थ निकाला जा सकता है कि कश्यप मुनि भारत से बाहर पश्चिम-उत्तर देशो को धर्म-प्रचार हेतु गये थे । वे असुरो के पूर्वज थे और अन्त में उत्तर दिशा की ओर तटवर्तीय क्षेत्र मे ईश्वर-भक्ति में लवलीन हो गये ।

लीबिया के शूर भी रथों पर सवार थे। द्रुमद्र (Dromedaries) अरब सेना अपने साथ ऊँट लाई थी।

फोनिश जाति, मिस्र तथा अधीनस्थ यूनानियों ने कुल मिलाकर १२०७ जहाज लड़ने को भेंट किये थे। इनमे से प्रत्येक जहाज पर दो-दो सौ सैनिक तैनात थे। इन युद्धपोतो पर कुछ शक और परशु शूरमा बैठे हुए थे जो परशु सेना को सहायता देने हेतु नियुक्त किये गए थे। तीन सहस्र यातायात के जहाज साथ थे।

हेरोडोटस ने लिखा है कि "पदाति १७ लाख, वाहनयुक्त १० लाख, नाविक तथा जल सैनिक ५ लाख १० हजार कुल ३२ लाख १० हजार सैनिक थे। इनमें भारवाहक रसद ढोनेवाले कुल मिलाकर यह सख्या ५० लाख तक पहुँचती है जो प्रत्यक्षतः गतल मालूम पड़ती है।"[1]

इधर यूनान ने भी इस दैवी विपत्ति का मुकाबला करने के लिये कोई कोर-कसर उठा न रखी। यूनान की सारी बस्तियाँ जानती थीं कि सम्राट का खास कोप एथेन्स पर है अतः एथेन्स ने अपनी पूरी-पूरी तैयारी की। इस सकट-काल मे यूनानी बस्तियो ने अपना पुराना वैर भुला दिया और लड़ने के हेतु वे सब सन्नद्ध हो गईं। उन्होने युद्ध काल मे अपनी आबादी को अन्यत्र यहाँ तक कि इटली मे भेजने की भी तैयारी कर ली। अब एक सगठित विराट युद्ध-संघ की रचना की गई जिसमे सम्मिलित होने को सबसे पहले argos अरगास को कहा गया, किन्तु वे स्पार्टा की बराबरी का स्थान दे दिये जाने पर आने को तैयार हुए जो सभव नही था। हाँ, उन्होने परशु की सहायता अवश्य ही नही की। इसके पश्चात् सिराक्यूज syracuse के शासक Gelon जीलन के पास संदेश भेजा गया। वह इस शर्त पर आने को तैयार था कि उसे सेनापति बनाया जाये। जिसे राजदूत ने स्वीकार नही किया। इसी प्रकार क्रीट और कोर्सिका ने भी सघ मे सम्मिलित होने से इनकार कर दिया।

परशु साम्राज्य की विशाल सेना टर्की मे स्थित एशिया के अन्तिम छोर सार्डीज मे इकट्ठा हो गई और वहाँ से वह आगे बढी। इस बडे कारवाँ मे कोई नियमित मार्च नही था। किन्तु यह बात इस तथ्य की द्योतक थी कि परशु साम्राज्य आश्चर्यजनक रूप से सगठित था। हेलेसपोट[2] को पार करने के लिए दो विशाल नाव पुल बनाये गए। इसी प्रकार स्ट्रीमन पर पुल बनाया गया तथा अथोस अन्तरीप को काटकर विशाल नहर बनाई गई। ये सब कार्य अत्यन्त ही कठिन और आश्चर्यजनक थे। स्थान-स्थान पर रसद के भण्डार स्थापित किये गए। हाँ, कहीं-कहीं पर पानी की अवश्य कमी रह गई थी।

---

१. स्वय सर पर्सी ने यूनानियों की इस गप्प पर मजाक उड़ाया है।

२. यह वह स्थल है जहाँ यूरोप और एशिया मिलते हैं।

इतिहासकारो ने हेलसपोंट को पार करने को चमत्कारी योजना बताया है। नावो के दोनो पुलो को मजबूत रस्सियो से बनाया गया था जो स्वयं सम्राट की देख-रेख मे बना था। सम्राट पास की एक पहाडिया पर संगमरमर के सिंहासन पर बैठकर निर्माण मे आज्ञायें देता रहता था।

यह महान कार्य संपन्न होने के पश्चात् सम्राट क्षयहर्ष ने आर्य-परम्परा के अनुसार समुद्र का पूजन किया और एक स्वर्ण कलश से समुद्र मे जल अर्पण किया और प्रार्थना की कि भगवान् उसे यूरोप को जीतने की शक्ति दे। फिर स्वर्ण कलश, स्वर्ण पात्र तथा स्वर्ण की तलवार समुद्र को अर्पण की गई। इसके पश्चात् अपने मस्तको पर फूलमालाएँ धारण किये हुए 'अमर' वीरों ने सबसे पहले पुलो को पार किया।[1] इन पुलो पर मेहदी की घनी डालियाँ बिछाई गई थीं जो महक रही थी। समुद्र पार करने के बाद जब इस महान सेना ने यूरोप मे पग रखा तो वह डारिम्कस के प्रसिद्ध मैदान मे ही जाकर ठहरी। वहाँ से आगे बढकर वह एकन्थस नामक स्थान मे पहुँची और वहाँ से वह तीन भागो मे बट गई। यहाँ सेना को पुन. थरमा नामक स्थान पर इकट्ठे हो जाने के आदेश दिये गए।

माउण्ट ओलिम्पस के मार्ग को बचाने के लिए थेसाली (Thessaly) की प्रार्थना पर एथेन्स (यूनान) ने दस सहस्र शूरमा भेजे किन्तु बाद मे यह पता चलने पर कि शत्रु सेना की सख्या के सामने यह सेना नगण्य है और शीघ्र ही विनष्ट कर दी जायेगी। इस सेना को वहाँ से वापस हो जाने के निर्देश दिये गए। अत. अब जब थेसाली अकेला पड गया तो उसने शीघ्र ही परशु सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार सम्राट की सेना निर्बाध गति से थेसाली और मेसीडोनियाँ को जीतती हुई आगे बढती गई। यहाँ तक कि केवल थेसपी और पैलेटिया को छोडकर लगभग सभी उत्तरी यूनान की बस्तियो ने सम्राट के बढते हुए चरणो मे अपने मस्तक नवा दिये।

अब यह विशाल सेना आगे बढी। स्पार्टा ने इसके प्रतिरोध का एक आयोजन एथेंस के सामने रखा। उसका सुझाव यह था कि कोरिन्थ के जलडमरूमध्य की रक्षा की जाये। और इस हेतु एथेंसवाले अटीका को छोड़कर दक्षिण मे चले आएँ। किन्तु एथेंसवालो को यह योजना पसन्द नही आई। टैम्पे की पराजय के बाद जिस एक नई योजना को काम मे लाया गया वह यह थी कि थरमो-

---

१. यूनानी इतिहासकारो ने अमृतक को अमृइस (immortal) लिखा है। ये योद्धागण भयकर लड़ाकू होते थे तथा इन्हे मृत्यु का भय नही होता था अत इन्हे 'अमर' कहा जाता था। स्वय अमत शब्द भी सस्कृत भाषा का है। अमर वीरो की यह प्रथा थी कि इनके योद्धाओं को मरने के बाद शीघ्र ही दूसरे व्यक्ति रिक्त स्थान को भर देते थे। इस प्रकार इस सेना का नाम ही 'नष्ट न होनेवाली अमृतकसेना' हो गया था।

पाली की प्रसिद्ध घाटी के तंग रास्ते मे सम्राट की सेना का मुकाबला व प्रतिरोध किया जाये। इस प्रसिद्ध घाटी के एक ओर ऊंचा पहाड था और दूसरी ओर समुद्र लगा हुआ था जिसमे यूनानी जहाज रक्षा हेतु खड़े हुए थे। बीच के रास्ते पर लडना उचित समझकर वीर ल्यूनीदास (Leonidas) के नेतृत्व मे सात हजार सेना भेजी गई। जिसने अत्यन्त बहादुरी के साथ सम्राट की सेना का भारी प्रतिरोध किया किन्तु इस अल्प सेना की भारी पराजय हुई और सम्राट की सेना ने इस पराजित सेना को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। किन्तु ल्यूनीदास की असाधारण वीरता ने एशियावालो को आश्चर्य में डाल दिया जिसे वे आज तक स्मरण करते है।

अब सम्राट की सेना प्रसिद्ध थरमा स्थान की ओर बढी। इस स्थान की तग घाटी मे यूनानियो ने अपनी रक्षापक्ति सुदृढ कर ली थी। अतः जब सम्राट ने मेद व किस्सी जाति के वीरो को उनका मुकाबला करने भेजा तो यूनानियो ने उसे पराजित कर दिया। चार-पाँच दिनो तक सम्राट प्रतीक्षा करता रहा अन्त मे परशु लोगो ने एक यूनानी को अपनी ओर मिलाकर पहाड़ पर जाने का दूसरा मार्ग ढूँढ लिया तथा वहाँ से भयंकर आक्रमण करके थरमा स्थान को उन्होने जीत लिया।

यूनान के साथ समुद्री लड़ाई

स्थल सेना के सग्राम हेतु रवाना होने के पश्चात् सम्राट का जहाज़ी बेडा थरमा घाटी के बन्दरगाह पर बारह दिन तक पडा रहा। क्योकि इस बन्दरगाह और मैगनेशियन की खाडी के मध्य मे कोई भी अन्य बन्दरगाह नही था। अब यह बेडा अपने आगे दस जहाजो को लिए हुए धीरे-धीरे बढा। यूनानियो के तीन जहाज इसका मुकाबला करने के लिये आये। किन्तु इनमे से दो विनष्ट कर दिये गए। अब यह पूरा बेडा मैगनेशियन बन्दर तक पहुँचकर वहाँ स्थान की कमी होने पर भी ठहर गया। इस स्थान पर जहाजो को ८-८ की लाइन मे खडा किया गया, किन्तु एक दिन अचानक तूफान आ जाने से लगभग चार सौ जहाज नष्ट हो गये। शेष जहाज़ी बेडा आगे बढकर अफीती को पार करता हुआ आर्टीमीजियम के सामनेवाली भूमि पर पहुँच गया।

अब सम्राट् की ओर से बार-बार आदेश आ रहे थे कि यूनान की जलशक्ति पर प्रचण्ड आक्रमण करके उसे विनष्ट किया जाये। अत. इस विशाल बेड़े ने यूबोइया (Euboea) को घेरकर उसे मुख्य भूमि से अलग करने का संकल्प कर लिया क्योकि इसमे पूरी यूनानी जलशक्ति उलझनी और उसे सहज ही नष्ट किया जा सकता था। इस महत्त्वपूर्ण टापू को बचाने के लिए स्पार्टा के वीर योद्धा यूरीवियाडीज की आधीनता मे एक विशाल बेड़ा गया जिसने पहले-

पहल ही तीस जहाजो पर कब्जा कर लिया। दूसरी रात भी उसे कुछ थोड़ी सी सफलता मिली। इस सफलता ने एथेन्सवालों को प्रसन्न कर दिया। यह खबर उनके ५३ जहाजों पर जोकि वेलिसज की रक्षा कर रहे थे पहुँच गई। सम्राट् इस देरी से अत्यत क्रुद्ध हो गया और पूरी शक्ति के साथ यूनान को सबक सिखाने के लिये सेनाओं को आदेश दिया गया। फलतः यूनानी बेड़े पर भयंकर आक्रमण किया जिसकी मार से यूनानी बेडा नष्ट-भ्रष्ट होकर मैदान से भाग गया। यदि इस समय सम्राट् का बेड़ा यूनानी बेड़े का पीछा करता तो वह यूनानी बेड़ा पूर्णरूप से विनष्ट हो जाता।

एथेंस विजय

इन समुद्री सफलताओ से शाही सेनाओ को एथेंस की ओर बढ़ने का काफी मौका मिल गया। एथेन्सवाले अभी तक थरमापोली की आशा पर टिके हुए थे, किन्तु उसके पतन से उन्होने अपनी आबादी के बच्चे व महिलाओ को शीघ्रता से ट्रोइजन, ऐजीना तथा सेलेमिज भेज दिया। अब सम्राट् की सेनाओ को पूरा मध्य यूनान खुला हुआ पडा था। उन्होने पहले फोसिस पर कब्जा करके उसे पूरी तरह विनष्ट कर दिया। फिर यह सेना अटीका की ओर बढी। कुछ अन्धविश्वासी लोगो ने डेल्फी के प्रसिद्ध मदिर की भविष्यवाणी पर विश्वास करते हुए कि एथेंस के किले की लकड़ी की दीवारो को शत्रु पार नही कर सकेंगे; इस प्रबल वेग के आक्रमण को रोकने की असफल चेष्टा की किन्तु वह व्यर्थ गई और शाही सेना ने एथेंस के प्रसिद्ध और महान् नगर पर देखते-देखते कब्जा कर लिया। चूंकि सार्डीज नगर पर एथेन्सवालो ने आक्रमण करके उसे तहस-नहस किया था। अतः सम्राट् ने उसका बदला लेने के लिये उसके मन्दिरो को जलाकर उसका पूरी तरह से विध्वंश कर डाला। इस प्रकार अटीका और एथेन्स सम्राट् के चरणो मे क्षत-विक्षत होकर पूरी तरह धराशायी हो गया।

सेलेमिज का युद्ध

सेनापति थेमिस्टोक्लीज की इस अनुनय से कि अब यूनानियो के स्त्री और बच्चो को जोकि परशु द्वारा घिरे हुए थे बचाया जावे; यूनानी बेड़े ने सेलेमिस की रक्षा करने का निर्णय किया। क्योकि सेलेमिज की रक्षा पर ही यूनानी शरणार्थियो की रक्षा संभव थी। किन्तु इसी बीच एथेन्स की विजय के बाद सम्राट् की सेना फैलेरिन नामक स्थान पर पहुँच गई थी और उसने वहाँ अपना विशाल पडाव डाल दिया था। इस पड़ाव से यूनानवासी इतने भयभीत हो गये कि पेलीपोनिससवासियो ने अपने बेड़े को कोरिन्थ की खाडी में भगा ले जाने का निर्णय कर लिया। उन्हें अब अपनी रक्षा के सामने एथेन्सवासियो

की रक्षा की कोई चिन्ता न थी। उनका ख्याल था कि यदि सेलेमिज की लड़ाई में वे हार गये तो उनकी रक्षा फिर सम्भव नही हो सकेगी। कोरिंथ में उन्हें अन्य बेड़ों की सहायता मिल सकने की आशा भी थी जिससे आखिरी लड़ाई लड़ी जा सकती है। पेलीपोनिसस के इस निर्णय से सेनापति बड़ी दुविधा में फँस गया। कोरिन्थ के जहाजी बेडे का सेनापति भी इसी मत का था। उसका यह कहना भी था कि जब एथेंसवाले युद्ध हार चुके हैं, उनकी राय की कोई कीमत नहीं है। इस प्रकार इस संकट की घडी मे यूनानी उच्च संघ मे आपस मे फूट पड गई। इस संकट की घडी मे सेनापति ने अपने सहयोगियो के साथ निष्ठा तोड़-कर अपने बुद्धि-कौशल से यूनान को बचाने का सकल्प किया। उसने छल से सम्राट् को सदेश भेजा कि लगातार हारो से यूनान की कमर टूट गई है और अब उन पर अन्तिम विजय कुछ क्षणो की ही बात है। सम्राट् ने इस बात पर विश्वास करके केवल दो सौ मिस्री जहाज पश्चिम की ओर सेलेमिज तथा मेगारा के मध्य के स्थान में भेज दिये और अपनी प्रमुख सेना को साइटेलिया टापू के तीन ओर तीन भागों मे विभाजित करके नाकाबन्दी कर दी ताकि कोई यूनानी इस घेरे को तोड़कर बाहर न निकल सकें।

यूनान पर इस समय महान् सकट था। अतः सेनाओं का भार अब एक नये सेनापति ऐरिस्टीडीज पर जोकि निर्वासन से अभी घर लौटा था, आ पड़ा। यूनानियो ने निर्णय किया कि खुले समुद्र में सम्राट् की सेना का मुकाबला करना असम्भव है अतएव किसी सँकरे मुहाने पर ही सम्राट् की सेना का मुकाबला किया जावे। अत. युद्ध प्रारम्भ हो गया। पहले-पहल परशु सेनाओं को लगातार सफलताएँ मिलती गईं। जब यूनानियो ने एक प्रातः विशाल समुद्र में सम्राट की अपार सेना देखी तो वे अपने जहाजो को किनारों पर ले आये। किन्तु इस सकटवेला मे नष्ट होकर मरने की अपेक्षा युद्ध मे जूझकर मरना उन्होने अच्छा समझा और वे फिर युद्ध के लिये बढे। बढते समय सम्राट् के फोनीशियन बेडे का मुकाबला इन एथेन्स और एजीना वाली सेनाओं से पड गया। इसी प्रकार शाही यूनानी सेना जो साइटेलिया और सेलेमिज के मध्य बढ रही थी, का मुकाबला पेलीपोनीसिस बेडे से पड गया। अपार संख्या वाले शाही बेडे ने एकदम भयकर युद्ध शुरू कर दिया और यूनान का वाम पार्श्व खदेड़कर नष्ट कर दिया गया, किन्तु वे दक्षिण पार्श्व को न हरा सके और वे फेलरोन को लौट गये। इस युद्ध मे परशु को दो सौ और यूनान को चालीस जाहाजो की क्षति उठानी पडी। शाही सेना के लौट जाने से शेष यूनान बच गया। शाही सेना ने यूनानियो का फिर पीछा नहीं किया।

यूनानी लेखको और पश्चिमी इतिहासकारों ने तरह-तरह की कविताएँ लिखकर इस युद्ध का विशद वर्णन किया है। उन्होने यह दिखाने की चेष्टा

की है कि इस समुद्री युद्ध में वास्तव में शाही सेना की हार हुई। जबकि उपलब्ध तथ्यों से पता चलता है कि क्षयहर्ष की सेना ने यूनान के बीचों-बीच घुसकर उसके अभिमान, शौर्य को हमेशा के लिए युद्ध द्वारा विनष्ट कर दिया । हाँ, भागनेवाले यूनानियों का पीछा न करके उसने उन्हें पूरी तरह विनष्ट नही किया। इसके लिये यूनानवासियों को सम्राट का कृतज्ञ होना चाहिए ।

भय से आतंकित दक्षिणी पार्श्ववाले यूनानियो ने सेलेमीज के किनारे पर बडी व्यग्रता से रात काटी और प्रात काल जब वे लडाई के लिये तैयारी करने को उठे तो शाही सेना को वहाँ न देखकर उन्होने सतोष की साँस ली।

लडाई के अन्तिम चरण मे क्षयहर्ष ने पूरे युद्ध के सिंहावलोकन के लिए एक युद्ध समिति बुलाई। इसमे प्रसिद्ध सेनापति मरदन ने सम्राट को सार्डीज मे जाकर ठहरने को कहा और स्वय ने हेल (Hellas) विजय के लिए तीन लाख फौज रख ली जिससे कि वह शेष युद्ध को जारी रख सके। सम्राट ने उसका कहना मान लिया और अटीका को छोडकर लगभग सारे यूनान को जीतकर वह थेसाली चला गया।

सम्राट की सेनाओं को लौटते समय बहुत ही क्षति उठानी पडी। हेलसपोट का पुल नष्ट हो चुका था । स्वय सम्राट एक जहाज मे बैठकर एशिया पहुँचा। रास्ते में उसकी फौज को भूख-प्यास से भी तडफना पडा। यूनानियो ने फिर इस स्थिति से लाभ उठाने का यत्न किया और उसका व्यर्थ ही पीछा किया। उनमें से बहुत से मारे गये फिर भी सम्राट की स्थिति से उनको कोई लाभ नहीं मिल सका। एन्ड्राम पहुँचकर यूनानियों ने फिर पीछा करने का निश्चय किया। थेमिस्टाक्लीज इस मत का था किन्तु एथेन्स निवासी यूरीवियाडीज ने इसका भारी विरोध किया और जब उसकी कुछ न चली तो उसने सम्राट के पास इस पूरी कार्यवाई की रिपोर्ट भेज दी।

सिसली पर आक्रमण

इसी समय परशु लोगो की चतुराई ने फिर एक नया कुतूहल उत्पन्न कर दिया। सन् ४८० ई० पू० मे कार्थेज के लोगो ने यूनानी द्वीप सिसली पर आक्रमण कर दिया। जिससे यूनानियो को एकजुटता से युद्ध करने का अवसर न मिल सका किन्तु इस युद्ध की तिमेरा की प्रसिद्ध लडाई मे कार्थेज निवासी असफल होकर घेरा उठाने को बाध्य हो गये।

मरदन का आक्रमण

अब सेनापति मरदन ने दूने और अदम्य उत्साह के साथ शेष यूनान को जीतने का संकल्प किया। उसने सम्राट की सेना में से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वीर लोगों

को छांट लिया और एक सर्वश्रेष्ठ सेना तैयार कर ली। यह सेना बड़ी दक्ष और अनुशासित थी। स्वय मरदन को यूनान से युद्ध लडते रहने के कारण इस क्षेत्र का काफी अच्छा अनुभव प्राप्त हो गया था। पहले तो उसने यूनानियों में फूट डालने की कोशिश की। उसने मेसीडोन के राजा अलेक्जेंडर द्वारा एथेंसवालों से सुलह की चर्चा की किंतु स्पार्टा के व्यक्तियों ने इसकी गध पाकर उसे असफल कर दिया। इससे मरदन को बडा क्रोध आया और उसने प्रबल वेग से एथेंस की ओर कूच कर दिया और दस महीने के भीतर ही दूसरी बार यूनानियो को भारी पराजय देकर फिर एथेंस पर कब्जा कर लिया। पहले युद्ध के बाद एथेंस मे जो कुछ बचा था अबकी बार मरदन ने वह भी स्वाहा कर दिया। एथेंसवालों की उद्दण्डता का उन्हे पूरा दड दिया गया। इस बार फिर एथेंसवालो ने अपने स्त्री-बच्चो को रक्षार्थ सेनेमीज भेज दिया था। स्पार्टावालो ने एथेस निवासियों को पुन: भड़काने की काफी कोशिश की किंतु वह व्यर्थ गई। क्योकि एथेंस की अब पूरी तरह कमर टूट चुकी थी। एथेंस जीतकर मरदन ने वोइटिया मे अब अपना युद्ध-शिविर लगा लिया। अटीका की अपेक्षा यह स्थान सर्वथा सुरक्षित था। यहाँ पर उसने अपने अधीनस्थ एक यूनानी योद्धा मिसिस्टीअस के नेतृत्व में अश्वारोही सेनाएँ चारो तरफ फैला दी जिनसे यूनानियो को भारी क्षति उठानी पड़ी। अत मे एक दिन मिसिस्टीअस को घोडे ने फेंक दिया। इसके पहले कि वह सँभलकर उठ बैठे—पास के यूनानी सैनिको ने उसे गिरते ही मार डाला। परशुओ ने उसके शव को प्राप्त करने के मे भारी यत्न किये किंतु वे उसका शव प्राप्त न कर सके।

प्लेटिया का युद्ध

मिसिस्टीअस के मरने से प्रोत्साहित होकर यूनानियो ने अब पहाडी लडाई छोड़कर मैदानी इलाके मे हमला करना शुरू कर दिया। किन्तु परशुओ ने एक ही रात मे उनके एक रसद के बडे काफिले के पाँच सौ पशुओ को मार डाला। उनके वाहक-संचालक आदि भी बडी संख्या मे मारे गए। समय, रसद आदि की कमी को देखते हुए इधर मरदन भी अब एक निर्णायक युद्ध की तैयारी मे लग गया। उसके अश्वारोहियो ने समस्त यूनान मे त्राहि-त्राहि मचा दी। उसके सैनिक दूर-दूर से बरछे फेंककर लडने मे कुशल थे। अन्त मे यूनानियो के पीने के पानी के मुख्य स्रोत को भी इन्होने विनष्ट कर डाला। हेरोडोटस तक ने स्वीकार किया है "कि लडाई निश्चित रूप से एशियावालों के पक्ष में जा रही है।"[1] अन्त

---

१. फेंकते हुए बरछे और छूटते हुए बाणो से पूरी यूनानी सेना का नाकों दम कर दिया गया।—हेरोडोटस।

में एथेंसवालों ने एक रात को प्लेटिया मे भागकर अपनी रक्षा करने का निर्णय किया किन्तु यह स्पार्टावालों को स्वीकार न था; फलस्वरूप हजारों की संख्या में फिर यूनानी योद्धा मारे गये।

अब मरदन के लिए यह युद्ध एकदम जीता हुआ हो गया था। अतः उसने आखिरी दौर के लिए दो लाख परशु और पचास सहस्र यूनानियों की सहायता से एक लाख यूनानियो पर आक्रमण करने की सोची। यह संख्या दोनों ओर की अतिरंजित मालूम होती है।[1] अब मैदान में केवल स्पार्टन रह गये थे। अतः स्वयं मरदन घोडे पर सवार होकर रणक्षेत्र मे दाखिल हुआ। वह 'अमर' सेना का नेतृत्व कर रहा था। अपूर्व वीरता के बीच जबकि लगभग युद्ध जीता ही जा चुका था, सेनापति मरदन मारा गया और उसके साथ सहस्रो 'अमर' भी मारे गये।

जैसा कि "एशियाई देशो मे बहुधा पाया जाता है कि राजा की मृत्यु हो जाने के बाद संग्राम मे रत सैनिक निराश होकर भागने लगते हैं[2] यहाँ पर भी यही हाल हुआ। सहस्रो सैनिक अनुशासनहीन होकर इधर-उधर भटक गए और वह यूनानियो द्वारा स्थान-स्थान पर मार डाले गये।" एशियाई सेना का इतिहासकारो के अनुसार "सर्वथा वैभव नष्ट हो गया" किन्तु फिर भी इसी बीच मरदन के भागते हुए यूनानी सैनिको ने एथेंस की सेनाओ पर जो इस अवसर का लाभ उठा रही थी, घेर कर बडी सख्या मे वध कर डाला। हेरोडोटस ने लिखा है कि सम्राट की सेना में से केवल ३००० परशु लोग ही जीवित बचे। हालाँकि वह यह भी लिखता है ४०,००० हजार सैनिको का नेतृत्व करता हुआ आर्तबाहु (Artabazus) जोकि मरदन की इस युद्ध-प्रणाली का विरोध कर रहा था, मैदान से साफ बचकर निकल गया। वास्तव में उसने लडाई में भाग न लेकर देशद्रोहिता का कार्य ही किया और अपनी जाति के सर्वनाश का कारण बना।

इस लडाई के रुख मे अचानक परिवर्तन के कारण स्पार्टन जाति की बहुत ही ख्याति बढ गई और यूनानियो मे वह नेतृत्व करने के योग्य माने जाने लगे। सम्पूर्ण यूनान द्वीपसमूह मे उनके धैर्य, शौर्य और पराक्रम की वीरगाथाएँ गाई जाने लगी। यह उनकी युद्ध-शिक्षा और शस्त्रो की श्रेष्ठता ही थी जिसके कारण एशियाई सकट के पहाड से वे अपने को बचा सके।

इसी अवसर पर एक और अनहोनी घटना ने परशुओ को भारी आघात

---

१ सर पर्सी ने यहाँ भी यूनानियो की अतिशयोक्ति पर व्यग्य किया है।

२. सर पर्सी ने पृष्ठ २०८ पर भी यही लिखा है। इसके बाद भी अनन्दपाल, दाहिर और हेमू राजाओं के समय भी यही कहानी दोहराई गई थी। जबकि उनके गिरने के साथ ही जीती हुई भारतीय फौजें भाग खडी हुईं।

पहुचाया। सन् ४७६ ई० पू० में जो शाही बेड़ा सैमास में पड़ा था उस पर यूनानियों ने अचानक आक्रमण करके उसको भारी क्षति पहुँचा दी। किन्तु बेड़े का एक भाग क्षतिग्रस्त होकर माइकेल के अन्तरीप की ओर हट गया जहाँ ६० हजार सेना पहले से ही पड़ी हुई थी। यहाँ भी यूनानियो से एक जबरदस्त टक्कर हुई जिसमें शाही बेड़े का एक भाग काफी नष्ट हो गया।

माइकेल के युद्ध ने यूनानियो मे स्वतन्त्रता के हेतु एक नई जागृति की लहर फैला दी। सारे टापुओ में एशियाई साम्राज्य के विरुद्ध बगावत फैल गई और धीरे-धीरे कुछ वर्षों मे पूरा यूनान स्वतन्त्र हो गया।

सेस्टस पर आक्रमण

स्वतन्त्रता की इस नई उपलब्धि से उत्साहित होकर सन् ४७८ ई० पू० में यूनानियो ने सेस्टस नामक बंदरगाह पर आक्रमण कर दिया। यह बंदरगाह हेलेसपोटन के बिलकुल सामने यूरोप का अन्तिम भू-स्थल था जिस पर सम्राट की सेना का कब्जा था। इस बदरगाह पर यूनानियो द्वारा कब्जा करने के साथ ही परशु साम्राज्य का यूरोपीय भूमि के अन्तिम स्थल पर आधिपत्य भी समाप्त हो गया।

सर पर्सी ने लिखा है कि एशिया की यह महान आर्य जाति यूरोप में बसी हुई अपनी दूर की सम्बन्धी जाति पर आक्रमण करके भी क्यो अपनी विजय को स्थायी न बना सकी ? इसका एक बडा कारण यह है कि यूनानियो को दुर्गम स्थानों पर भी लडने की आदत थी। दूसरे वे अपनी स्वय की जानी-पहचानी भूमि मे लड रहे थे, तीसरे यूनानियो के पास अस्त्र शस्त्र अधिक अच्छे और मारक थे। इसके विरुद्ध परशु लोगो को अपने निवास से बहुत दूर लडना पड रहा था। वे मैदान मे अपनी युद्ध-कला के विशेषज्ञ थे। ऊँचे और दुर्गम पहाडो पर परशु अश्वारोही अधिक लाभदायक सिद्ध न सके, यह हो सकता है कि स्वय यूनानी लेखको ने अपनी लडाइयो की साधारण घटनाओ को भी बहुत बढा-चढाकर लिखा हो और इस प्रकार अपने गौरव को बढाया हो। परन्तु इसमे सन्देह नही है कि परशु सेना भी अत्यन्त कुशल और अति संगठित थी। क्षयहर्ष ने इतनी दूर के प्रान्त जीत लिये थे कि उन्हें अधिक समय तक साधारण आधिपत्य मे रखा ही नही जा सकता था। क्षयहर्ष को मिली हुई इन पराजयो का बहुत अधिक मूल्याकन नही किया जाना चाहिए क्योकि अगले १५० वर्षों तक परशु साम्राज्य बराबर अक्षुण्ण रहा जबकि यूनानी टापू आपस मे लड़ते-झगडते ही रहे। कुरुष ने (Crossus) क्रीसस की विजय से एशिया माइनर की यूनानी बस्तियो पर आराम के साथ आधिपत्य किया। उसके उत्तराधिकारी द्रु सम्राट ने और आगे बढ़कर सीथियन युद्ध में विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य को उत्तरी

यूनान तक फैला दिया। उसके उत्तराधिकारी क्षयहर्ष ने और भी आगे बढ़कर न केवल उत्तरी यूनान को ही न निकल जाने दिया बल्कि और आगे बढ़कर मध्य यूनान और नीचे तक बढ़कर अपनी विजय पताका फहरा दी। उसने यूनान के सिरमौर एथेंस को दो बार ध्वस्त करने का गौरव प्राप्त किया। एशियाई आर्यों का यह प्रभुत्व सिकन्दर महान् की विजय तक बराबर कायम बना रहा।[1]

इस पूरे काल में सबसे अधिक विश्वसनीय इतिहासकार केवल हेरोडोटस रहा है किन्तु दुर्भाग्य से वह यूनानी था। अतएव जब कभी यूनान के साथ एशिया-संघर्ष का जिक्र आता है, उनकी राय सर्वथा संतुलित और न्याययुक्त नहीं कही जा सकती, तब भी चूंकि कोई अन्य सामग्री उपलब्ध नहीं है। उसी पर भरोसा करके चलना पड़ता है।

क्षयहर्ष जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। इन यूनानी युद्धों से निबट कर अपनी महान सेना के साथ सार्डीज में कुछ काल के लिए विश्राम करने रुक गया था। यहाँ पर उसने अपना विलासपूर्ण जीवन बिताना शुरू कर दिया। सम्राट का इस समय अपने भाई Masistes मातष्ठि की पत्नी की ओर अधिक आकर्षण हो गया था, किन्तु जब उस पत्नी ने सम्राट की इच्छाओं के सामने सिर झुकाना अस्वीकार कर दिया तो उसने उसकी युवा पुत्री से प्रेम करना शुरू कर दिया और अपनी इस दुष्ट मनोवृत्ति को छिपाने के लिए उसने उस लड़की का विवाह अपने पुत्र द्रु से कर दिया। सम्राट की इस नीच वृत्ति से चिढ़कर उसकी महारानी मैत्रेयी (Amestris) ने इस लड़की की माँ को पकड़वा लिया और उसको अत्यन्त यातनाएँ देकर उसके अंगविच्छेद कर डाले। इस बात से रुष्ट होकर सम्राट के भाई मातष्ठि ने अपनी पत्नी का बदला लेने को बाल्हीक प्रदेश में बगावत कर दी किन्तु वह बगावत शीघ्र ही दबा दी गई और बागियों को कठोर दंड दिया गया। इसके पश्चात सम्राट सूसा चला गया और वहाँ कितने वर्षों तक कैसे रहा इस विषय में इतिहास मौन है।

यूरी मैदान का युद्ध

सन् ४६६ ई० पू० में अर्थात पूर्व युद्ध के पश्चात १२ वर्ष तक यूनानी लोग धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। उन्हें अपनी शक्ति पर अब काफी विश्वास हो गया था इसलिये उन्होंने परशु की ताकत को यूरोप में सदैव के लिए तोड़ देने के लिये एक महासंघ की स्थापना की। इसमें कुछ प्रमुख यूनानी राज्य सम्मिलित हो गए। इस संघ का नाम 'देलो का संघ' रखा गया। क्योंकि (Delos) देलो राज्य इनमें प्रमुख था। इस संघ का मुखिया एक किमान (Kimon) नामक

1. Sir Percy, Page 210

सरदार बना जो मिल्टियाडीज का लड़का था। किमान ने पैम्फेलिया की खाड़ी में यूरी मैदान नामक स्थान पर सम्राट की सेना को हरा दिया और उनका बेड़ा नष्ट कर दिया। जिसमे फोनीसिया के ८० जहाज भी ध्वस्त कर दिये गए।

इस प्रकार बीस वर्ष तक सघर्षयुक्त साम्राज्य में क्षयहर्ष ने राज्य-शासन किया और अन्त में सन् ४६६ ई० पू० मे अपने अंगरक्षकों के सरदार आर्तभानु (Artabanus) के हाथों वह मारा गया।[1] होली रिट (Holy writ) मे इस सम्राट को अहसर्ष (Ahasuerus) कहा गया है। उसके अनुसार इस सम्राट ने शायद ही कोई अच्छा कार्य किया हो। किन्तु होली रिट का यह उल्लेख सत्य नहीं जान पड़ता।

---

१ किन्तु ह्यूअर्ट ने लिखा है कि सम्राट की मृत्यु एक आन्तरिक सघर्ष के कारण हुई। सन् ४६५ ई० में नपुसक सरदार अश्वमित्र अथवा मित्रदत्त जोकि महलो का सरक्षक था ने आर्तभानु के साथ षड्यन्त्र करके उसे मार डाला।

४

आर्तक्षयहर्ष

एक लेख के अनुसार आर्तभानु ने जोकि शाही नपुसकों का सरदार था, सम्राट की हत्या के जघन्य कृत्य के लिए सम्राट के बड़े लडके द्रु को दोषी ठहराया और उसे मृत्यु दंड दिलवाया जोकि शीघ्र ही कार्यान्वित कर दिया गया और अब उसने उसके छोटे पुत्र आर्तक्षयहर्ष (Artakhohayaroh[1]) जिसे यूनानियों ने artaxerxes कहा है को बहुत छोटी आयु में ही सिंहासन पर बैठा दिया तथा स्वयं राजकाज का संचालन करने लगा। यह नवयुवक सम्राट अपनी लम्बी बाँहो के लिए 'अजानबाहु' के नाम से प्रसिद्ध था।[2] लगभग सात महीनो तक आर्तभानु ने ही महान साम्राज्य का स्वयं संचालन किया। अब उसकी महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ़ गई कि अपने मालिक तथा उसके बड़े पुत्र की हत्या के बाद वह इस नवयुवक सम्राट की हत्या करने के लिए षड्यन्त्र रचने लगा। उसके इन मनसूबों का पता एक दूसरे सरदार भागदक्ष (Bhagathuksha)[3] जिसे यूनानियो ने (Megabızus) लिखा है को लग गया और उसने एक दिन इस हत्यारे का काम तमाम कर दिया।

विश्ताश्व का विद्रोह

सन् ४६२ ई० पू० में सम्राट के बड़े भाई ने जोकि वाल्हीक प्रदेश का क्षत्रप

---

१. इसे ह्यूअर्ट ने अर्तखशत्र लिखा है। देखिए, पृष्ठ २१३ सर पर्सी Artakhoayarsha (Artaxcrxes)।

२. भारतीय शास्त्रो के अनुसार जिसकी बड़ी भुजाएं होती हैं वह भाग्यशाली माना जाता है। सम्राट धृतराष्ट्र भी अजानबाहु था—

"दीर्घ बाहु महातेजा प्रशा चक्षुर्नराधिप।"

(महाभारत ८४-६७)

अत शुद्ध भारतीय परम्परा के अनुसार इस सम्राट को अजानबाहु कहा जाता था।

३. सर पर्सी, पृष्ठ २१४

था और जिसका नाम विश्ताश्व Visetaspa[1] (जिसे यूनानवालों ने Hystospes लिखा है) था अचानक विद्रोह कर दिया। नवयुवक सम्राट स्वयं ही इस विद्रोह को दबाने के लिए गया और लगातार दो लड़ाइयो में सम्राट की सेना ने विश्ताश्व को हरा दिया। उसके बाद फिर उसका पता नही चला कि उसका क्या हुआ ?

मिस्र का सप्तवर्षीय युद्ध और पराजय

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है। परशु लोगो की मिस्र-विजय से वहाँ के राज्यवंश का नाश नहीं हुआ था। किन्तु जब लीबिया के सामेलीकस (Psamelicus) के पुत्र इनरस (Inaros) द्वारा विद्रोह किया गया तो समस्त डेल्टा उसके साथ उठ खड़ा हुआ किन्तु नील नदी की घाटी पर जहाँ कि सम्राट की सेनाएँ ठहरी हुई थीं, किसी प्रकार का कोई विद्रोह नही हुआ। यह विद्रोह वहाँ के क्षत्रप रीजेंट अक्षमान (achaemens) द्वारा ही दबाया जा सकता था किन्तु एथेंसवासियो ने मिस्र का साथ देना शुरू कर दिया। इससे स्थिति पलट गई, क्योकि एथेंस इस समय उत्कर्ष की चरम सीमा पर था। अतः २०० बजड़ों का एक बेडा मिस्र को सहायता देने के लिए उसने भेज दिया। इन दोनो पक्षो की शक्तिशाली सेना से परशु लोगो की डेल्टा स्थित पेपरीमिस नामक स्थान पर मुठभेड हो गई जिसमे मिस्र का क्षत्रप अक्षमान (achaemenes) मारा गया और उसकी सेना भाग गई। एथेंसवालो की एक दूसरी सेना ने फोनिशियन जहाजी बेड़े पर आक्रमण करके उसके पचास से अधिक जहाजो को डुबो दिया, इससे फोनिशियन सेना भी भाग गई। अब इन लगातार सफलताओं से प्रोत्साहित होकर एथेंसवालो ने मेम्फिस नामक स्थान पर धावा बोल दिया और शीघ्र ही आस-पास के मैदानो को ले लिया। किन्तु परशु लोगो ने किले पर बराबर अपना कब्जा बनाए रखा। इस किले को बचाने तथा मिस्र मे अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन. जमाने के लिए सम्राट की ओर से ३ लाख व्यक्तियो की एक विशाल सेना ने जिसमे फोनीशिया के ३०० जहाज भी सम्मिलित थे; प्रसिद्ध

---

१. यह भी शुद्ध आर्य नाम है। संस्कृत साहित्य में ऐसे अनेक नाम आये हैं जिनके अंत में 'अश्व' शब्दो का प्रयोग हुआ है।

महाभारत के सभव पर्व के ६५वें अध्याय मे जिन राजाओ के नाम गिनाये गए हैं उनमें अश्व, अश्वपति, अश्वशिरा, अश्वशंकु आदि नामों का उल्लेख है।

इसी प्रकार हरिवंश के भविष्य पर्व के ७२वें अध्याय में असुरों के जो नाम गिनाये हैं उनमें अश्वशिरा, अश्व, अश्वपति आदि नामो का उल्लेख है। इससे विदित होता है कि आर्यों की इस ईरान शाखा को भारतीय असुरो मे गिनते थे।

धूर मागदस के नेतृत्व में मिस्र की ओर कूँच किया। इस महान सेना को देखते ही एथेंस और मिस्र की संयुक्त सेना के छक्के छूट गए, उन्होंने तुरन्त ही मेम्फिस का घेरा उठा लिया। किन्तु लड़ाई टल न सकी। अन्त में जो खूंखार लड़ाई लड़ी गई उसमें सहज ही में मिस्र देश की भारी पराजय हुई। यूनान का नेता इनरास घायल अवस्था में जीवित पकड़ लिया गया। समस्त यूनानी सेना मोर्चे से भागकर प्रासमिस द्वीप की तरफ भाग गई। इस प्रकार गत १५ वर्षों से चली आ रही उसकी अजेयता सम्राट की सेना के एक धक्के में ही चूर-चूर हो गई।

यूनान की पराजय

एक दिन जब परशु सेना नील नदी की एक उपधारा को मोड़ने में लगी थी, कुछ जांबाज यूनानियों ने एशियाई जहाजी बेड़े को सूना पाकर उसमें आग लगा दी। इस घटना पर से सम्राट की सेना में क्रोधाग्नि की लहर दौड़ गई और यत्र-तत्र-सर्वत्र यूनानियों का नरसंहार किया जाने लगा। बची-बचाई यूनानी सेना के ६ सहस्त्र सैनिकों ने सम्राट से संधि की प्रार्थना की जिसे स्वीकार किया जाकर उनको सूसा जाने का आदेश दिया गया। इसी बीच फोनीशियन लोगों ने अनेकानेक यूनानी जहाजों को डुबाकर अपनी भूतपूर्व असफलताओं का भारी बदला ले लिया।

यूनान की पराजय से समस्त विद्रोह ठंडा पड गया। किन्तु कुछ दिनों के बाद तक कुछ छुटपुट विद्रोहियों ने अमासी के घराने के एक सरदार अमनरुथ (Amonrut) के नेतृत्व में गुरिला छापामार लड़ाई जारी रखी। इस युद्ध से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई कि यूनानवाले चाहे कितनी ही बड़ी शक्ति के साथ रणक्षेत्र में उतरें, परन्तु परशु की विशाल सेना को पराजित करने में वे कभी भी समर्थ नहीं हो सकते थे।

मिस्र पर विजय प्राप्त करने के बाद अब परशु लोगों ने साइप्रस की ओर अपना ध्यान दिया।

गेलियस की संधि (४४९ ई० पू०)

इस समय फिर यूनानवासियों ने साइप्रस की सहायता करने का बीड़ा उठाया। हार पर हार खाने के बाद भी यूनानी द्वीपसमूह उत्साह का केन्द्र-स्थल बन रहा था। अतः स्पार्टा के साथ पचवर्षीय संधि करके एथेन्सवालों ने २०० बजडों की एक जल सेना प्रसिद्ध सेनापति किमान के नेतृत्व में साइप्रस की सहायता को भेजी, किन्तु लड़ाई के निर्णय के पूर्व ही यह सेनापति मर गया। इस पर यह बेड़ा जिसने साइप्रस के कीटियन स्थान पर घेरा डाल रखा था, रसद की भयंकर तंगी और सुविधाओं के अभाव में घेरा उठाने को विवश हो

गया। भागते-भागते भी यूनानियो ने फोनिशियन जहाज के लगभग १०० बजडों को डुबा दिया।

भागते समय की इस घटना ने यूनानियो को एक बड़ा लाभ पहुँचाया। यूनानी लोगो ने सम्राट से जो संधि का प्रस्ताव रखा उसे सम्राट आर्तक्षयहूर्ष ने उदारता से स्वीकार कर लिया। इस संधि के अनुसार दैलो संघ के सदस्य राज्यो की स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया गया तथा यूनानी समुद्रो मे वाणिज्य पोतों को ही भेजने की व्यवस्था मान ली गई। यूनानियो ने इसके बदले अन्य यूनानी टापुओं को स्वतन्त्र करने का जो अभियान छेड रखा था उसे वापस ले लिया। साथ ही साइप्रस पर से उसने अपने सारे अधिकारो को हटा लिया और साइप्रस को सम्राट के आधिपत्य मे रखा जाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार यूनानियों ने बुद्धिमानी से अटीका को अपने प्रभाव-क्षेत्र में रहने देने की सम्राट से गारटी ले ली।

परशु साम्राज्य की तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान भागदक्ष के चरित्र से ज्ञात हो सकता है। इस सेनापति ने भागती हुई यूनानी फौजो को मिस्र में अभय दान देकर उनके सेनापति अनरास के प्राणो की रक्षा करने का वायदा किया था। किन्तु इसमे सम्राज्ञी मैत्रेयी की स्वीकारोक्ति को वह अभी तक प्राप्त नहीं कर सका था। चूंकि सम्राट की सेना के महान् क्षत्रप जो कि मिस्र मे नियुक्त था और वही पर इस सेनापति सक्षमान (Achaemens) की मृत्यु इसी इनरास के युद्ध भड़काने के कारण हुई थी। अत. सम्राज्ञी ने उसका बदला इनरास से लेना उचित समझा, फलस्वरूप उसे काफी यातनाएँ दी गयी। अंत मे ५० साथियों सहित उसे प्राणदंड दिया गया। अपने दिये हुए अभयदान की इस प्रकार अवहेलना देखकर भागदक्ष क्रोधित हो गया और उसने सम्राट के खिलाफ विद्रोह पैदा कर दिया। उसके विरुद्ध लडती हुई दो शाही सेनाओ को उसने पराजित कर दिया। किन्तु अन्त मे उसे क्षमा कर दिया गया और उसे दरबार में आने की आज्ञा मिल गई। एक दिन जब सम्राट शिकार खेलने गया तो दुर्भाग्य से भागदक्ष उसके साथ था और शिकार के सामने अचानक भागदक्ष के आ जाने से शिकार मे बाधा उत्पन्न कर देने के आरोप में उसे मृत्यु दण्ड की आज्ञा दी गई। किन्तु बाद मे कुछ बिचौले सरदारों के अनुनय-विनय पर यह प्राण दंड की सजा आजीवन कारावास मे बदल दी गयी और उसे परशु खाड़ी के किनारे पर निर्वासित कर दिया गया। पाँच वर्ष के कारावास के बाद उसे यह घोषित करके कि उसे कोढ़ हो गया है, छोड दिया गया। अब वह पुन राजधानी लौटा। मार्ग मे उसे किसी ने नही रोका। अन्त मे राजधानी आने पर सम्राट ने उसे क्षमा कर दिया और वह अपनी वृद्धावस्था तक सम्राट का वफादार सलाहकार बना रहा।

आर्तक्षयहर्ष, अपनी अयोग्यता और राजमाता के भयंकर षड्यंत्रों के बाद भी कई वर्ष तक शान्तिपूर्वक राज्य करता रहा। अंत मे वह सन् ४२५ ई० पू० में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र क्षयहर्ष द्वितीय सिंहासन पर बैठा। परन्तु एक दिन शराब के नशे मे वह अपने भाई सुखध्यान (Soghdianos) द्वारा मार डाला गया। किन्तु इस सुखध्यान को अपनी करनी की सजा भी शीघ्र ही मिल गई। क्योकि उस पर स्वयं ही आर्तक्षयहर्ष के एक दूसरे पुत्र (Ochues)[1] द्वारा आक्रमण कर दिया गया। यह सम्राट उच्च, प्रियसती (parysatis) नाम की महिला का पति था जोकि आर्तक्षयहर्ष की पुत्री थी। शीघ्र ही परशु सरदार उसके झंडे के नीचे एकत्रित हो गये और सबने मिलकर सुखध्यान को पकडकर आग में ज़िंदा जला डालने की सजा दे दी।

१. हू्अर्ट ने इसे (Vahuk) वाहुक लिखा है। वाहुक शुद्ध संस्कृत नाम?

५

वाहुक या द्रु द्वितीय

अपने भाई के पतन के बाद वाहुक (Ochus) ने राजसत्ता की बागडोर सन् ४२४ ई० पू० सँभाली। इसने अपना नाम द्रु द्वितीय (Darius) रखा। इसे इतिहास मे द्रु (Nothus) भी कहा जाता है, क्योंकि यह रखैल माता का पुत्र था। इस सम्राट के प्रमुख सलाहकार तीन नपुसक और उसकी पत्नी प्रियसती थी। अत स्थान-स्थान पर विद्रोह होना स्वभाविक थे। पहले विद्रोह उसके भाई आर्यसिद्ध (Arsites) ने किया। इस विद्रोह मे भागदक्ष के पुत्र आर्तभिष (Artyphius) ने भी उसका साथ दिया। यूनानी वेतनधारियों ने भी उसका साथ दिया। अतः पहले-पहल की दो लडाइयो मे उसने सफलता प्राप्त की। किन्तु बाद मे परशु सेनाओ ने कुछ विद्रोहियों को स्वर्ण का लोभ-लालच देकर विद्रोहियो से फोडकर अपनी ओर मिला लिया। किन्तु बाद मे अपने द्वारा दिये गये वचनो को तोडकर उन्हे सुखध्यान की भाँति आग मे जिन्दा जला दिया गया।

दूसरा विद्रोह लीडिया के क्षत्रप विश्वघन (Pissuthnes) द्वारा उठाया गया। यहाँ पर भी उसके यूनानी साथी स्वर्ण-लोभ मे सम्राट की तरफ भाग गये। अत मे उसकी भी वही दशा हुई जो उसके पहले के विद्रोहियों की हुई थी।

इस प्रकार लीडिया की खाली क्षत्रप की जगह पर एक तिष्यपर्ण (Tissaphernes) नाम के व्यक्ति की नियुक्ति हुई। जिसने बडी बुद्धिमानी से यूनानियो को आपस मे लड़ाकर वहाँ की राजनीति पर अपना भारी प्रभाव जमा लिया।

तिष्यपर्ण की स्पार्टा के साथ सधि (४१२ ई० पू०)

जैसी कि पहले कार्थेज के निवासियों ने सिसली पर आक्रमण करके अधिक क्षति उठायी थी। उसी भाँति एथेंसवालो ने भी सन् ४१२ ई० पू० मे सिसली पर आक्रमण करके अपनी प्रतिष्ठा की हानि उठाई। जब एथेंसवालो ने सिसली पर आक्रमण किया तो इस अवसर का लाभ उठा चतुर तिष्यपर्ण ने स्पार्टा से संधि कर

के दोनों ने संयुक्तरूप से एथेन्स के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस प्रकार देलो का संघ अपने आप टूट गया और भविष्य मे इस संघ के राज्य आपस में एक-दूसरे को नीचा दिखाने की होड मे सम्राट से अलग-अलग संधि करने लगे। तिष्यपर्ण की यह चतुरता थी कि वह पूर्णरूप से किसी राज्य को भी मिटने नही देता था। अपने प्रभाव और धाक को बैठाये रखने के लिए वह बराबर शक्ति का संतुलन रखता रहता था। इस प्रकार आर्यों के हाथो ऐथेंस तीसरी बार भी पराजित हो गया।

युग-प्रभाव

इस युग के पश्चात परशु सम्राट की बलशाली सेना-शक्ति का ह्रास होने लगा। राजनीतिक चतुरता, सूझ-बूझ और राजनीति ने सेना की ऊँची महत्ता का स्थान ले लिया। दूसरे, राज सेना में 'अब बडे-बडे पदों' पर यूनानियों को भी स्थान मिलने लगा जिससे आगे चलकर बड़े-बडे गंभीर परिणाम उत्पन्न हो गये।

इस युग में यूनान निवासियो के चरित्र का भी पतन शुरू हो गया था। उनमे सामूहिक सुरक्षा की भावना का ह्रास हो चुका था। परशु लोगों की चतुराई से वे आपस मे कलह, ईर्ष्या और शत्रु-भाव रखने लगे थे। देलोस का संगठन पूरी तरह से बिखर चुका था। वीरता के स्थान पर अब यूनानवासियो मे लोभ और स्वार्थ की वृत्ति ने अपना घर कर लिया था। उसके वीर सम्राट की सेनाओ मे किराये से काम करने लगे थे। वे स्वर्ण-लाभ से किसी भी पक्ष मे मिल जाने को तैयार रहते थे। आर्यसिद्ध और लीडिया के विद्रोहो मे केवल सोने के लालच पर ही यूनानियो ने अपने चरित्र को कलंकित कर दिया। इसी प्रकार आपसी कलह और स्वर्ण-लालच ने महान् एथेन्स को भी धराशायी कर दिया।

इस युग मे किस प्रकार सम्राट कुरुष और द्रु के वशावलंबियो का अध.पतन हो गया था उसका उदाहरण भी कम निकृष्ट नही है। इस द्रु द्वितीय के समय मे घटित (Terituchmes) त्रितुष्म की कथा से विदित होता है। यह व्यक्ति बड़े सम्राट द्रु द्वितीय का जामातृ था तथा अपनी सौतेली बहन रक्षणा (Raxana) पर आसक्त हो गया था। उसके साथ मिलकर उसने अपने श्वसुर को मार डालने का षड्यन्त्र रचा ताकि वह अपनी पत्नी मैत्रेयी से छुटकारा पा सके। उस निस्सहाय स्त्री को एक बोरे मे बद कर सब विद्रोहियो ने अपनी-अपनी तलवारों से उसे घायल कर मार डालने की सोची। यह सब इस उद्देश्य से किया गया कि कोई विद्रोही यह न कह सके कि इस काण्ड मे उसका हाथ नहीं है। किन्तु यह षड्यंत्र विफल हो गया और त्रितुष्म (Terituchmes) मारा गया। साम्राज्ञी

प्रियसती को अब जुल्म करने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया। सर्वप्रथम उसके कोप का शिकार रक्षणा हुई जो टुकड़े-टुकड़े करके काटकर फेंक दी गई। फिर उसके बाद त्रितुष्म की माँ, बहनें आदि सभी सम्बन्धी रिश्तेदार जिन्दा जला दिये गये।

६

आर्तक्षयहर्ष द्वितीय तथा युवराज कुरुष द्वितीय की बगावत

सम्राट द्रु द्वितीय के द्वितीय पुत्र का नाम कुरुष द्वितीय था। इसका (द्रु द्वितीय) बडा पुत्र आर्तक्षयहर्ष द्वितीय था, जो आगे चलकर परशु के सिंहासन पर बैठा। इतिहासकारो व लेखको ने इस युवराज कुरुष द्वितीय की बडी प्रशंसा की है। एग्जोनोफोन नामक यूनानी लेखक ने लिखा है कि "परशु के समस्त सेनानायको मे जिन्होने प्राचीन कुरुष के बाद जन्म लिया है यह सबसे अधिक योग्य, चतुर और अत्यन्त दयावान व्यक्ति था तथा न्यायदान में सर्वश्रेष्ठ था।"[1]

जिस समय द्रु सम्राट (द्वितीय) हिरण्यकेशिया में क्षत्रप था तब आर्तक्षयहर्ष पैदा हुआ था किन्तु जब आर्तक्षयहर्ष सम्राट हो गया तो उस युग के वैभव और ऐश्वर्य-युक्त युग मे इस कुरुष द्वितीय ने जन्म लिया था। इसके अतिरिक्त इसकी माता का इस पर सदैव भारी सरक्षण रहता था। उसी के प्रयत्नो के फलस्वरूप उसे अपने पिता के शासनकाल मे ही ऐशिया माइनर की क्षत्रपता मिल गई जिसका कि एक प्रकार से उसने स्वतंत्र राजा की भाँति ही उपभोग किया। उसकी माता उसे सदैव हर प्रकार की सम्भव सहायता देने को तत्पर रहती थी।

एशिया माइनकर की क्षत्रपता के दिनों मे ही कुरुष द्वितीय ने यह भाँप लिया था कि यूनान मे सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य स्पार्टा का है अत. उसने उनका सहयोग लेना ही उचित समझा और उनके नेता एग्रोसपोटामी को बहुत-सा धन देकर अपनी ओर मिला लिया और उसके बाद फिर बगावत को तैयार यूनानियो को सन् ४०५ ई० पू० में पूरी तरह हरा दिया।

कुरुष के इस स्वतन्त्र तथा स्वच्छद विचारो से तिष्यपर्ण की ख्याति को भारी आघात लगा। उसने सम्राट को लिख भेजा कि कुरुष द्वितीय का आचरण ठीक नही। इस पर सम्राट् की ओर से कुरुष को सूसा मे बुलाया गया। किन्तु

1. Xenophon on cyrus the younger

संयोग से जिस समय वह वहाँ पहुँचा उन दिनों में ही सम्राट् द्रु द्वितीय का देहावसान हो गया। यह घटना सन् ४०४ ई० पूर्व की है।

आर्तक्षयहर्ष द्वितीय

द्रु द्वितीय की मृत्यु के बाद सन् ४०४ ई० पू० में उसका एक पुत्र सिंहासन पर बैठा जो कि आर्तक्षयहर्ष द्वितीय के नाम से विख्यात है। उसका राज्याभिषेक पसरगढ (Pasargadae) में हुआ किन्तु कुरुष प्रारम्भ से ही उसे मार डालने के यत्न मे था और इस हेतु उसने भरे दरबार मे राज्योत्सव के समय ही उसे समाप्त करने का निश्चय किया किन्तु किसी प्रकार तिष्यपर्ण को इसका सुराग मिल गया और षड्यन्त्र का भंडाफोड हो गया। सम्राट ने अत्यंत कुपित हो उसके तत्काल वध की आज्ञा दी किन्तु राजमाता ने बीच मे पडकर कुरुष द्वितीय को अपनी बाँहो मे लपेटकर प्राणदण्ड से बचा लिया। कुछ दिनों की वार्ता-परिवार्ताओ के पश्चात् राजमाता ने उसका अपराध क्षमा करवा लिया। सम्राट ने एशियायी राजाओं की भाँति उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर दिया और उसे एशिया माइनर जाने का आदेश दे दिया। जैसी कि सम्भावना थी एशिया माइनर पहुँचकर उसने सिंहासन प्राप्त करने के लिए युद्ध की सभी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी।

ऐसा विदित होता है कि इस कुरुष द्वितीय की सेना मे बहुत से यूनानियो के प्रवेश तथा उनको अनेक बडे-बडे प्रतिष्ठित पदो पर आसीन कर दिए जाने के कारण ही यूनानियो ने इस क्षत्रप की भूरि-भूरि प्रशसा की है। इसके अतिरिक्त इस प्रशंसा किये जाने का दूसरा कारण यह भी है कि इसने भडैती यूनानी सैनिकों को काफी धन-दौलत देकर अपनी ओर मिलाये रखा था।

कुरुष द्वितीय का सेनापति एक स्पार्टन योद्धा क्लीअरचस था। उसने शीघ्र ही भाडे की यूनानी सेना को खडा कर लिया। कुरुष ने स्वय भी स्पार्टा से सहायता माँगी किन्तु उसने सीधी सहायता तो नही दी, किन्तु ४०० व्यक्तियो को उसके अधीन नौकरी करने के लिए भेज दिया। इस प्रकार १३ हज़ार यूनानियो और एक लाख एशियाई सैनिको के साथ वह अपने बड़े भाई से युद्ध करने के लिये आगे बढा।

आगे बढते समय कुरुष द्वितीय ने इस बात की बहुत ही सावधानी बरती कि उसकी युद्ध-यात्रा का पता जनसाधारण को न चल जाये। इसीलिये वह चतुरता से अपने उद्देश्य को छिपाता हुआ बेबीलोन की ओर बढा। प्रकट रूप मे उसने यह ज़ाहिर किया कि वह पिसीडियन्स नामक सरदार (Pisidians) को दबाने जा रहा है। वह फ्रीगिया और मीसिया होते हुए सैलीशिया पहुँचा। यद्यपि वहाँ के शासक सेनेसिस की पत्नी एपेक्सा ने उसे बहुमूल्य साधनों, रत्नों

और धन से उसकी सहायता की। परन्तु तो भी उसने गैलीशिया के मशहूर द्वारों पर चारों ओर से घेरा डाल लिया। इतिहासकार एक्जोनेफन के अनुसार यह द्वार अजेय माने जाते थे, किन्तु कुरुष ने जब देखा कि दुर्ग की पहाड़ियों पर पहले से ही किसी ने कब्जा कर रखा है तो उसने सिनीसिस से उत्तर माँगा। सिनीसिस ने बहाना बनाकर उत्तर दिया कि कुरुष के जनरल मेनक ने ही कब्जा कर रखा है। इस पर संतुष्ट होकर बिना उसको देखे कुरुष आगे की ओर बढ़ गया।

यहाँ पर कुरुष द्वितीय को अपने भड़ैती यूनानी सैनिकों के कारण बहुत अधिक कठिनाई हुई। ये सैनिक किसी भाँति भी आगे बढ़ने में अनिच्छुक थे। उनके विद्रोह का रूप इतना विशाल हो गया कि उन्होंने अपने सेनापति क्लीअरचस पर भी पथराव कर दिया। कुरुष द्वितीय ने यह देखकर यह बहाना लिया कि उसके युद्ध का उद्देश्य आगे बढ़ना नहीं अपितु सीरिया के क्षत्रप एबरोकोमस को हराने का है जिससे कि उसकी सेना को खतरा उत्पन्न हो गया है। अन्त में उनकी वेतन सबन्धी माँगों को पूरा करके धन-दौलत आदि देकर कुरुष द्वितीय ने उनको आगे बढ़ाया। एबरोकोमस ने कोई प्रतिरोध नहीं किया और कुरुष द्वितीय की सेना फरात नदी की सीमा पर पहुँच गई। पीछे रही हुई नौकाओं को अलबत्ता एबरोकोमस ने जलाकर खाक कर दिया। फरात नदी की सीमा पर पहुँचकर यूनानी सेना का संदेह अब पूरी तरह सत्य सिद्ध हो गया, क्योंकि अब वे सम्राट की सेना के सामने पहुँच चुकी थीं। वास्तव मे उनकी स्थिति बड़ी असमंजस मे हो गई थी। अतः उन्होने जब तक कि उनको फिर बढ़े हुए वेतन तथा अधिक धन नहीं मिल गया वे लड़ने को तैयार नहीं हुए। कुरुष ने चूत के कलात्मक खिलाड़ी की भाँति युद्ध जीतने के दाँव पर उनकी समस्त माँगें स्वीकार कर लीं। इस प्रकार निश्चिन्त होकर कुरुष ने अपनी सेनाओं को शीघ्र ही आगे बढ़कर मोर्चाबंदी के लिये आदेश दिया। उसकी सेना ने प्रतिदिन बीस-बीस मील चलकर सम्राट की सेनाओं को घेरने का उपक्रम बना लिया।

चुनक्शा में आर्यों का गृह-युद्ध (४०१ ई० पूर्व)

अन्त मे बेबीलोन प्रान्त मे कुरुष की सेना को शाही सेना का एक दस्ता मिला। उससे उसका कोई युद्ध नहीं हुआ। अब तक उसकी सेना का प्रतिरोध न होने के कारण उसने यह समझ लिया था कि शाही सेना बेबीलोन को छोड़कर चली गई है। ऐसी दशा में उसका युद्ध मार्च बराबर जारी रहा। एक दिन एक घुड़सवार ने अकस्मात ही उसको आकर सूचना दी कि आगे विशाल शाही सेना युद्ध के लिये तत्पर खड़ी है। यह खबर सुनकर उसके होश उड़ गये और शीघ्रातिशीघ्र उसने अपनी सेनाओं को युद्ध में जूझने का आह्वान किया। कुरुष ने स्वयं ऐशियाई देशों की भाँति अपनी सेना के तीन भाग किये। एक भाग को

वाम पार्श्व मे, दूसरे को दक्षिण पार्श्व में करके वह स्वयं बीच में ६०० शूरमाओं को जो युद्ध मे अधिक ख्याति पा चुके थे लेकर मोर्चे पर जम गया। कुरुष के पहले हमले मे ही सम्राट की सेना के रथो के सीथियन सारथी भाग खड़े हुए और कुरुष को अप्रत्याशित विजय सहज में ही मिल गयी।

अब कुरुष ने सम्राट की वाम सेना को भी भागते हुए देखा, किन्तु चूँकि वह एक चतुर सेनापति भी था अत. उसका ख्याल यह था कि जब तक मध्य भाग मे स्थित सम्राट को न हराया जायेगा तब तक युद्ध का परिणाम कुछ भी नहीं हो सकता। यह सोचकर उसने अपने सेनानायकों को मध्य भाग पर आक्रमण करने का आदेश देकर वह स्वयं ही उस ओर दौड़ पडा। अब दोनों भाई एक-दूसरे के बिल्कुल समीप थे। कुरुष ने शीघ्र ही आर्तक्षयहर्ष पर एक नेजा फेंक कर मारा जो सम्राट के हृदय के कवच को तोड़ता हुआ उसे घोड़े से नीचे गिराने मे समर्थ हो गया। सम्राट लहूलुहान रणक्षेत्र मे नीचे पडा था। कुरुष के सामने अर्ध-ससार के स्वामी होने का स्वप्न आँखो के सामने घूम गया। उसने पूरी तरह समझ लिया कि अब उसके सम्राट बनने मे कोई कसर नही रही है कि इतने मे अचानक एक बल्लम उसकी आँख पर आकर लगा; जिससे आहत होकर वह घोडे से गिर गया और तत्काल मर गया। सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय ने जो कि घायल ही हुआ था उठकर जब कुरुष को मरा हुआ देखा तो उसने कुरुष के एशियाई साथियो पर हमला बोल दिया जो शीघ्र ही उत्तर की ओर तितर-बितर होकर भाग गये।

किन्तु अब इस सकटकाल मे यूनानी सेना के धैर्य की परीक्षा थी उनका घर दूर था, उनका नेता मारा जा चुका था और वह लड़ाई मे चारो ओर से घिरे हुए थे। इस पर भी उन्होने धैर्य नही छोडा। उन्होंने सम्राट के सेनापति तिष्यपर्ण के प्रबल आक्रमण को भी शक्ति के साथ विफल कर दिया। परन्तु इसी बीच मे उनका नेता क्लीयरचस (clearchus) इस भय से कि कहीं उनके तम्बुओ को एशियाई न लट लें तबुओ की ओर भागा। अपने नेता के पैर उखडते देखकर यूनानी सेना ने मैदान छोड दिया और वह इधर-उधर भाग गई।

इस युद्ध से केवल एक पाठ यूनानियों को अवश्य मिल गया—वह यह कि उन्होने प्रथम बार सम्राट स्वयं के देश मे उसके सैनिको के साथ युद्ध करके उनकी कमजोरियो और युद्ध की चाल को परख लिया। इसका दूरदेशी परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर सिकदर ने इन शिक्षाओं से लाभ उठाकर महान परशु साम्राज्य की ईंट-से ईंट बजाकर उसे ध्यस्त कर दिया।

एशियाई फौजो के लिए और विशेषतः आर्य साम्राज्य के लिए कुरुष द्वितीय की मृत्यु एक बडी दुर्घटना सिद्ध हुई। क्योंकि साम्राज्य को उससे बडी-बडी आशाएँ थी। मझधार मे ही उसकी मृत्यु ने परशु सेनाओं को हतबुद्धि कर दिया।

उसकी सेनाओं तथा प्रजा को पूरा-पूरा भरोसा था कि इस कुरुष के काल में परशु का प्राचीन वैभव फिर प्राप्त हो जायेगा।

द्वितीय कुरुष की मृत्यु के बाद ही परशु सेना के पैर उखड़ गये। इस समय उसके साथ की यूनानी सेना अपने देश से बहुत दूर बढ़कर परशु साम्राज्य के लगभग मध्य में पहुँच चुकी थी। परन्तु तब भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। इस गंभीर परिस्थिति में यूनानी नेता क्लीयरचस ने परशु सम्राट के यूनानी साथी आर्ययूस को सिंहासन का लोभ देकर अपनी ओर मिलाने का यत्न किया। किंतु आर्ययूस (Ariaeues) टस से मस न हुआ और उसने कहकर भेजा कि यदि यह संभव भी हुआ तो भी परशु सरदार इस देन को स्वीकार नहीं करेंगे।

सायंकाल के समय तिष्यपर्ण के सेनापतियों ने यूनानियों से जाकर कहा कि यदि वे हथियार डालकर सम्राट से संधि की भिक्षा माँगें तो उस पर विचार किया जा सकता है। इस तिरस्कार पर यूनानियों को अत्यन्त क्रोध आया परन्तु वे कर ही क्या सकते थे। अन्त में रात-भर तक विचार-विमर्श करने के बाद वे इस परिणाम पर पहुंचे कि अब वापस लौटना ही श्रेयस्कर होगा। यह निश्चय करने के बाद उन्होंने आर्ययूस से संपर्क साधा। आर्ययूस स्वयं कम सेना के साथ था अतः वह यूनानियों को हरा नहीं सकता था किन्तु उसने उनको यह सलाह अवश्य दी कि सम्राट की बहुसंख्यक सेना की उपस्थिति मे तथा यूनानियो मे खाद्य की कमी के कारण उनका पुराने रास्ते से पुनः लौटना असंभव होगा। हाँ वह उत्तरी मार्ग से यदि निकल भागें तो कुछ दिनो के बाद ही वह सम्राट की सेना की पहुंच से दूर हो जायेंगे।

अब आर्ययूस व क्लीअरचस दोनो की सयुक्त सेनाएँ वापस लौटीं, किन्तु इस मार्ग पर भी उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होने देखा कि सम्राट की विशाल सेनाएँ आगे रणक्षेत्र मे खडी हुई हैं। रात भर की थकान से व इस नई विपत्ति से यूनानियो के होश उड गए। अन्त मे उन्होने अब तिष्यपर्ण से संधि की प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गई और उनको निर्बाध रूप से घर जाने की छुट्टी मिल गई। इस समय आर्ययूस फिर रंग बदलकर सम्राट की सेना का सहभागी हो गया। इस प्रकार सम्राट की सेना के नेतृत्व मे यूनानियो की सेना टिगरिस नदी तक आ गई जहाँ उन्होने उसे ३७ नावो का पुल बनाकर पार किया।

यह सेना ओपीस नामक स्थान से बढती हुई जब 'जाव' (Zab) नामक स्थान पर पहुँची तो सम्राट के सेनापति तिष्यपर्ण और इस सेना मे फिर मतभेद हो गया। फलस्वरूप तिष्यपर्ण ने कुछ यूनानी सरदारो को क्लीअरचस सहित पकड कर गिरफ्तार कर लिया। शेष यूनानी सेना चारों तरफ शाही सेना से घिरी हुई अत्यन्त संकटपूर्ण अवस्था मे पड़ गई। इस निराशा-भरी घडी मे उन्होंने स्पार्टा के एक्जनोफेन नामक सरदार को अपना सेनापति चुना और विपत्तियो के

समुद्र में थपेड़े खाती हुई नाव की भाँति आगे बढ़ी। इस सेना को कुर्दिस्तान तथा आर्मीनिया के घने बर्फीले पहाड़ो और जंगलो मे भारी मुसीबतो का सामना करना पड़ा। ठिठुरती हुई ठंड में इस सेना ने वान (Van) की खाड़ी से पश्चिम की ओर चलते हुए अन्त मे वर्तमान एशिया माइनर के त्रैबीजोन्द (Trebizond) जो उस समय त्रिपजूस (Trapezus) कहलाता था, नामक स्थान पर पहुँचकर संतोष की साँस ली, जो उनके घर से लगे हुए समुद्र की दूसरी ओर स्थित था।

देशद्रोही कुरुष द्वितीय की मृत्यु से परशु साम्राज्य और यूनान की शत्रुता और बढ़ गई। परशु साम्राज्य के स्वर्ण और धन से यूनानियों के चरित्र का काफी पतन हो चुका था। वे यद्यपि एक स्थान पर लड़ते थे तथापि दूसरे स्थान पर यूनानी सम्राट की ओर जाकर मिल जाते थे। उपरोक्त दस सहस्त्र यूनानियों ने यद्यपि कुछ समय तक यूनान की रक्षा अवश्य की परन्तु स्वयं सम्राट के दो क्षत्रपो तिष्यपर्ण और पर्णबाहु (Pharnabapus) मे आपस मे कोई कम द्वेष नहीं था। दोनों एक-दूसरे को नीचा दिखाने को कमर कसे बैठे थे। कुछ समय तक यूनानियों ने इस परिस्थिति का भी लाभ उठाया और जब एक यूनानी सरदार एजेसीलस (Agesilaus) ने उस पेक्टोलस को हराया जिसके कुकृत्य के कारण तिष्यपर्ण को मार डाला गया था, तो सम्राट के धन के प्रभाव से संगठित हुई चार नगरो (थीब्स, अर्गस, कोरिन्थ और एथेन्स), की एक बृहत् परिषद् ने एजेसीलस को शीघ्र ही लड़ाई के मैदान से अनेको दोष लगाकर घर बुला लिया।

एथेंस तो एक प्रकार से सम्राट का अतरंग मित्र और अनुगामी ही बन चुका था। यहाँ के एक सेनापति फेनन ने जोकि एगोस पोटेमी के यूनानी युद्ध में हार कर साइप्रस भाग चुका था, अब पर्णबाहु के अधीन सम्राट की सेना में नौकरी कर ली। इस साहसी सेनापति ने सम्राट के घोर शत्रु स्पार्टा राज्य को सन् ३९४ ई० पू० मे (Cnidus) क्नीदस के युद्ध में भयंकर रूप से पराजित कर दिया और एक बार फिर एथेंस को समुद्र का मालिक बना दिया। इस लड़ाई की सफलता से पर्णबाहु तथा इस सेनापति ने पेलीपोनीसिस का सम्पूर्ण किनारा ध्वस्त कर डाला किन्तु एथेंस नगर की सुरक्षा के लिये बड़ी-बड़ी संगीन दीवारें उठाकर उसे एक मजबूत गढ के रूप मे परिणत कर दिया। एथेंस के घोर शत्रु थीब्स ने भी परशु साम्राज्य के डर से एथेंस के पुनर्निर्माण मे पूरी-पूरी सहायता की।

परशु साम्राज्य का शत्रु अकेला स्पार्टा रह गया था। परन्तु अब उसने भी हथियार डाल दिये। पेलीपोनीसिस के किनारो पर सम्राट की सेना का निर्बाध प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। अभी तक किसी परशु सम्राट की सेना ने इस समुद्र पर आधिपत्य नही कर पाया था, किन्तु अब किनारे के ध्वस्त होने से समुद्र पर परशु साम्राज्य का पूरा-पूरा आधिपत्य हो गया। अतः अब स्पार्टा की स्वतन्त्रता

की रक्षा होना प्रायः असम्भव हो गया। इन परिस्थितियों में स्पार्टा ने सम्राट से संधि की प्रार्थना की।

तिष्यपर्ण की चतुरता, कूटनीति और साहस

पश्चिमी इतिहासकारों ने यद्यपि यूनानियों की संगठन-शक्ति, उनकी कुशलता, कूटनीतिज्ञता और लगातार संघर्ष करने की अत्यधिक सराहना की है। परन्तु यह भी निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि एशियाई आर्य भी उनसे किसी प्रकार कम नहीं थे। लीडिया का क्षत्रप तिष्यपर्ण जोकि परशु जाति के आर्यों का महान नेता था अपनी चतुरता, कूटनीतिज्ञता और वीरता में यूनानियों से कहीं अधिक योग्य था। उसने पहले स्पार्टा से संधि करके एथेंस की अजेयता को धूल में मिला दिया और देलोस के यूनानी संगठन को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया।

यूरोपीय इतिहासकार इंग्लैण्ड के ट्यूडर राजा हेनरी अष्टम के प्रधान मंत्री वुल्से को संतुलन-शक्ति की नीति का जनक बतलाते हैं। परन्तु उसके सहस्रो वर्ष पूर्व वैदिक आर्यों की परम्परा से तिष्यपर्ण इस नीति मे बेजोड था। वह कुरुष द्वितीय की देशद्रोही नीति से भी भलीभाँति परिचित था। अत उसने उसकी गतिविधियो से सम्राट क्षयहर्ष को बराबर सचेत रखा। इसी प्रकार सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय के राज्यारोहण के समय उसे मार डालने का षड्यन्त्र उसकी बुद्धिमानी से ही विफल हो सका। शुद्ध एशियाई व्यक्ति की भाँति उसने अंत तक अपने स्वामी की रक्षा की और उसके प्रति वफादार बना रहा। उसने विश्वासघाती आर्ययूस यूनानी जनरल को भी अपनी रणचातुरी से हतबुद्धि कर दिया। क्लीअरचस सेनापति को पकडकर उसने स्पार्टा को एशियावासियो के सामने घुटने टेकने पर विवश कर दिया। अंत में धोखे से एक पंक्टोलस नामी यूनानी सरदार द्वारा उसके जीवन की लीला समाप्त कर दी गई। तिष्यपर्ण का नाम सदैव ही महान राजनीतिज्ञो मे लिया जाता रहेगा।

७

अंतलचीदास की संधि और परशु साम्राज्य का चरमोत्कर्ष (सन् ३८७ ई० पू०)

सम्राट ने कई महीनों तक अपनी महानता बतलाने हेतु स्पार्टा द्वारा संधि की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया और वार्ता को जारी रखा। अंत में स्पार्टा के राजदूत अंतलचीदास के प्रयत्नों से संधि हो गई। किन्तु इसमें भी कोई संधिपत्र नहीं लिखा गया अपितु सम्राट ने अपना बड़प्पन प्रदर्शित करते हुए एक फरमान द्वारा शाही घोषणा की। इस प्रकार स्पार्टा को पूरा-पूरा नीचा दिखलाया गया। नई घोषणा द्वारा पुरानी केले (Callas) की संधि अपने आप निरस्त हो गई। इस फरमान के अनुसार एशिया माइनर के समस्त द्वीप जिनमें साइप्रस और क्लेजोमीन भी सम्मिलित थे परशु साम्राज्य के अंग हो गये। किन्तु यूनान के वे टापू जो परशु साम्राज्य के अंतर्गत नहीं थे, उन्हें स्वायत्त सम्पन्न (Autonomous) मान लिया गया, एथेंस के पास लेमनस, इम्ब्रोस और स्काइरस बदस्तूर छोड़ दिये गए। यह संधि परशु साम्राज्य के चरम उत्कर्ष की सीमा थी। जिसके द्वारा सम्राट की शक्ति और प्रभाव में भारी वृद्धि हो गई तथा एशिया माइनर को बार-बार बचाने के लिये यत्न करते रहने का खतरा सदैव के लिए टल गया।

यह घोषणा यूनानियों के लिये अत्यन्त अपमानजनक थी। यूनान जाति को एशियाई आर्यों की गुलामी से मुक्त करने की उनकी अभिलाषाएँ सदैव को चूर-चूर हो गईं। हाँ, स्पार्टा को इससे अवश्य लाभ हुआ। उसके टापू सर्वदा सुरक्षित रहे किन्तु आगे चलकर उसके गर्व को धक्का लगा जबकि एक छोटे से थीब्स राज्य के एपोमीननदास द्वारा सन ३७१ में ल्यूक्टरा के युद्ध में उसकी भारी पराजय हुई।

मिस्र-युद्ध

सम्राट को निरंतर यूनानियों के संघर्ष में घिरे रहने से मिस्र को भी सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने की लिप्सा प्रबल हो उठी। सन ४०५ ई० पू० मे मिस्र का शासक अमानरथ द्वितीय था। यह प्रथम अमानरथ का पौत्र था। जब इसने मिस्र के डेल्टा में विद्रोह का झंडा खडा किया, तो उसे बडी लोकप्रियता मिली। चुनाक्शा के युद्ध मे मिस्री सैनिकों की अल्प उपस्थिति से पता चलता है कि इस राजा का राज्य केवल छोटे प्रदेश तक ही सीमित था। किन्तु इसका ६ वर्ष का शासन इतना अच्छा था कि मिस्र के फरोह राजाओं की सूची और वंशावली मे पवित्र संस्था के निर्माताओ मे उसका उल्लेख किया है। यूनानियो ने इस राजा का नाम अमार्त (Amyrtaeus) लिखा है। इसकी मृत्यु के पश्चात् मेंदेशियन वश के नैफाउरथ ने मिस्र को आजादी दिलाने मे सफलता प्राप्त की। इस राजा ने अपने बुद्धि कौशल से मध्य समुद्र के उन समस्त राज्यो और टापुओं की धन-जन से पूरी-पूरी सहायता की जो परशु साम्राज्य से उलझते रहते थे। अर्थात् इसमे परशु सम्राट के विरुद्ध बराबर विद्रोह की अग्नि को भड़काये रखा। यहाँ तक कि इसके द्रव्य से यूनानी माड़ेदार भी इन राज्यो को सुलभ होने लगे।

चुनाक्शा के युद्ध से प्रेरित होकर साइप्रस के एक नेता इवेगोरस ने भी मिस्र और यूनान की सहायता से विद्रोह का झडा खडा कर दिया। सन् ३८६ ई० पू० मे नेफाउरथ के एक उत्तराधिकारी ने जिसका नाम सागर था (सागर=हाकर =यूनानी Achoris)[१] ने परशु फोजों के हमले को असफल कर दिया। स्वयं युद्ध करने की अपेक्षा इसने इवेगोरस को धान्य और धन भेजा तथा एथेंस से चेब्रियस के अधीन एक सेना बुलवाकर इवेगोरस को युद्ध के लिये समर्थ बना दिया। किन्तु अतंलचीदास द्वारा स्पार्टा की सधि हो गई तो सम्पूर्ण स्थिति मे एकदम परिवर्तन आ गया। अतः अब सम्राट ने साइप्रस की ओर ध्यान फेरा। उस पर विजय प्राप्त करने के लिये एक बडी फौज भेजी गई। किन्तु इवेगोरस ने तिरंतर १० वर्षों तक सम्राट की सेना को उलझाये रखा। जितने दिनो तक सम्राट साइप्रस के युद्ध मे रत रहा उतने दिनो तक मिस्र बचा रहा। किन्तु सम्राट तो मिस्र को दण्ड देना चाहता था अतः उसने साइप्रस के साथ उदारता पूर्वक सन्धि कर ली और इवेगोरस को वहाँ का शासक मान लिया। इस संधि से मिस्र अकेला पड़ गया।

अब सम्राट ने मिस्र पर चढाई की। एकर Acre नामक स्थान को सेना

---

१. सर पर्सी ने पृ० २२८ पर इसी भाँति उल्लेख किया है।

के इकट्ठे होने के लिये चुना गया। इस समय मिस्र का शासक नक्षत्रशिव (Nekhthorheb) था। उसने अपनी शक्ति भर मिस्र को बचाये रखने के लिये पूरे प्रयत्न किये। यूनानी भाड़ेदारों की सेना बुलवाई और बड़े-बड़े किलो की पंक्ति बनाकर खड़ी कर दी। एथेंस का सेनापति चेब्रियस मिस्र का प्रमुख सेनापति नियुक्त किया गया और मिस्र के पूरे डेल्टा मे खाइयों का स्थान-स्थान पर निर्माण कर दिया गया।

सन् ३७४ ई० पू० मे चढ़ाई की तैयारी पूरी हो गई। इसमें दो लाख एशियाई सैनिक, २० सहस्र यूनानी जो ३०० बजडो से सुसज्जित थे, तैनात थे। इन सबका नेतृत्व महान् क्षत्रप पर्णवाहु कर रहा था। उसने दबाव, प्रभाव और दूरदेशी योग्यता से एथेंस के जनरल चेब्रियस को वापस ऐंथस भिजवा दिया और अपनी सेना मे एक एफीक्रेटीज नामक सेनापति को, जोकि एथेंस का अत्यंत प्रख्यात जनरल था भरती कराने में सफलता प्राप्त कर ली।

पेलूसियम नामक गढ की रक्षापंक्ति को अत्यंत सुदृढ़ देखकर एफीक्रेटीज ने नील नदी की एक शाखा मेदेशियन के मुहाने पर अत्यन्त चतुराई से अपनी सेना उतार दी। मिस्रियो ने थोडी देर तक मुकाबला किया किन्तु जब वे पीछे हटे, उनके साथ ही सम्राट के सैनिक भी भीतर घुस गये। इस तरह से मिस्र की रक्षापक्ति मे उनका अनायास ही प्रवेश हो गया और यदि एफीक्रेटीज के मतानुसार मेम्फिस पर तत्काल हमला हो जाता तो पूरा मिस्र पराजित हो जाता। परन्तु उसकी सलाह नही मानी गई, अतएव वह रुष्ट होकर वापस एथेंस चला गया। इतने मे ही नील नदी मे पानी का स्तर बढाव पर आने लगा और पर्णवाहु ने आगे बढना छोड़ दिया जिसके कारण मिस्र की अपने आप रक्षा हो गई।

कुर्द-विद्रोह

इसी समय कुर्द लोगों ने विद्रोह कर दिया। यह कुर्द क्षेत्र अब ईरान का जीलान क्षेत्र कहलाता है। यह नदियो, जगलों और घनी घाटियों के लिये प्रसिद्ध है। जब सम्राट की सेनाएँ विद्रोह को दबाने गई तो उन्होने आमने-सामने की लडाई को छोड़कर छापामार आक्रमण शुरू कर दिये। किन्तु सम्राट ने वहाँ के दो शासको को आपस में लडा दिया जिससे सम्राट की सेना को कोई क्षति नही पहुँची और वह सकुशल अपने घर लौट गई। कुर्द ने सन्धि के लिये प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गई।

सन् ३७२ मे यूनानियो मे आपस मे जब भयंकर युद्ध शुरू हो गया तो सम्राट के पास अतलचीदास को भेजा गया कि वह यूनानियो की गृह-कलह मे हस्तक्षेप करके उनमें एकता करा दे। इसी प्रकार थीब्स और एथेंस से भी राजदूत भेजे

गए। इससे प्रकट होता है कि यूनान के क्षेत्रों में सम्राट का अब भी असाधारण प्रभाव था।

इसी प्रकार और कई स्थानों पर जो-जो विद्रोह हुए सम्राट ने धन और एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ाने की चाल से वे सब विफल कर दिये।

अन्त में ४६ वर्ष राज्य करने के बाद सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय का सन् ३५८ ई० पू० में निधन हो गया। पश्चिमी इतिहासकारों ने उसकी दबी जबान से प्रशंसा की है।

द्वितीय आर्तक्षयहर्ष का चरित्र

वह बहुत नम्र स्वभाव का, अत्यन्त उदार और शीघ्र ही क्षमा प्रदान करने वाला व्यक्ति था, किन्तु वह साम्राज्ञी प्रियसती के असाधारण प्रभाव मे रहता था। उसकी स्वयं की पत्नी श्वेतधरा (Statırax) जोकि सम्राट को अत्यन्त प्रिय थी, को प्रियसती द्वारा विष दिये जाने के बाद भी उसके प्रभाव में कमी नही आई। उसने इस प्रभाव का दुरुपयोग करके अपने पुत्र से सम्राट की पुत्री अतिसा का विवाह करा दिया जिससे भविष्य मे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं। इस सम्राट ने धान्य की लक्ष्मी 'अनाहिता' की मूर्तियाँ स्थापित कराई जिससे उसके राष्ट्रीय धर्म को अत्यन्त प्रसिद्धि और व्यापकता मिली और उसकी अभिवृद्धि हुई। इस सम्राट के समय में एक और बड़ी प्रमुखता यह हुई कि मित्र-सूर्य की प्रतिष्ठा और पूजा का पुनः आयोजन प्रारम्भ हो गया। गाथा और सक्षमान के कीर्तिलेखों के लंबे काल के बाद अब बृहत-युद्ध देवता मित्र का एक संगठित देव के रूप में विकास होता हुआ सामने आया।[१] "द्वैत का मूल कुछ भी क्यों न हो किन्तु यह मित्र ही सम्पूर्ण संगठन का प्रतिरूप होकर सामने आया।"[२] क्लीमेट के अनुसार इस धर्म का जोर बेबीलोन, सूसा, और एकपट्टन मे बहुत था।

इस आर्तक्षयहर्ष महान् के सूसा स्थित महल में एक लेख मिला है जिसमे कहा गया है कि असुरमज्द, अनाहिता, और सूर्य की कृपा से मैंने यह महल बनाया।[3]

यह कहा जाता है कि सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय के जनानखाने मे सैकड़ों स्त्रियाँ थीं। जिनसे उसे १०० पुत्र हुए।[४] जिनमे से अधिकांश अपने पिता के पूर्व

---

१. सर पर्सी, पृ० २३०

२. मोल्टन

3. Early zoroaslrıanism, पृष्ठ ११८

४. इसी प्रकार भारतीय राजाओं में धृतराष्ट्र के सौ पुत्र होने का उल्लेख है। राजा सगर के तो साठ हजार पुत्र थे ऐसा कहा गया है।

ही मर चुके थे । केवल उसकी प्रिय पत्नी श्वेतधरा (Statvra) से उत्पन्न तीन पुत्र द्रु (Darius), आर्यक्षेप (Arispes) और वाहुक (Ochus) ही वैधानिक रूप से गद्दी के उत्तराधिकारी माने गये ।

सम्राट के जीवनकाल में ही इनमे से प्रथम पुत्र द्रु को उत्तराधिकारी चुना गया था, किन्तु वाहुक जोकि बडा षड्यन्त्रकारी था, ने द्रु को अपने पिता को मार डालने को उकसाया क्योंकि सम्राट वाहुक को गद्दी देना चाहता था । द्रु उसके षड्यन्त्र में फँस गया और उसका वध कर दिया गया । वाहुक ने आर्यक्षेप को भी इस षड्यन्त्र में हिस्सा लेने के अपराध में भयभीत कर दिया और उस अभागे राजकुमार ने डर के मारे आत्म-हत्या कर ली । इन सब कार्यों मे उसने अतीसा राजकुमारी की भी सहायता ली जिससे उसने विवाह का पक्का वायदा कर लिया था । जब सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय इन घरेलू संकटो में ग्रस्त होकर मर गया तो यह वाहुक सम्राट आर्तक्षयहर्ष तृतीय के नाम से सिंहासन पर बैठा । ऐसा कहा जाता है कि उसने सिंहासन पर बैठते ही राज्यवंश से सब राजकुमार और राजकुमारियो को मरवा डाला ।

सम्राट आर्तक्षयहर्ष तृतीय

नया सम्राट अपने पूर्वजों की भाँति न तो कमजोर था और न दुर्बल आत्मा का ही था । उसने शीघ्र ही भाँप लिया कि मिस्र के विद्रोह ने न केवल अन्य राज्यों को ही प्रोत्साहित किया है, अपितु उसके स्वय के क्षत्रपों मे भी विद्रोह करने की भावना को जागृत किया है । अतएव गद्दी पर बैठने के बाद ही उसने मिस्र को विजय करने का निश्चय किया । एक बडी सेना वहाँ भेजी गई, किन्तु उसे बुरी तरह पराजित होना पडा । मिस्र के शासक नखतनेम (नक्षत्रनाभि) ने भागती हुई परशु फौजो को बुरी तरह पराजित किया । मिस्र मे शाही फौजों की यह दुर्गति देखकर सीरिया, एशिया माइनर और साइप्रस ने भी विद्रोह कर दिया । यहाँ तक कि फोनीशिया जो अभी तक सम्राट का परम स्नेही देश था वहाँ के शासक तेनस ने जो सिदोन का स्वामी था लेबनान मे घुसकर सम्राट के महल को जलाकर राख कर दिया और जो खाद्य-भंडार मिस्र को पराजित करने हेतु सेना के लिये सुरक्षित रखा था, उसे भी नष्ट कर दिया ।

सम्राट के ऐथेंसवासी सेनापति ने साइप्रस पर तो कब्जा कर लिया परन्तु फीनिया के क्षत्रप के आगे उसकी कुछ न चली और तेनस (फोनीशिया का शासक) ने मिस्र की सहायता से सीरिया पर भी कब्जा कर लिया । अब सम्राट के धैर्य का बाँध टूट चुका था । उसने एक विशाल सेना इकट्ठी की और स्वय ही सिदोन की ओर चढाई की । सिदोन की बडी दीवारों को नष्ट कर दिया गया और सारे शहर को जलाकर खाक कर दिया । नगर निवासियों को उसने भयंकरतम

दण्ड दिया जिससे आसपास के सारे देश थर्रा गये और धीरे-धीरे उन्होंने सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली और उसके आदेशो को मानने लगे।

अब सम्राट की सेना ने दक्षिण दिशा मे मिस्र की ओर बढ़ना शुरू किया। अल्पकाल में ही पेलूशियम पर कब्जा कर लिया गया। मिस्र के शासक ने भागकर मेम्फिस मे शरण ली, किन्तु उसका वहाँ भी पीछा किया गया और सन् ३४२ में मिस्र को बुरी तरह पराजित कर दिया गया। उसकी अपार धन, सम्पत्ति लूट ली गई। उसके मन्दिरों को ढहा दिया गया। सारे मिस्र मे तहलका और हा-हाकार मच गया। शहर के शहर वीरान और नगर निवासियो को सहस्रो की सख्या मे कत्ल कर दिया गया। इस विजय के बाद सम्राट बेबीलोन को लौट गया।

सन् ३३८ ई० मे तृतीय आर्तक्षयहृर्ष ने करष आर्तबाहु नाम के एक विद्रोही को भी दबा दिया। पश्चिम की ओर हुई इस विजय ने शेष पश्चिमी भाग मे भी सम्राट का दबदबा और रौब बढ़ा दिया किन्तु पूर्व व उत्तर मे पेजाव और कैस्पियश (कश्यप प्रात) उसके हाथ से निकल गये। बाघ (Bagoas) नाम के एक वीर नपुसक के नेतृत्व मे आसपास के समस्त विद्रोह दबा दिये गए। किन्तु इस समय राजदरबार मे दूसरे षड्यन्त्र चालू हो गये जिससे इस नपुसक सरदार को अपनी आत्मरक्षार्थ सम्राट की हत्या करनी पडी और आर्ष नाम के राजकुमार को छोड़कर उसने सम्राट के सब पुत्रो को मरवा डाला। किन्तु अन्त मे इस राजकुमार ने जब इस नपुसक से अपनी मुक्ति करानी चाही तो उसे भी मार डाला गया। इस प्रकार इस वश की समाप्ति हो गई।

सन् ३३६ ई० पू० मे बाघ ने एक नये लड़के को जिसका नाम चूडामन (Codomanus[१]) था गद्दी पर बिठलाया जो इतिहास में दु तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सम्राट अपने बाल्यकाल तथा यौवनावस्था मे अनेक मल्ल-युद्ध तथा लडाइयां जीत चुका था। अतएव उसे गद्दी पर बिठलाने मे बाघ को कोई कठिनाई नहीं हुई।

१. यूनानी भाषा मे अक्षर 'C' का उच्चारण 'च' होता है

८

मकदूनिया का राज्य

परशु साम्राज्य और ऐशियावालो के हाथो यूनान को जो बार-बारपराजय मिली उससे वे न केवल मर्माहत ही हुए अपितु वे ऐसे अवसर की टोह मे रहने लगे जबकि उन्हे बदला लेने का कोई अवसर मिले। पाठको ने देखा होगा कि इसी भावना से पिछली शताब्दी मे जब भी अवसर लगा यूनानियो ने विद्रोह कर दिया, किन्तु तो भी बार-बार हारने और पराजय मिलने से उनकी स्वतन्त्रता-कामना कम नही हुई और वे किसी एक ऐसे नेतृत्व की खोज मे लग गये जिसके अधीन पूरा यूनान एक होकर ऐशियावालो के विरुद्ध लड़ जावे। दैव-सयोग से उनकी यह इच्छा शीघ्र ही पूरी हो गई।

जैसा कि पिछले परिच्छेदो मे बतलाया गया है। भूमध्य सागर के उत्तरी भाग मे अनेक यूनानी टापू है। उनकी अनेकता ने ही उनमे संगठन का अभाव, एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहने की प्रवृत्ति और एक नगर अथवा राज्य से दूसरे राज्य के प्रति द्वेष और ईर्ष्या ने उन्हे कभी भी एक होकर शत्रु के खिलाफ़ सयुक्त कार्य-वाही करने का अवसर नही आने दिया।

सर पर्सी ने प्रसिद्ध लेखक होगर्थ की सम्मति का उल्लेख करते हुए अपने प्रसिद्ध इतिहास मे लिखा है :

"जब परशु साम्राज्य का पतन होने लगा तो मक़दूनिया के प्राचीन निवासियो को जो आर्य थे नये यूनानी निवासियों ने पराजित करके जंगलो की ओर खदेड़ दिया, किन्तु उनका यह काम ठीक प्रतीत नही होता। हाँ, यह समव है कि जब दो जातियाँ आपस के संपर्क मे आई हो तो वे मिलकर एक मिश्रित जाति बन गई हो। यह जाति मक़दूनिया के उपजाऊ इलाको मे रहती थी। जिसकी यह विशेषता थी कि उन युवको मे जब तक शिकारी या युद्धीय प्रवृत्ति न हो उनमें से किसी भी युवा को सम्मान की दृष्टि से नही देखा जाता था। बल्कि कभी-कभी अन्य यूनानी उस व्यक्ति को जिसने कुछ शारीरिक परिश्रम के आधार पर जंगली सूअर का आखेट न किया हो भोजन के सहभागी होने मे भी गुरेज करते थे।"

पहले लिखा जा चुका है कि यह मकदून प्रान्त परशु के आर्य साम्राज्य का एक भाग था। और जब परशु साम्राज्य ने सीथियन लोगों पर आक्रमण किया तो मकदून पर अमिन्तास राज्य करता था जिसने शीघ्र ही सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली। हेरोडोटस ने लिखा है कि एक बार जब परशु देश के आर्य सम्राट के राजदूत के सम्मान मे अमिन्तास भोज दे रहा था तो राजदूत ने अमिन्तास को उस भोज मे सम्मिलित होने के लिए अमिन्तास के घर की राजमहिलाओ को आने पर विवश किया। राजदूत की शक्ति देखकर अमिन्तास मना भी नहीं कर सकता था। अत उसके लड़के सिकन्दर ने स्त्रियो के स्थान पर अस्त्र-शस्त्रों से लैस युवा जनो को स्त्रियो के रूप मे भेज दिया जिन्होंने शीघ्र ही परशु लोगों पर हल्ला बोल दिया और बहुत-से एशियाई व्यक्तियो को मार डाला। इस घटना को सुनकर सम्राट आग-बबूला हो गया और इसकी जाँच हेतु उसने कुछ परशु लोगो को वहाँ भेजा। अमिन्तास इस पूरे काण्ड से बहुत ही घबरा गया था और वह किसी भी कीमत पर परशु लोगो से लडाई मोल लेने को तत्पर नही था। अतः यह नीति अपनाई गई कि जाँचकर्त्ता व्यक्तियो के नेता के साथ अमिन्तास की लडकी का विवाह कर दिया जाये। विवाह के बाद एशियाई लोगो का क्रोध कुछ-कुछ शान्त हो गया था।

उत्तरी यूनान के मकदूनिया राज्य में यूनानियो की दो प्रसिद्ध शाखाएँ थी। पहली तो अरगोस द्वीप से आये हुए शरणार्थियो की थी किन्तु दूसरी शाखा आर्यों की थी जो इन यूनानियो की दृष्टि मे बर्बर थे और जो उपजाऊ मैदानो से ऊँचे-नीचे पहाडों में आकर यहाँ बस गये थे किन्तु बाद मे दोनो एक हो गये थे।

यह जाति शौर्य और साहस के लिए प्रसिद्ध थी। अपनी परम्परा के अनुसार जिस यूनानी ने युद्ध में एक भी शत्रु को न मारा हो उसे समाज मे हेय गिना जाता था और उसकी साधारण पहचान यह थी कि उसकी कमर मे एक डोरा बँधा रहता था परन्तु जब वह एक जंगली सूअर का शिकार कर लेता था तो उसकी कमर से यह डोरा निकाल लिया जाता था और बराबरी का पात्र समझा जाने लगता था। मल्लयुद्ध, मदिरापान आदि के साथ इस समाज में बहुपत्नी प्रथा भी अधिकता से विद्यमान थी। इनमें मकदूनिया राज्य कला और कौशल के लिये प्रसिद्ध था।

इस राज्य का प्रारंभिक इतिहास उपलब्ध नही है। सीथियन आक्रमण के समय यहाँ के शासक अमिन्तास (Amyntas) ने परशु की आधीनता स्वीकार कर ली थी, तब से ही थोडी बहुत ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। पिछले पृष्ठो में बतलाया ही जा चुका है कि किस प्रकार परशु राजा के एक राजदूत ने भोजन के समय अमिन्तास को अपने घर की महिलाओ को सामने लाने के लिए विवश

किया था। परिणामस्वरूप अमिन्तास के लडके सिकन्दर[1] को बहुत क्रोध आया था और फिर शराब मे चूर एशियाई लोगो के पास स्त्रियों के बहाने सैनिकों को भेजकर उनका नर-संहार किया गया था। इस काण्ड से सम्राट अत्यन्त अप्रसन्न हुआ था। अत. उसका क्रोध शान्त करने के लिए अमिन्तास के एक उत्तराधिकारी ने अपनी कन्या का विवाह एशिया के सम्राट के राजदूत से करके क्षमायाचना चाही थी। किन्तु सम्राट का यूनान के विरुद्ध जब महाअभियान छिड़ा तो यही सिकन्दर सम्राट की ओर मिल गया था।

सन् ४५५ से ४१३ ई० पू० तक मकदूनिया में एक परदीकस (Perdicas) नामक व्यक्ति ने राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी आर्चीलस अत्यन्त योग्य और विद्वान था। उसने अपने दरबार मे सारे यूनान से अच्छे-अच्छे कवि और विद्वानो को बुलाकर रखा था। इसी के राज्य मे यूरीपीडीज, एगेथोन तथा ज्यूक्सिस आदि प्रसिद्ध व्यक्ति थे; जिन्हे कि आज तक यूनानी लोग अत्यन्त आदर के साथ देखते हैं। इस शासनकाल का इतिहास भयंकर अंधकार के गर्त मे पडा हुआ है। इस काल मे खून-खराबी, परिवर्तन, शासको की हत्याएँ आदि की कहानियाँ भरी पडी हैं। अन्त मे इलीरियन जाति के घुमक्कडो ने इस शासक के भाई और अंतिम उत्तराधिकारी को जब रणक्षेत्र में मार डाला तो फिलिप नाम के एक अन्य उत्तराधिकारी ने ३५९ ई० पू० मे मकदूनिया की गद्दी हथिया ली।

यह एक योग्य शासक था। इसने थोडे ही काल मे अपने राज्य मे बड़ी उन्नति की। आस-पास के छोटे-छोटे राजाओ को परास्त करके उसने एक संयुक्त राज्य की नीव डाली। परिस्थितियो और भूतकाल के इतिहास ने फिलिप के मन मे परशु सम्राटो के खिलाफ तीव्र विरोध की भावना भर दी। एशियाई वीरों ने जब बार-बार यूनानियो का रणक्षेत्र मे मानमर्दन किया था तभी से उसके हृदय मे बराबर प्रतिहिंसा जाग रही थी। एशियाई सम्राट अपने देश यूनान मे व्याप्त दासत्व की भावना को निकाल फेंकने के लिए बहुत आतुर था और पिछले काल में एशियावालों ने उसके देश का जो अपमान किया था उसका बदला लेने को वह बहुत आतुर था।

उसने परशु देश की भाँति अपनी अश्वारोही सेना का भी निर्माण किया। जलशक्ति की उत्कृष्टता का उसे ज्ञान था अत उसने एक लडाकू जहाजी सेना का भी निर्माण किया। उसने धीरे-धीरे इलीरियन एथेन्स, थीब्स तथा फोनिशियन लोगो पर विजय प्राप्त कर ली। अत मे वह थ्रेस को जीतकर उस क्षेत्र तक कब्जा करने मे सफल हो गया जिसे प्रोपोन्टिस (Propontes) कहा जाता है। यह यूरोप का सबसे आखिरी पूर्वी क्षेत्र है। यही से टर्की का भूभाग शुरू हो जाता है। उसने परशु राज्य के अतर्गत पेरिन्थस नाम के क्षेत्र को भी जीतने का

---

१. यह सिकन्दर महान् नही था।

साहस किया किन्तु यहाँ पर उसे बुरी पराजय खानी पड़ी और उस हार के बाद उसने बरें दानियाल का स्वप्न छोडकर शेष यूनान को ही जीतने का संकल्प कर लिया।

चेरोनिया का युद्ध (३३८ ई० पू०)

उसके इस राज्यविस्तार से थीब्स और एथेंस शंकित हो उठे थे अतः उन्होंने संयुक्त रूप से उसका मुकाबला चेरोनिया के रणक्षेत्र में किया। फिलिप ने उनको पराजित करके भयानक नर-संहार किया। अब पेलोपोनीसिस के बाद केवल स्पार्टा ही स्वाधीन बचा रह गया। ३३७ ई० पूर्व मे समस्त यूनान ने उसे अपना महासेनापति चुन लिया और इस प्रकार एक तरह से उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया।

फिलिप का विवाह ऐपीरोट के शासक की कन्या ओलम्पियस से हुआ था। यह अपने समय की अत्यन्त सुन्दर स्त्री गिनी जाती थी। किन्तु जितनी यह रूपवान थी उतनी ही कुलटा और दुश्चरित्र थी। जिसके कारण वह घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। सर पर्सी ने लिखा है 'अत्यंत रूपवान और प्राथमिक वासनाओं से लिप्त होने के कारण उसे समय-समय पर घृणात्मक अत्याचार करने पर बाधित होना पड़ा"[१] किन्तु इस स्त्री को इतिहास सिकन्दर महान् की माता के रूप मे सदैव स्मरण रखेगा। कुछ काल के पश्चात फिलिप अपनी इस स्त्री से तग आ गया तब उसने अपने देश की एक दूसरी युवती से विवाह कर लिया। जब विवाह की दावत चल रही थी तो वधू के काका ने सिकन्दर को देखकर उसकी वैधता पर सदेह व्यक्त करते हुए कुछ आपत्तिजनक शब्द कहे। छोटे से सिकन्दर को इससे बडी ग्लानि हुई और भयकर क्रोध मे उसने काका ऐटलस के मूँह पर अपने पीते हुए प्याले को दे मारा। यह देखकर फिलिप ने जो उस समय शराब मे मस्त था उस पर तलवार से आक्रमण किया। सिकन्दर वार बचा गया किन्तु पिता को तिरस्कारपूर्ण शब्दो मे सबोधित करता हुआ अपनी माता के साथ दरबार से उठकर चला गया। बडी मुश्किल से यह झगडा शान्त हुआ ही था कि एक दूसरा विवाद उत्पन्न हो गया। सिकन्दर चेरियाँ (Caria) के क्षत्रप की लड़की से विवाह करना चाहता था, जो फिलिप को बिलकुल नापसन्द थी। उसने इस सम्बन्ध को भग करा दिया और सिकन्दर के चार मित्रो को जो इस सगाई में अगुआ थे, देश से निकलवा दिया। इनमें से दो हरपाल Harpalus तथा टालमी आगे चलकर बहुत ही इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये।

सन् ३३६ ई० मे फिलिप को कत्ल कर दिया गया। कहा जाता है उपरोक्त

१. देखिये—इतिहासकार पर्सी, पृ० २३८

काका ऐटलस ने कुछ पौबनिय लोगों का बड़ा तिरस्कार किया। उन्होंने राजा फिलिप से शिकायत की। किन्तु जब वहाँ कोई सुनवाई नहीं हुई तो उन्होंने षड्यन्त्र के द्वारा फिलिप को मार डाला। लोगो का विश्वास है कि इस प्रथम काण्ड में सिकन्दर का भी हाथ था।[1] जिस प्रकार भारतीय इतिहास मे औरंगजेब ने अपने पिता को तरसाया था उसी प्रकार महान सिकन्दर ने अपने पिता का वध करवाया था। इस पूरे काण्ड मे ओलम्पियस की यह इच्छा भी गुथी हुई थी कि उसके क्रूर पति के सर्वनाश के बाद उसका पुत्र सिकन्दर ही वास्तविक उत्तराधिकारी बनेगा।[2]

यूरोपीय इतिहासकारो ने विभिन्न अलंकारों और विशेषणों से फिलिप को स्मरण किया है। उनकी दृष्टि मे एशियावालो को यूरोप पर राज्य करने का अधिकार ही नही था अत फिलिप को उनने "शब्दो के वास्तविक अर्थ मे उसने सामान्य राष्ट्रीय आदर्शों पर एक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र की प्रथम बार एक यूरोपीय शक्ति के रूप मे संरचना की।"[3] "यूरोप ने इतना बडा व्यक्ति कभी पैदा नहीं किया। वास्तव मे उसे अमिनतास का पूर्णरूप से पुत्र ही माना जाना चाहिये।[4] इसी कारण यूरोप ने सिकन्दर को अमिनतास के पौत्र का दर्जा ही दिया है।"[5] आदि की संज्ञाएँ दी हैं।

वास्तव में सिकन्दर एक महान प्रतापी व्यक्ति था। किन्तु अब बाद के इतिहासो और समय-समय की रचनाओ से सर्वत्र यह शका व्यक्त की जाने लगी है कि सभवतः वह उतना बडा दिग्विजेता नही है जितना कि यूनान, रोम और यूरोप के इतिहासकारो ने उसे केवल ईर्षालु बुद्धि के कारण ही बढा-चढाकर बतलाया है। सर पर्सी ने लिखा है कि एक बार गिलजित की उन घाटियो में जहाँ कभी भी किसी यूरोपियन ने अपने कदम नही रखे थे। वहाँ के एक छोटे से शासक ने अपने को सिकन्दरवशीय बताया। इसी प्रकार प्रसिद्ध यात्री मार्को-पोलो ने वदख्शा के राजा के बारे में लिखा है कि वहाँ का शासक अपने को सिकन्दरवशीय कहता है।[6] सभवत ऐसा लिखने मे इन लेखकों का अभिप्राय स्वभावत. यह दर्शाने का है कि ससार के दूरस्थ देशो के व्यक्ति भी अपने को सिकदर वशीय कहलाने मे गौरवान्वित अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दो में, एक बडे व्यक्ति से अपने सबन्ध बतलाना मानो उस व्यक्ति के बडप्पन को एक प्रकार से स्वीकार करना है।

---

१. सर पर्सी, पष्ठ २३६
२. वही, पृष्ठ २३६
3. Philips and Alexender of Macedon, Page 3
4 Theopemp 27 quoted from Op Cit. Page 145
5. Hograth
6, Yule's marco-Polo, Volume I, Page 157

सिकन्दर के विषय में भिन्न-भिन्न कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी के अनुसार वह मिस्र के एक शासक का पुत्र था। ईरान के प्रसिद्ध लेखक फिरदौसी के अनुसार परशु देश के राजा द्रु ने रोम के राजा फिलिगस की लड़की से विवाह किया था। आगे चलकर द्रु (दारा) ने अपनी इस पत्नी को छोड़ दिया और यह परित्यक्ता स्त्री आगे चलकर सिकन्दर की माँ बनी। दारा ने दूसरा विवाह किया। उससे दारा चूड़ामन (द्रु तृतीय) उत्पन्न हुआ। अर्थात् सिकन्दर और दारा चूड़ामन सौतेले भाई थे। भविष्य मे सिकन्दर ने परशु देश पर जो हमला किया था वह वास्तव में हमला न होकर अपने कुल के सिंहासन को प्राप्त करने के लिये उत्तराधिकार का एक युद्ध था। इस तथ्य मे अब तक परशु देश के लोग विश्वास करते हैं।[1] ओलम्पियस के चरित्र को देखते हुए यह सर्वथा असंभव भी प्रतीत नहीं होता।

सिकन्दर में प्रारंभ से ही अनेक गुण थे। वह निर्भीक, साहसी था। एक बार उसका प्रसिद्ध घोड़ा 'बुचीफल' जब पहले-पहल बिकने आया था तो उसके पिता ने उसे इस बिना पर खरीदने से इन्कार कर दिया कि वह बिदकता है किन्तु सिकदर ने तत्काल भाँप लिया कि वह अपनी परछाई से बिदकता है और उसने उसका मुख पूर्व की ओर करके दौड़ाकर उसे वशीभूत कर लिया।

सिकन्दर का सौभाग्य था कि उसे अरस्तू सरीखे महान दार्शनिक और विद्वान का शिष्य होने का अवसर मिला। दरबार से अनबन होने के कारण भी उसे बाहरी जीवन बिताने पर बाध्य होना पड़ा। जिसके कारण उसके साहस मे काफी अभिवृद्धि हुई।

सिकन्दर ने सर्वप्रथम अपने हाथ संबन्धियो और रिश्तेदारो की मृत्यु से रँगे। उसके बाद उसने प्रथम बार यूनान के लोगो पर अपनी धाक का सिक्का जमाने के हेतु उनकी संयुक्त सेना से थर्मापोली के मैदान मे युद्ध किया और उन्हे हराया। थोड़े ही दिनो में उसने बलकान और इलीरिया को जीत लिया।

सन् ३३५ ई० मे उसने थीब्स, एथेंस और अन्य राज्यो की सम्मिलित शक्ति पर भयंकर आक्रमण किया। इस युद्ध मे महान् थीब्स जाति लगभग पूरी तरह से नष्ट कर दी गई। उसके ६००० सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये, ३० सहस्र के लगभग पुरुष सख्या बंदी कर ली गई। सारे मकान और सपत्ति में आग लगाकर नगर को नष्ट कर दिया गया। केवल कुछ मदिर और पिंडार का मकान छोड़ा गया। शेष समस्त नागरिको को गुलाम बना लिया और इस प्रकार भयंकर यातनाएँ और दड देकर थीब्स के इतिहास को सदैव के लिये समाप्त कर दिया। स्वभावत: इस भयकर दमन से पूरा यूनान थर्रा गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली गई।

---

१. सर पर्सी, पृ० २४०

१

सिकन्दर महान् के साथ आर्य-युद्ध

यह तो दैव-योग ही कहा जायेगा कि सिकन्दर की सहायता नियति कर रही थी। आगे के पृष्ठो में इस तथ्य का सुकथित प्रमाण मिल जायेगा कि कहीं-कहीं तो चमत्कारिक ढग से हारी हुई बाजी सिकन्दर के पक्ष मे चली गई। निश्चय ही वह वीर और दृढ सकल्प का व्यक्ति था परन्तु भाग्य भी उसका साथ दे रहा था। उसके पिता की मृत्यु के समय फिलिप के दो सेनापति परमीनियो और एटलस एशिया माइनर की विजय को गये हुए थे। किन्तु फिलिप की अचानक मृत्यु ने उन्हे वापस लौटने को बाध्य कर दिया था। सिकन्दर जानता था कि एशियाई विजय को निकलने के पूर्व उसे भी अपने पिता के सेनापतियो द्वारा अपनाया गया रास्ता स्वीकार करना होगा अर्थात् एशिया माइनर को विजय किये हुए बिना आगे बढना असभव है। इस समय एशिया माइनर के समस्त भाग का सेनापति मेमनन नाम का महान् योद्धा था जिस पर द्रु तृतीय परशु सम्राट अधिक विश्वास करता था।

निदान सन् ३३४ मे पूण तैयारी के साथ सिकन्दर अपनी विजय के लिये निकल पडा। उसके पास चुने हुए तीस हजार पदाति व ५ सहस्र वीर अश्वारोहियो की चुनीदा सेना थी। यूनान के अन्य राज्यो ने भी उसे सैनिक सहायता दी। इस सिकन्दर की सेना को मैदान और दुर्गम पहाडो, दोनो मे लडने का खूब अभ्यास था। पूर्व की ओर हेलसपोट तक का मार्ग तो सैनिकों का देखा हुआ ही था। क्योकि पिछले समय मे 'दस सहस्र की यात्रा' ने सैनिकों को रास्ते का ज्ञान करा दिया था। अतएव सिकन्दर अपनी सेना को आगे बढाता ले गया। यात्रा के बीसवें दिन यह सेना सेस्टोज स्थान पर पहुँच गई। इस निर्बाध गमन का कारण संभवत यह हो सकता है कि सिकन्दर की साधारण सेना और उसकी छोटी अवस्था के कारण सम्राट के क्षत्रपो ने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया होगा। क्योकि यूनानियो द्वारा ऐसे आक्रमण प्राय: चला ही करते थे। अंत में सिकन्दर ने अत्यंत सावधानी और बहुत चुपके से अपनी सेना को एशियाई भूमि

पर उतार दिया और वहाँ उसने अपने कुल-देवताओं "ज्यूस, एथेनी और हेराक्लीज" की विधिपूर्वक पूजा अर्चना की।

इलीयम में अचीलीज की यात्रा करने के बाद अब सिकन्दर को विदित हो गया कि सम्राट की सेना बहुत बड़ी संख्या मे एकत्रित हो गई है। वह इतनी बड़ी फौज का सामना नहीं करना चाहता था। किन्तु उसे मारमोसा समुद्र तट पर बसे प्रसिद्ध शहर सिजीकस के पास बहती हुई नदी 'ग्रेनीकस' पर युद्ध करने को बाध्य होना ही पड़ा। कहा जाता है कि सम्राट की सेना मे किराये पर आई यूनानी सेना के सेनापति आर्यन तथा मेमनन ने परशु लोगो को 'जलाकर पीछे हटने की नीति" पर चलने को कहा किन्तु एशियाई सेना को अपनी वीरता और अजेय लड़ाकू शक्ति पर भारी विश्वास था अत उसने उसे स्वीकार नही किया। उन्होंने २० हजार अश्वारोहियो को आगे की लाइन मे नियुक्त करके समस्त यूनानी रण-सेना को रिजर्व मे रख लिया। मकदूनिया की सेना के पास भारी और अच्छे-अच्छे हथियार थे। अत. मकदूनिया ने अपने लम्बे बरछे और एशियाई सेना ने अपने नेजों के साथ घमासान युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। एशियाई लोगो ने अपनी सेना को वाम व दक्षिण पार्श्व मे रखते हुए बीच मे महान सेनानायकों को रखा। ज्योंही सिकन्दर आगे बढा उसे सम्राट के जामातृ मित्रदत्त से सामना करना पड़ा। इस युद्ध के प्रारम्भ में ही सिकन्दर की बरछी टूट गई। उसे त्वरित ही दूसरा हथियार दिया गया जिसे फेंककर मारने पर मित्रदत्त भूमि पर घायल होकर गिर पड़ा। किन्तु मित्रदत्त ने गिरते-गिरते सिकन्दर को जो भाला मारा उससे वह तो बच गया परन्तु उसका शिरस्त्राण नष्ट हो गया। अब सिकन्दर ने बहुत ही फुर्ती से नीचे गिरते हुए मित्रदत्त को मार डाला। किन्तु अब सिकन्दर पर भी चारो ओर से भयंकर आक्रमण होने लगा। इस समय उसके मित्र क्लीटस ने उसके प्राणों की रक्षा की। अन्त मे इस भयानक मारकाट मे एशियाई सेना का मध्य भाग टूट गया और सारी सेना भाग खड़ी हुई। इसके बाद ही यूनानी किराया सेना सामने आ गई। सिकन्दर ने भागती हुई सेना के पीछे न पड़ते हुए इन किरायेदारो से भयकर संघर्ष किया। यह सेना अत्यंत पराक्रम से लड़ी किन्तु अंत मे पराजित होकर शत्रु द्वारा पूरी तरह विनष्ट कर दी गई। शेष दो सहस्र सैनिको को सिकन्दर ने गिरफ्तार कर लिया।

सार्डीज पर आक्रमण (३३४ ई० पू०)

एशियाई सेना की इस हार ने साम्राज्य के पश्चिमी भाग के अधिकारियों के साहस को लगभग समाप्त ही कर दिया। एशिया के पश्चिम में अन्तिम छोर पर एशियाई सेना का सार्डीज नामक स्थान एक बड़ा सैनिक गढ़ था। पश्चिम की ओर समुद्र की रक्षा तथा यूनान की ओर आक्रमण करने में सम्राट की सेना

इसी स्थान पर केन्द्रित रहती थी । उपरोक्त युद्ध के बाद सार्डीज का शासक नगर छोड़कर भाग गया और सिकन्दर का बिना किसी परिश्रम के इस अलभ्य स्थान पर आधिपत्य हो गया । लीडिया के जीतने के बाद सिकन्दर ने सर्वप्रथम नये सिरे से क्षत्रपों की नियुक्ति के बारे मे सुधार किये । परशु साम्राज्य के पिछले दिनों से साम्राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर क्षत्रपो ने, सेनापति तथा वित्तप्रमुख के स्थानों को भी अपने पदो मे मिला लिया था । अब सिकन्दर ने वित्त तथा सेनाध्यक्ष के कार्यों को अलग-अलग करके उन पर अलहदा-अलहदा अधिकारियों की नियुक्ति कर दी । इसी प्रकार उसने समस्त जीते हुए प्रदेशो का शासन-रूप इसी आकार-प्रकार में ढाल दिया ।

सिकन्दर को उन यूनानी टापुओं से बडी घृणा और चिढ थी जो यूनानी वंश के होते हुए भी एशियाई लोगो के हाथ मे खेलते थे । ये लोग न केवल स्वाधीन होने के लिये प्रयत्न ही करते थे अपितु ऐसे स्वाधीनता के संग्राम मे वे परशु लोगों का साथ देते थे ।

प्रथम आक्रमण मे ऐसे एक यूनानी सरदार यूफीसस (Ephesus) ने सिकंदर की अधीनता स्वीकार कर ली । किन्तु सेनापति माइलटस ने सिकन्दर के सामने न केवल झुकना ही स्वीकार किया अपितु सिकंदर को युद्ध के लिये आह्वान भी किया । माइलटस के पास स्वय की बडी भारी जल-शक्ति थी । इसके अतिरिक्त सम्राट का विशाल जल-बेडा उसकी सहायता के लिये तैयार भी खडा था।

सम्भवत: सिकदर के जीवनकाल मे यह पहला अवसर था जब शत्रु की ललकार के बाद भी सिकदर का साहस लडाई को तैयार नही होता था । कई बार उसके सेनापति ने सिकदर को युद्ध के लिये विवश किया किन्तु सिकंदर ने परिस्थिति को पहचान कर युद्ध न लडना ही तय किया और समुद्र में से वह बिना लडाई लडे हुए ही आगे बढा । यही नहीं उसने अत्यधिक खर्च के भय से अपनी जल-सेना को भी तोड दिया । एशियाई लोगो की यह सर्वाधिक भूल थी कि उसने इस अवसर का लाभ नही उठाया । सिकंदर को समुद्री-युद्ध मे बुरी तरह हराकर उसका आगे बढना हमेशा के लिये रोका जा सकता था । पश्चिमी इतिहासकारो ने स्वीकार किया है कि सिकंदर की जल-सेना एशियाई जल-सेना से निकृष्ट थी इसीलिये उसने अपनी इस सेना को तोड दिया था ।

कुछ समय के पश्चात् एक भयकर आक्रमण द्वारा माइलटस को बुरी तरह पराजित कर दिया गया तथा उस क्षेत्र के बहुत से यूनानियों को सिकंदर ने अपनी फौज में भरती कर लिया । फिर मेमनन की राजधानी हरिकर्णस् पर आक्रमण करके उसे ले लिया । युद्ध मे जब मेमनन ने अपनी बाजी जाती देखी तो उसने नगर को आग लगा दी और वह वहाँ से चला गया । सिकंदर ने इन किलों को जीतने में अपने समय को गंवाना उचित नही समझा । अगले वर्ष में

उसके सेनापति ने इन क्षेत्रों को जीत लिया। इसके पश्चात् अन्य टापू सीसिया, पैमफेलिया पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया गया। पिसीदिया को जीतकर शक्तिशाली फिरीजिया प्रदेश पर आक्रमण किया तथा उसके प्राचीन राजाओं की राजधानी गोर्दियम पर कब्जा कर लिया। यहाँ पर सेनापति को सिकन्दर के वापस किये हुए चार सहस्र सिपाही फिर मिल गये।

तटवर्ती शहरों और प्रदेशों को युद्ध के कगार से बचाता हुआ सिकंदर आगे बढ़ता गया। उसकी इस प्रकार की शीघ्रता करने मे एक बहुत पुरानी किंवदंती भी एक कारण थी। लोगो मे उस समय यह धारणा व्याप्त थी कि जो कोई व्यक्ति राजधानी गोर्दियम के प्रथम राजा द्वारा लगाई हुई गाँठ को खोल देगा वह समस्त एशिया का सम्राट हो जाएगा। सिकंदर ने उस गाँठ को गरजते हुए बादल और घुमड़ते हुए झंझावात मे खोलकर सबको आश्चर्य-चकित कर दिया। किंतु स्थल की इस जल्दबाजी मे भी एक रहस्य और छिपा था कि सिकंदर स्वयं सम्राट की जल-सेना का लोहा मानता था और किसी भी दशा मे वह तटवर्ती देशो मे उलझकर अपनी कठिनाई को बढाना नहीं चाहता था।

सत्य बात तो यह है कि सिकंदर का इस समय भाग्य साथ दे रहा था। परंतु सम्राट का प्रसिद्ध यूनानी सेनापति मेमनन जो सिकदर की अनुपस्थिति मे यूनानी टापुओं में शक्तिशाली सेना के साथ आया था। उसने आगे बढकर मकदूनिया और यूनान पर कब्जा करने का निर्णय किया। उसने एक झपट्टा में चिमोस पर आक्रमण करके उसे ले लिया। फिर शीघ्रता से वह मितिलीन की ओर चढ दौडा और जैसे ही मितिलीन का पतन होने को ही था कि वह बीमार पड गया और रणभूमि मे ही मर गया। सम्राट की सेना के लिये यह अपूर्णनीय क्षति थी। उसकी मृत्यु से सम्राट की जल-सेना एकदम उत्साह और प्रभावहीन होकर बिखरने लगी और अंत मे साइक्लेदीज के युद्ध मे जो परशु सेना आक्रमण के लिये गई थी वह हारकर लौट आई। यूनानी सेनापति मेमनन ने अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ से ठीक यूनान की नाक के नीचे स्पार्टा में जो विद्रोह करवा दिया था वह भी सिकंदर के सहायक ऐंटीपेटर द्वारा सन् ३३० ई० पू० में दबा दिया गया।

अब इसके पश्चात् यूनानी सेना कैपेडोसिया की ओर बढी। अभी तक तो सिकन्दर को क्षत्रपों से ही सामना करना पडा था किंतु अब वह समझ चुका था कि अबकी बार साम्राज्य की पूरी सयुक्त सेना के साथ ही उसकी टक्कर होगी। यह आशंका निर्मूल भी न थी; क्योकि आगे सम्राट की सेना युद्ध के लिये तैयार खडी थी। सिकदर एकदम आगे बढकर सिलसिया प्रान्त पर चढ़ दौड़ा और तारसस नामक प्रसिद्ध स्थान पर अधिकार कर लिया। उसी समय

एक ठंडे पानी की नदी में स्नान करने से यद्यपि वह बीमार भी पड़ गया था, किन्तु उसने शीघ्र ही स्वस्थ होकर अपने सेनापति Permenio (परमीनिम्रो) को सीरिया के द्वार पर अधिकार करने आगे भेजा व स्वयं उसके पीछे चल पड़ा। यहाँ पर सम्राट द्रु तृतीय स्वयं उसकी दो दिन से प्रतीक्षा कर रहा था।

सम्राट द्रु तृतीय ने यहाँ पर एक और भारी भयकर भूल की। यदि उसने यह भूल न की होती तो सारे संसार का इतिहास ही पलट गया होता। द्रु ने समझा कि इतना विलब हो गया है और सिकदर की सेनाएँ आती हुई दिखाई नही देती। अत उसने सोचा कि सिकदर लडाई लडने से कतरा रहा है ऐसा समझकर उसने अपनी सेना के तंबुओं को उखाडकर उत्तर की ओर कूँच कर दिया। यदि वह सामने से इस समय लड जाता तो स्थिति दूसरी होती। किन्तु सिकंदर के इरादे की सूचना बाद मे मिलने पर उसने उत्तर की ओर कूँच कर दिया फिर मुडकर सिकंदर के पृष्ठभाग मे अचानक जा पहुँचा। यहाँ पहुँचते ही उसने सिकंदर की उस सेना पर भीषण आक्रमण कर दिया। जिसे सिकंदर ने बीमार और अयोग्य समझकर पीछे छोड दिया था। सम्राट की सेना ने यहाँ इन सैनिको को मौत के घाट उतार दिया।

इसिस का युद्ध (३३० ई० पू०)

जब सिकदर को यह ज्ञात हुआ कि सम्राट की सेना ने पीछे से घेर लिया है तो वह बहुत बेचैन हो गया। उसने समस्त सैनिको को सम्बोधित करते हुए कहा कि "यह यूनानी देश की कृपा ही है कि उसने शत्रु को तंग पहाडी मे लाकर खडा कर दिया है। जैसा कि पहले दस सहस्र सूरमाओ ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था उसी प्रकार यह सेना भी यदि अपने शौर्य का प्रदर्शन करे तो सम्राट को उसकी बहुसख्या का लाभ न मिलेगा और तग दर्रे में द्रु की सेना यूनानियों के सामने टिक न सकेगी।" सेना के ऊपर इस युक्ति का चमत्कारी प्रभाव हुआ और अन्त मे इसस (Issus) नामक नगर मे इस युद्ध का निर्णायक दौर शुरू हो गया।

इस प्रकार संकीर्ण घाटी मे जिसके उत्तर-पूर्व मे पहाडी है और दक्षिण पश्चिम मे सिकंदरून की खाडी स्थित है, सम्राट की सेना से सिकन्दर की मुठभेड शुरू हुई। इस घाटी को विभिन्न इतिहासकारो ने दो मील चौडा लिखा है परन्तु कैलिस्थनीज ने जोकि सिकन्दर का एक साथी था इसे १४ स्टाडिका अर्थात डेढ मील चौडा माना है। सम्राट की सेना मे यूनानियो के अनुसार छः लाख सैनिक थे। जिसमे तीस सहस्र तो यूनानी किराये के सैनिक थे। ६० सहस्र कुर्दस लोग थे जिन्हे आज तक पहचाना नहीं जा सका कि वे किस देश के थे। सम्राट ने अपनी सेना को एशिया देश की आर्य-रीति के अनुसार वाम, दक्षिण

और मध्य भाग में बाँटकर व्यूह-रचना की थी। बीच में वह स्वयं उपस्थित रहकर लड़ाई का संचालन कर रहा था।

इधर सिकन्दर ने पीछे फिरकर अपनी सेना के दो भाग किये। दक्षिण बाजू की सेना का वह स्वयं संचालन कर रहा था। बाँये पार्श्व की सेना का भार प्रसिद्ध सेनापति पारमीनियो के सुपुर्द था। किन्तु जब सिकन्दर ने देखा कि सम्राट की दाहिनी सेना में यूनानियों का भी एक भाग तैनात है, तो उसने अपने वाम भाग में एक अतिरिक्त सेना को रखकर एकदम हमला कर दिया। 'इस प्रथम हमले मे ही' यूनानी इतिहासकारों ने लिखा है कि 'सम्राट की मध्य सेना की पंक्ति बिखर गई और सेना इधर-उधर भागने लगी। स्वयं सम्राट के रथ को उसके सारथी ने पीछे फिराकर सम्राट की जान बचाने को तेजी से भगा दिया। अन्त में लडाई की विकट मारामार से सम्राट ने रथ को भी छोड दिया और एक घोडे पर बैठकर वह भागा। बढती हुई यूनानी फौजो ने सम्राट के तंबू पर कब्जा करके उसकी माता, रानी व दो पुत्रियो को पकड लिया। जिनके साथ सिकन्दर ने बहुत अच्छा व्यवहार किया। इस युद्ध मे यूनानी सेना को करोडों रुपये का वेशकीमती सामान हाथ लगा। परन्तु असली खज़ाना तो आगे चलकर पारमीनियो को मिला जब उसने दमिश्क को लूटा।"

इस युद्ध से भविष्य की लडाइयों का क्रम ही बदल गया। अब एशियाई सेनाओ की पश्चिम की ओर निरन्तर विजयों का न केवल क्रम ही टूट गया वरन् यूनानियों की सेनाओं को पूर्व की ओर बढने का मैदान भी साफ़ हो गया। इसी कारण से यह लडाई इतिहास के पन्नों मे एक निर्णायक युद्ध के रूप में स्मरण की जाती है।

सन् ३३२ ई० पू० मे सिकन्दर ने टायर नामक ऐतिहासिक नगर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। किन्तु इसके पूर्व उसने ऐरेदस, सीदोन तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों को जीत लिया। इन राज्यो के लेने से फोनीशिया नामक संसार प्रसिद्ध जहाजी शक्ति की कमर तोड़ने का उसे अवसर मिल गया; क्योकि लगभग कई शताब्दियो से एशियाई सम्राट फोनीशिया की जलशक्ति के आधार पर ही पश्चिमीय देशों पर शासन करते चले आ रहे थे अत. सिकन्दर का फोनीशिया से शत्रु-भाव रखना उसका स्वाभाविक लक्ष्य था। इस आक्रमण से एक लाभ यह भी होता था कि इससे साइप्रस की अजेय शक्ति भी टूट जाती थी जोकि उस समय एक बडी जलशक्ति गिनी जाती थी।

फोनीशिया का प्रमुख केन्द्र स्थल टायर नाम का नगर था। उससे ईर्ष्या और प्रतिद्वन्दिता रखने वाले सीदोन राज्य के नष्ट होने से टायर की समृद्धि अपनी चरम सीमा पर थी। यह नगर समुद्री किनारे से आधा मील समुद्र के भीतर टापू के रूप मे था। उसके चारों ओर भयानक किलेबंदी थी। दुर्ग की प्राचीरों को

तोड़कर दुर्ग के भीतर घुसना कोई मामूली काम नहीं था। सिकन्दर के सैनिकों ने कई बार किले की दीवारों को तोडने का विफल प्रयत्न किया। अन्त में स्वयं सिकन्दर ने एक बार किले के एक बुर्ज पर पहुँचने में सफलता प्राप्त की। वह वहाँ से अपने जोशीले सैनिकों के साथ दुर्ग में भीतर कूद गया। इसके बाद भयंकर मार-काट प्रारम्भ हो गई। इसी बीच यूनानियो ने सीदोन तथा अन्य नगरो के फोनीशियन सैनिको को अपनी ओर फोड लिया। युद्ध के दौरान वह ८० जहाजों के साथ यूनानियों से आ मिले। इसी समय साइप्रस वाले भी १२० जहाजो के साथ आकर मिल गये। इन लोगो के देशद्रोही कार्यों के परिणामस्वरूप टायर की शक्ति शिथिल पड गई। किन्तु वे अन्त समय तक बहुत ही वीरता से लड़ते रहे। अन्त में ८००० टायर निवासी मौत के घाट उतार दिये गए, ३०,००० निवासियो को गुलाम बनाकर बेच दिया गया तथा स्त्री-बच्चों ने भागकर कार्थेज नामक नगर में शरण ली।

मिस्र पर आक्रमण (३३२-३३१ ई० पू०)

टायर के पतन के पश्चात् अब मिस्र देश की बारी थी। उसके प्रथम नगर गज पर आक्रमण किया गया। नगर पूरी तरह से सुरक्षित था। अतएव यूनानियों ने नगर के किले के चारो ओर २५० फीट ऊँचा मिट्टी का टीला बनाया जोकि १२० फीट लम्बा था। । इस टीले से नगर नीचाई में पडने लगा। इस प्रकार उस पर आक्रमण करके उसे धूल मे मिला दिया गया। इस नगर के पतन के साथ ही मिस्र के एशियाई क्षत्रप ने हथियार डाल दिए और यूनान की अधीनता स्वीकार कर ली। सिकन्दर ने मिस्री देवी-देवताओ के प्रति बहुत आदर-सम्मान प्रकट किया। वहाँ के निवासियो के साथ उसने बहुत ही मलमनसाहत का व्यवहार किया। मिस्र को जीतने के बाद उसने वहाँ के राजवंश के एक व्यक्ति को गद्दी पर बैठाया और वहाँ से वापस विदा होकर परशु साम्राज्य के मध्य हृदय में भयकर आघात पहुँचाने का दृढ सकल्प करके उसने पुनः टायर नगर की ओर कूँच कर दिया, जहाँ से वह परशु साम्राज्य के मध्य स्थित मर्मस्थल पर आक्रमण कर सके।

आरबेला (Arbela) का युद्ध (३३१ ई० पू०)

टायर से अब सिकन्दर फरात नदी की ओर बढा। उसकी अलग से सेना को उतारने के लिए वहाँ दो नौका पुल पहले से ही तैयार कर लिये गए थे। सम्राट की ओर से उस नदी के घाट की रक्षार्थ जो ३ सहस्र अश्वारोही सेना नियुक्त थी, उसने पहले ही हथियार डाल दिए थे। अतः बिना किसी भारी लड़ाई के सिकन्दर ने नदी पार कर ली। फरात नदी को पार करने के बाद सिकन्दर मेसोपोटामिया

(शाम) देश के उपजाऊ मैदानों से होता हुआ दजला नदी की ओर बढ़ता गया। फिर वह नदी के बाँये किनारे से नीचे असुर प्रदेश की ओर जिसे उस समय असुरिया कहने लगे थे, बढ़ा। यहाँ तक किसी भी एशियाई सेना से उसका कोई सामना नहीं हुआ। किन्तु गागेमाला के मैदान में आरबेला स्थान (जिस नाम से कि यह लड़ाई विख्यात हो गई) से ७० मील उत्तर-पश्चिम की दिशा में परशु सेनाएँ बडी संख्या मे एकत्रित होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

द्रु ने यह मुकाम बडी सावधानी से चुना था। क्योंकि उसे ज्ञात था कि यूनानी पहाड़ी लड़ाई मे बड़े कुशल होते हैं उसका पुराना अनुभव भी यही था। अतः उसने मैदान मे लड़ने की भारी तैयारियाँ की। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार उसकी सेना में समस्त साम्राज्य के १० लाख सैनिक तैयार थे। किन्तु यह सख्या गलत मालूम पडती है। संभवतः यूनानी लेखकों ने अपनी विजय को महान बतलाने के उद्देश्य से शत्रु सेना की संख्या बढ़-चढ़कर बतलाई हो। इस सेना का नियन्त्रण पूर्वी ढंग से हुआ था। जानकार इतिहास-सामग्री के अनुसार सबसे पहले इसी युद्ध में १५ हाथियों ने भी भाग लिया था।[१] द्रु ने यूनानियों से लड़ने के लिए जो व्यूह-रचना की उसमें दायें और बायें पार्श्व में अपनी प्रसिद्ध सेनाएं तथा मध्य भाग मे वह स्वय रहा। अपने आगे उसने अमर सैनिकों को तथा अपने सम्बन्धियों को रखा था। सम्राट के दोनों ओर वेतनभोगी यूनानियो की एक बडी सेना तैनात की गई। सम्राट के ठीक सामने हाथियो और ५० रथों को लिए प्रसिद्ध अश्वारोही सेना खडी थी। सेना की अधिकता से बहुत दूर-दूर तक लड़ाई का मैदान-ही-मैदान नजर आता था।

दूसरी ओर यूनानी सेना युद्ध के लिए तैयार खडी थी। दोनो सेनाओं में आपस की दूरी ७ मील की थी। अब सिकन्दर को दूरी तै करने के लिये केवल छोटी-छोटी कुछ पहाड़ियाँ ही शेष थी जो बिना किसी बाधा के तय कर ली गईं। सामने आर्य सेनाओं को देखकर और उसकी विशालता से सिकन्दर के मन पर आतंक छा गया, किन्तु उसने साहस को न खोया और अपने यह निर्णय करने के लिए युद्ध कैसे और कहाँ लडा जावे अपने प्रसिद्ध सेनापतियों की एक बैठक बुलाई। प्रसिद्ध सेनापति पारमीनियो की राय का चूँकि अधिक महत्त्व था अतः उसकी राय ही मानी गई कि उसी स्थान पर युद्ध लडा जाए और परशु सेना की गतिविधियों की जाँच की जाए। शत्रु सेना की अधिकता के कारण उसने रात्रि में आक्रमण का भी सुझाव दिया किन्तु यह कायरता माना जाकर सिकन्दर द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।

यूनानी सेना के पास विविध पलटनें थी, उनमें पदाति सेना की संख्या

१. सर पर्सी, पृष्ठ २५६

४०,००० तथा अश्वारोही सेना की संख्या ७,००० थी। उन्होंने अपनी व्यूह रचना भी पूर्वी ढंग से की। पारमीनिओ को वाम पार्श्व दिया गया जबकि बाँया पार्श्व स्वयं सिकन्दर ने सँभाला। सिकन्दर ने सम्राट के बाँये भाग पर एकदम आक्रमण कर दिया और उस स्थान तक जा पहुँचा जहाँ कि सम्राट अपने रथों के साथ स्थित था। इस पर दु ने अपने अश्वारोहियों को हमला करने का निर्देश दिया। इस भयंकर हमले से यूनानी सेना के पैर उखड़ गये। किंतु सिकन्दर ने साहस से काम लिया। उसने एकदम इन अश्वारोहियो की पंक्ति को बेधकर रथो पर आक्रमण कर दिया। यूनानियों के बड़े-बड़े नेजो ने रथो के घोड़ों की रासें काट डाली व सारथियो को मार गिराया। परिणामस्वरूप घोड़े बे-लगाम होकर रणभूमि मे इधर-उधर भागने लगे। यदि इस भयंकर युद्ध में एशियाई सेना के रथो का अश्वारोहियो ने धीरता से साथ दिया होता तो संसार का इतिहास दूसरा ही होता। परन्तु विशालसंख्यक आर्य-सेना इधर-उधर ही भटककर सम्राट को न बचा सकी। इस प्रकार युद्ध की बाज़ी को अपने हाथ से जाता देख कर सम्राट युद्ध स्थल से अन्य सुविधाजनक स्थान की ओर चला गया। उसके Scythe bearing chariot[1] भी सर्वथा असफल हो गये।

सम्राट के चले जाने के बाद भी लडाई की गति में कोई शिथिलता नहीं आई। क्योंकि युद्ध-क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होने से एक स्थान का समाचार दूसरे स्थान तक पहुँचना संभव नही था। सेनापति पारमीनियो पर एक साथ पार्थिव, भारतीय[2] और परशु अश्वारोही सेना ने आक्रमण कर उसे घेर लिया। यूनानी इतिहासकारो के लडाई के इस उल्लेख से पता चलता है कि भारतीय फौजें इस समय भी ससार की शूरवीर सेनाओ मे गिनी जाती थी और निज देश से सहस्रों मील दूर जाकर भी उन्होने युद्ध मे भारी ख्याति पाई थी। खेद है कि भारतीय शूरो के नाम का उल्लेख यूनानियो ने नही किया।

पारमीनियो के घिर जाने का समाचार शीघ्र ही सिकन्दर तक पहुँचाया गया। पारमीनियो ने अपने ऊपर आई भयंकर आपत्ति को दूर करने मे जो युद्ध किया उसमे यूनानी सेना की अब तक के युद्धों में हुई सबसे अधिक क्षति हुई। भारतीय अश्वारोही सेना उसे तथा उत्तरी सेनाओ को बार-बार घेरकर उन्हें भीषण मार से सन्त्रस्त कर रही थी। किन्तु जब तक सिकन्दर उसकी रक्षार्थ पहुँचा तब पारमीनियो की सेना पर से ग्रहण उतर चुका था और उसके प्रबल आक्रमण से परशु सेना का बाँया भाग टूट चुका था। यूनानियो के लगा-तार आक्रमण से परशु सेना मैदान से हटने पर बाध्य हो गई। अब सिकन्दर

१. हँसिये वाले रथ

२. सर पर्सी — फ़ारस का इतिहास, पृष्ठ २५८

ने इधर का ध्यान छोड़कर पुन: सम्राट का पीछा करना शुरू कर दिया। वह लड़ाई से ७० मील दूर तक सम्राट का पीछा करता आरबेला नामक स्थान तक जा पहुँचा, किन्तु सम्राट उसके हाथ न आया। यहाँ आकर सिकन्दर ने अपने थके हुए सैनिकों को विश्राम करने की आज्ञा दी और नई तैयारी मे व्यस्त हो गया। सिकन्दर के ठहर जाने से सम्राट को एकपत्तन नगर की ओर जाने का पूर्ण अवसर मिल गया और वह वहाँ पहुँच गया।

अब विजेता के सामने परशु साम्राज्य का विशाल वैभव चरणों पर खुला पड़ा था। इसके बाद सम्राट ने कभी भी मैदान मे आकर सिकदर का सामना करने की हिम्मत नहीं थी। सिकंदर के सामने वैभवशाली नगर सूसा और बेबीलोन का असंख्य द्रव्य पड़ा था। सिकंदर आगे बढ़ता जा रहा था और सम्राट भगोड़े की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर आश्रय स्थल खोजता फिरता था। इस आरबेला की लडाई के विषय मे नेपोलियन ने लिखा है कि "समस्त संसार के राष्ट्रों में और भविष्य की कई पीढ़ियों तक सिकंदर को ही इस गौरव को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति समझा जायेगा किन्तु यदि अपने घर से ८०० मील दूर जाकर अपने पीछे दजला, फरात और बडी-बडी मरुभूमियों को छोडता हुआ सिकदर आगे जाकर हार जाता तो क्या होता ?"[1]

बेबीलोन नगर मे घुसते ही वहाँ के निवासियो, पुजारियों द्वारा उसका भव्य स्वागत किया गया। क्योंकि यहाँ के नागरिकों ने सुन रखा था कि मिस्र देश मे सिकंदर ने मंदिरो का बड़ा सम्मान किया था। सिकदर ने यहाँ भी मंदिरों का सम्मान किया। सम्राट कुरु की भाँति उसने 'बेल के हाथ' लिये।[2] उसने यह भी आज्ञा दी कि परशु सम्राट क्षयहर्ष ने जिन मंदिरो को ध्वस्त किया था उनका पुनर्निर्माण कराया जाय। इससे बेबीलोन वाले बहुत ही प्रसन्न हो गये और उन्होंने सिकंदर को आगे पूरी-पूरी सहायता दी।

बेबीलोन की विजय के बाद सिकंदर सूसा की ओर बढ़ा। यूनानी लोगों की दृष्टि मे सम्राट की राजधानी सूसा ही मानी जाती थी। यहाँ उसके प्रसिद्ध

---

1. Creasy in "Battle of Arbela"
२. अंग्रेजी अनुवादको ने इस वाक्य को सदैव ऊपर कोमा लगाकर लिखा है। इससे प्रकट होता है कि 'बेल के हाथ लेने' की पद्धति को वे समझ नहीं पाये हो और उन्होंने यूनानी वाक्य को ज्यो का त्यो ही लिख दिया हो, किन्तु उस काल की परंपरा के अनुसार संभव है ऐसा हो कि प्राय. बड़े-बड़े व्यक्ति मंदिरो की दीवारो पर अपने हाथो की छाप लगाया करते थे जैसा कि आजकल भारत के मंदिरो में भी रिवाज है। अत. संभवत. सिकंदर द्वारा बेल के मंदिर पर अपने हाथो की छाप लगाने से ही यह अभिप्राय हो अथवा मंदिरो में ही ऐसे कोई हाथों के शक्ल के धातु के चिह्न रखे हों जैसे कि मुस्लिम काल में शाही सेना के साथ सोने की मछलियाँ व पंजा (हाथ) चला करते थे।

सेनापति एस चाइलस ने परशु की राजधानी को घेरकर लूटा। अगणित और प्रचुर धन के अतिरिक्त सिकंदर को यहां ५० सहस्र मुद्राएँ भी मिली। यदि यह मुद्राएँ सोने की होंगी तो उनका मूल्य आजकल तीस करोड़ रुपयो के लगभग रहा होगा। यहां से वह हर्मुद और अरस्तू जीतन की कांस्यमूर्तियों को भी उठाकर ले गया (जिन्हें कई वर्षों के बाद प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ऐरियन ने भी देखा था।)

यहां पर कई दिन सिकंदर ने आमोद-प्रमोद तथा सैनिकों के खेल-कूद में बिताये। अब उसने आगे बढ़कर परशु लोगों के ठीक घर मे जाकर उन्हें खदेड़ने का निश्चय किया और उस तरफ भारी सेना के साथ कूच कर दिया। इस समय उसकी सेना में १५ सहस्र और यूनानी सैनिक भी आकर मिल गये थे।

वर्तमान एहवाज नगर के पास उसने कारूँ नदी को पार किया और पेह् विहान के रास्ते से आगे बढा। यहां भी जंगली जातियो ने उसका मार्ग रोककर उससे निकलने की चुंगी मांगी जिस पर क्रुद्ध होकर सिकंदर ने अकस्मात आक्रमण करके उन्हे अपने घरो से खदेडकर भगा दिया।

पारमीनियो इस समय अपने प्रमुख सैनिकों के साथ आगे बढ़ चुका था उसने उस स्थान पर अचानक छापा मारा जहां परशु साम्राज्य का सेनापति तथा क्षत्रप उसके मुकाबले को तैयार खडा था। दोनो ओर से घमासान युद्ध हुआ। जिसमें सिकंदर की सेना की पूर्ण विजय हुई और परशु सेना भाग खड़ी हुई।

सिकदर ने और आगे बढ़कर कूर की ओर धावा किया। यहां उसने एक पुल बनवाकर अपनी सैना को उतारा और फिर परशुगढ पर अंतिम भयकर आक्रमण किया। यहां उसके हाथ अपार धन लगा। केवल नकद मुद्राओं के रूप मे ही उसे लगभग ३ करोड़ पौंड (४८ करोड़ रुपया) का धन हाथ लगा। चारो तरफ से परशु राजधानी मे आते रहे; इस धन पर कब्जा करने के बाद परशुगढ़ पर कब्जा कर लिया गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि इस विशाल संपत्ति को ढोने में दस हजार खच्चर गाडियाँ और ५ हजार ऊँटों का सहारा लेना पड़ा था। परशुपुरी (परसीपोलिस) के विशाल महलों मे आग लगाकर उन्हें ध्वस्त कर दिया गया। इसके पश्चात् राजधानी में उसने आम मारकाट की आज्ञा दे दी जिसके परिणामस्वरूप सहस्रों निरीह प्रजाजन भयकर यातनाओं द्वारा मारे गए। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ऐरियन के अनुसार सिकंदर द्वारा यहाँ परशु सम्राटो द्वारा यूनान पर किये गए हमले और अत्याचारो का ही बदला लिया गया। यहाँ पर उस समय के बनाये गये यूनानी कैदियो ने भी उस हमले के विरुद्ध भयंकर और बढ़ा-चढ़ाकर घटनाओं का वर्णन किया जिससे सिकंदर ने और अधिक क्रूर व्यवहार किया।

३३० ई० पू० में एक पट्टन (हमदान) विजय

बेबीलोन, सूसा, परसगढ, परसीपोलिस को जीतने के बाद अब केवल एक नगर जोकि सम्राट की ग्रीष्म राजधानी थी। एकपट्टन नाम का प्रसिद्ध शहर शेष रह गया था। सिकदर ने अपनी अपार सेना के साथ अब उस ओर धावा किया। सिकंदर को विश्वास था कि यहाँ परशु सम्राट युद्ध के लिये तैयार बैठा होगा। किंतु वह सिकंदर के आगमन की खबर सुनकर पहले ही वहाँ से अपने बीवी-बच्चों को लेकर कास्पियन सागर के तटवर्ती क्षेत्रों की ओर भाग गया। सिकंदर ने सहज मे ही एकपट्टन पर आधिपत्य कर लिया। सिकंदर ने इस स्थान पर कुछ दिन रुककर अपनी सेना का पुनर्गठन किया। थेसाली सेना के हाथ उसने करोडो रुपये की लूट का धन यूनान रवाना कर दिया। कहा जाता है कि उसे यहाँ एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ मिली जो करोडो रुपये-मूल्य की थीं। एकपट्टन साम्राज्य के बीचों-बीच मे होने के कारण सैनिक दृष्टि से सिकंदर के लिये एक बडे सैनिक अड्डे के रूप मे उसे बाद को काम मे लाया गया।

आर्यों की देशद्रोहिता

सन् ३३० ई० पूर्व में सिकंदर ने अपना पूरा प्रबंध कर लेने के बाद अपना ध्यान द्रु चूड़ामणि (द्रु तृतीय) की ओर आकर्षित किया। हमदान से रेई नगर जो उस समय रेग (Rhages) के नाम से पुकारा जाता था २०० मील दूर था। सम्राट इसी स्थान पर अपना शिविर डाले हुए पड़ा था। सिकंदर ने उत्तर की ठंड की परवाह न करते हुए उत्तर की ओर अपने सैनिको को कूँच करने का आदेश दिया। रेई मे सिकदर पाँच दिनो तक ठहरा रहा फिर वह तेहरान मशीद रोड पर पूर्व की ओर आगे बढा। यह मैदान उस समय तुर्वंष[1] (Taurus) कहलाता था। यहाँ परशु की कठिन मरुभूमि पडती थी, जिससे होकर वाल्हीक प्रदेश को एकपट्टन से मार्ग जाता था। यहाँ पर सिकदर ने सुना कि वाल्हीक के क्षत्रप विश, (Bessus) विलोचिस्तान जो उस समय Arachosia अरेकोसिया कहलाता था) के क्षत्रप (Barsaentis) वृषेण तथा अश्वारोही सेना के सेनापति नामार्जन (Naharzanes), तीनो ने सगठित होकर सम्राट द्रु को नजरबंद कर लिया है। इस समाचार ने सिकंदर का उत्साह द्विगुणित कर दिया और थकी हुई सेना को उसने दो और पडावो को पार करने का आदेश दिया। उसे समाचार मिला कि परशु सेना के सारे सैनिकों ने विश के इस देशद्रोही कार्य का समर्थन किया है किंतु वेतनभोगी यूनानियो ने इस निकृष्ट कार्य का अनुमोदन नही किया और वह मैदान छोड़कर चली गई है। अतः सिकंदर ने और दूने उत्साह से

१. Taurus—सर पर्सी, पृष्ठ २६२

पाँचवे पड़ाव को पार किया जहाँ उसे पता चला कि क्षत्रपो की सेना सम्राट को कैद किये हुए अभी-अभी यहाँ से निकली है। सिकंदर ने ५०० चुनींदा घुड़-सवारों को साथ लेकर पगडंडी के रास्ते से उनका पीछा किया। पचास मील तक पीछा करते रहने के बाद सूर्योदय के समय उसने इन लोगो को जा मिलाया। विश ने घबराकर आई विपत्ति को दूर करने के उद्देश्य से सम्राट को मार डाला किंतु वह उसकी लाश को साथ न ले जा सका। वह एक गाड़ी में ताजे घावों से खून बहती हुई लाश को छोड़कर भाग गया। सिकंदर ने पहुँचकर देखा तो एक महान् शक्तिशाली आर्यवंश जिसने दो सौ वर्षों तक निर्बाध रूप से ऐशिया के विशाल भूखंड पर राज्य किया था, का अंतिम शासक अपनी आखिरी साँस तोड़ चुका था।[1] इस प्रकार द्रु का करुणापूर्वक ढग से अंत हुआ।

सिकन्दर ने घायल द्रु को कहाँ प्राप्त किया इसका आज तक सही-सही पता नही चला। किन्तु इतिहासकारो के अनुसार रेई से दो सौ मील पूर्व की ओर दमगान नाम का स्थान ही वह स्थल बतलाया जाता है जहाँ द्रु ने अपनी अन्तिम साँस तोड़ी थी। बहुत से व्यक्तियों का यह खयाल कि यह स्थान शाहरुद हो सकता है ठीक नही है, क्योंकि रेई से शाहरुद २५० मील दूर है, जोकि पाँच पडाव और फिर पचास मील की एकदम यात्रा करने से कभी भी दो सौ पचास मील नही हो सकता। अतः तीस मील का एक-एक पडाव यदि माना जाय तो इस प्रकार १५० मील व ५० मील का निर्बाध पीछा करने से केवल दो सौ मील का फासला दमगान को ही उक्त स्थल ठहराता है।

कुछ भी हो, यह सिकन्दर के भाग्य का ही परिणाम था कि उसके महान् शत्रु की इस प्रकार अचानक मृत्यु ने उसके विजय पथ को और अधिक सहज कर दिया। यह और भी सौभाग्य रहा कि द्रु की मृत्यु का कलक उसके सिर पर न पडा। सिकन्दर ने बडे भव्य आयोजन के साथ परशुपुरी (परसीपोलिस) में सम्राट का अन्तिम संस्कार किया।

द्रु तृतीय की मृत्यु से यद्यपि पूरा परशु साम्राज्य सिकन्दर के आधिपत्य मे आ चुका था, परन्तु इससे उसकी संसार-विजेता बनने की आकांक्षा मे भी कमी नही हुई। अपितु दैव की अदृश्य शक्ति द्वारा उसे अपनी चमत्कारिक सफलताओं से उसकी विजय-भूख और बढ़ गई। दमगान से अब मकदूनियाँ की फौजें उत्तर की ओर वर्तमान मजनदिरान जो उस समय तवारिस्थान कहलाता था बढ़ी। यहाँ की राजाधनी तापुरी[2] थी। सिकन्दर का लक्ष्य हूर्षण, जिसे यूनानियों

---

१. सर पर्सी, भारत का इतिहास, पृ० २६२

२. तापुरी शब्द पर्सी ने भी लिखा है। यह नगर वर्तमान मजन देरन प्रान्त के पुराने प्रान्त तापुर स्थान या तबरिस्थान के अन्तर्गत था।

ने हरकैनिया राज्य कहा है को विजय करना था अतः उसने अपनी फौजों के तीन भाग कर दिये और हर्षण की ओर बढ़ चला। यह बहुत कठिन मार्ग था किन्तु सिकन्दर इस मार्ग से बढता ही चला गया और कश्यप सागर के तट-वर्तीय प्रदेश मे पहुँच गया। यहाँ हर्षण और पार्थ देशों के प्रांतपतियों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। यह दोनों प्रांतपति द्रु सम्राट के अन्तरंग सहयोगी व सेवक थे। हर्षण की राजधानी सद्रकर्ता (Zasracarta) में सिकन्दर की सब फौजें इकट्ठी हो गईं। यह सद्रकर्ता सम्भवत. वर्तमान अस्तराबाद है।[1] इस स्थान पर तापुरी के प्रान्तपति ने तथा पन्द्रह सौ वेतनभोगी सैनिकों ने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली। यही से सिकन्दर ने एक फौज की टुकड़ी भेजकर तापुरी के पश्चिम में स्थित वेमवत की निवासी मार्द जाति को पराजित किया और इस पराजित जाति को तापुरी के अधीन रहने का निर्देश दिया।

आर्यों के साथ दूसरा युद्ध (अर्तकोण का युद्ध)

ऐसा विदित होता है कि यह सद्रकर्त्ता स्थान सिकन्दर को बहुत पसंद आया था। यहाँ उसने अपनी सेना को पूर्ण विश्राम लेने का अवसर दिया। यूनानी पद्धति के अनुसार यहाँ बलि दी गई तथा देवताओ के सम्मान मे खेलो का आयोजन किया गया। प्रसिद्ध इतिहासकार आर्यन् ने लिखा है कि सिकन्दर यहाँ से पार्थ देश की ओर चलकर वहाँ से आर्य देश के सूसिया तुष अर्थात् (वर्तमान मशद) नगर की ओर बढ़ा। गुर्गन की उपजाऊ घाटी से उस दिशा मे दो मार्ग जाते हैं—एक नवदेह के रास्ते से आगे चलकर परशु तथा नादिन तक पहुँचता है और दूसरा गुर्गन के जगलो मे पहुँचता है। यह दोनों मार्ग कल्पोस के मैदान तक जाते हैं। कश्यप रुद्र[2] की घाटी को इसी मार्ग से पहुँचा जाता है। सूसिया अर्थात् तुष मे आर्य प्रान्त के क्षत्रप सत्यवर्द्धन (Satibarzenes) ने पहले तो अधीनता स्वीकार कर ली परन्तु उसके स्वाभिमान को यह चुनौती थी। अत. जब उसे पता चला कि द्रु के हत्यारे विश ने सम्राट की पदवी धारण कर अपना नाम आर्तक्षयहर्ष रख लिया है तो उसने उसके साथ अन्य छोटे-छोटे दुर्ग अधिपतियों को लेकर संघ की रचना की तथा इन दोनो (सत्यवर्द्धन और विश) ने अपनी

---

१. यह नाम भी शुद्ध संस्कृत है। प्राचीन काल में जहाँ-जहाँ आर्य संस्कृति का विस्तार हुआ, इस प्रकार के नामो का परिचलन हो गया। पूर्व देश में भी हिन्दोशिया की राजधानी सकर्ता या जकार्ता प्रसिद्ध है।

२. वर्सी ने इसे कशफरुद लिखा है।

संगठित सेनाओं के साथ सिकन्दर के एक सेनापति पर भयंकर आक्रमण किया और उसे परास्त कर मार डाला। जब सिकन्दर को यह मालूम हुआ तो उसने शीघ्र ही कूच करके इस संघ को उखाड़ने का संकल्प कर लिया। इसी बीच इन राजाओं ने उत्साहित होकर एक बड़ी सेना को इकट्ठा करना प्रारंभ कर दिया। अतः सिकन्दर ने बहुत तेजी से चलकर केवल दो दिन में सत्तर मील का मार्ग तै किया और शत्रु के मुकाबले में जा डटा। किन्तु सिकन्दर के आगमन की खबर सुनकर यह संघ टूट गया और उसे अर्तकोण स्थान पर हरा दिया गया। यह अर्तकोण का सही स्थान संभवतः हरिरुद्र नदी के किनारे पर रहा होगा। क्योंकि यहाँ पर सिकन्दर ने जो सिकन्दरिया नामक नगर बसाया वह हरिरुद्र के किनारे हिरात नगर के बिलकुल समीप में ही है। यह हिरात बहुत प्राचीन नगर था जिसकी नीव आर्य राजा लोहाश्व ने डाली थी। बाद में इसका गुस्ताश्व राजा ने विस्तार किया तथा ब्रह्मा राजा ने इसमें सुन्दर इमारतें बनवाई थी और सिकन्दर ने शेष रहा कार्य पूरा किया था।[1]

उपरोक्त युद्ध ने सिकन्दर की प्रगति को दूसरी दिशा में मोड़ दे दिया। राजा विश लडाई अवश्य हार गया था पर वह उत्तर की ओर फिर सैन्य संग्रह कर रहा था। अब उसने पूर्व दिशा की शक्तिशाली जातियों की ओर न बढ़कर दक्षिण दिशा मे बढना शुरू कर किया। दक्षिण में जरंग प्रदेश का क्षत्रप सम्राट द्र तृतीय का सहायक था किन्तु इस देशद्रोही ने द्र को मार डालने में साजिश की थी। अतः ऐसे शत्रु का अधिक समय तक भरोसा नहीं किया जा सकता था। दूसरे यदि वह आगे बढ़ जाता तो उस क्षत्रप द्वारा मध्य मे सिकन्दर को अपनी फौज का आधा भाग कट जाने का भी भय था अत. उसने उसको विजित करना निश्चय करके उधर कूच कर दिया। इस दक्षिणवर्ती प्रात जरंग प्रदेश[2] (जिसे यूनानियों ने जेरंगयाना अथवा द्राग्याना कहा है) की राजधानी फरा थी। यह नगर फरा नामक नदी के किनारे बसा हुआ था जोकि निश्चय ही हेलमंद नदी के डेल्टा पर था। सर हेनरी मैकमोहन की राय है कि आर्य प्रात की राज-

१. इसके विषय मे फारसी मे कहावत है—'Lohasp laid the foundation of Herat, Gustash on them raised a super structure. After him Bahman constructed the buildings and Alexender of Rum completed the task"

२ हरिवंश पुराण मे काल यवन के साथ जो-जो पश्चिम देशीय राजाओं की सूची दी गई है। उसमे एक 'अगल' देश के राजा का भी उल्लेख है। ऐसा मालूम पड़ता है कि 'अगल' से बिगडकर जरग शब्द बन गया है। इसी प्रकार विष्णु पुराण में जम्बू द्वीप में सुमेरु के ऊपरी भाग को अगी देश बतलाया गया है। जो जरग शब्द का ही मूल रूप है।

बस्ती आर्यंस टामरुद्र के खडहरों पर ही बनी हुई है।[1]

अब सिकन्दर परशु के ठीक दक्षिणी भाग तक पहुंच चुका था। लूट प्रांत का एक भाग यहाँ से शिष्यतान (Sistan) (शिष्यस्थान) को करमान से अलग करता है। यहाँ से आगे बढ़कर पूर्व की ओर सिकन्दर अराकोशिया (बलूचिस्तान) में बढ़ा और उसने संभवत. गिरिश्क के पास नदी को पार किया और कंदहार के समीप पहुँच गया।

पश्चिमी देशो के इतिहासकारों ने सिकन्दर की ऊँची प्रशस्ति मे कभी-कभी असत्य को सत्य दिखलाने का यत्न किया है। सर पर्सी ने गाधार के बिगड़े हुए अपभ्रंश कदहार नाम पर से यह अटकल लगाया है कि यहाँ सिकन्दर ने अपने नाम से एक नगर बसाया था। सम्भवत. उसी सिकन्दर का बिगडा हुआ स्वरूप अब कदहार रह गया है।[2]

हर्षण (हरकोनिया) पहुँचने के लिए काबुल के उत्तरी भाग का मार्ग सिकन्दर ने पहले ही पकड़ लिया। अब उसने उस मार्ग मे आगे बढकर वर्तमान हिन्दूकुश[3] पर्वत को पार करके चरिकार गाँव के पास एक नया नगर बसाया। यहाँ पर उसने लगभग बीस हज़ार पैदल तथा ३००० अश्वारोहियों को बसा दिया। क्योंकि अब उनका इस दूर प्रदेश से वापस जाना संभव नही था। एक तरह से इस मध्य ऐशिया मे यह एक यूनानी बस्ती ही बन गई थी।

भारत के उत्तरी राज्यों पर विजय

सिकंदर ने हिन्दूकुश पर्वत को बडी कठिनाई से पजशीर के दर्रे से पार किया। अत्यंत ठड और कडाके की सर्दी ने उसके सैनिको को भारी हानि पहुँचाई। यह दर्रा ११,६०० फीट की ऊंचाई पर था जबकि दूसरा दर्रा कुशण १४, ३०० फीट की ऊँचाई पर स्थित था। यूनानी सेना अफ़गानी तुर्किस्तान तक आगे बढती चली गई और उसने परशु साम्राज्य के वैभवशाली भाग वाल्हीक प्रदेश पर बिना किसी बाधा के आधिपत्य कर लिया। यह वही प्रसिद्ध देश था जहाँ कि परशु धर्म के जरस्थु ने जन्म लिया था। यहाँ सिकन्दर ने अवर्णव नगर पर आधिपत्य कर लिया। यहाँ से उसे बलख नगर को लेने में कोई कठिनाई प्रतीत नही हुई और उस पर भी उसका अधिकार हो गया।

बलख के पतन हो जाने के बाद राजा विश के लिये अब कोई मार्ग शेष

---

१. 'जर्नल रायल जियोग्राफीकल सोसाइटी' का सन् १६०६ का सितम्बर अक।

२. सर पर्सी, पृष्ठ २६७

३. यूनानी आक्रमणों के समय हिन्दुकुश को हिन्दू-नाशक अथवा यूनानी भाषा मे पेरोपेनीसस कहा गया है।

नहीं रह गया। क्योंकि उसकी अधिकांश सेना इसी प्रदेश की थी। अतः उसने वक्षुस[1] नदी के किनारे से भागने की सोची, परन्तु सिकंदर बराबर उसका पीछा करता रहा और खालों की नावों में भुस भरवा उसने अपने सैनिकों को नदी के पार उतारा। परन्तु विश को उसके एक साथी श्वेतमान (Spitamenes) ने जो सुग्दियन सेना का सेनापति था ने पकड़ लिया और उसे एकपट्टन नगर में फांसी पर लटका दिया। इस प्रकार सिकन्दर के एक और शक्तिशाली विरोधी का अन्त हो गया।

अब सिकन्दर ने मारखड की ओर बढ़ना शुरू किया। यह मारखड[2] अब समरकंद कहलाता है। यहाँ उसने परशु साम्राज्य की पूर्वी सेनाओं को हराकर क्षीर[3] दरिया को पार किया व अपने नाम पर उस नदी के किनारे एक शहर बसाया जो बाद में खोजन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[4] सिकन्दर की सेना अपनी जन्मभूमि से कितनी आगे बढ आई थी यह पता इस तथ्य से लग सकता है कि खोजन्द ५० डिग्री देशांश पर स्थित है। अर्थात् यूनान से ३५०० मील दूर सिकंदर की सेनाएँ आ चुकी थी। उन दिनो में मार्ग की कठिनाइयों और रसद के आवागमन के दुर्लभ साधनो द्वारा यह प्रगति अत्यन्त विस्मयजनक कही जासकती है।

जब सिकन्दर इस प्रगति मे उलझा हुआ था तो उसी समय उसे पता लगा कि श्वेतमान ने भी विद्रोह का झंडा खडा कर दिया है और उत्तर की ओर उसके साथी सीथियन लोगो ने सिकन्दर की सेना पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस कर डाला है। इतना ही नहो स्वयं श्वेतमान ने सिकन्दर की उस यूनानी सेना को घेरकर टुकडे-टुकडे कर डाला जो समरकन्द के घेरे को उठाने के लिये तुरन्त ही भेजी गई थी। यूनानी सेना के सामने इस समय भीषणतम सकट था। अभी तक उसे ऐसी कठिनाइयो का कही भी सामना नहीं करना पड़ा था। किन्तु सिकन्दर ने हिम्मत नही हारी और स्वय सेना का नेतृत्व करते हुए उसने पूरी घाटी पर आक्रमण कर दिया। भयकरतम लडाई के बाद उसका विनाश कर दिया गया। वहाँ से वह सारिअश्व नगर (Zariasp)[5] सभवतः बलख को लौट आया। यहाँ पर उसे यूनान से आई ताजा कुमुक भी मिल गई जिसकी उसे अत्यन्त ही आवश्यकता थी।

---

१ Oxus नदी

२. सरपर्सी ने इसे मारखड या (Maracanda) ही लिखा है।

३. Jaxartes का क्षीर दरिया ही इतिहासकारों ने लिखा है।

४. बनीमेट ने लिखा है—"उत्तर में आगे बढ़कर सिकदर ने Gaxartes नदी तक अपना बढ़ना जारी रखा और उर्तुबेह (Cyropolis) कुरुपुरी को लेकर वहाँ सिकदरिया बसाई जिसे अब खुजानदेह कहा जाता है।"

५. एच० जी० रावलिसन ने अपने इतिहास 'बैक्ट्रिया' में इस नगर को बलख माना है। (पृष्ठ १०-१२)

अब उसने फिर समरकंद को जीतने का विचार किया। अतः वक्षुस नदी को उसने फिर पार किया। जब वह समरकंद की ओर बढ़ रहा था तो श्वेतमान ने बिजली की तरह झपटकर अचानक सारिअस्व पर आक्रमण कर दिया। किन्तु वह सिकन्दर के सेनापति क्रेटीरस के सामने ठहर न सका। अन्त में दूसरे आक्रमण की तैयारी मे उसकी सेना ने ही उसको पकड लिया और उसका सिर काटकर सिकन्दर के पास भेज दिया और फिर शांतिसंधि के लिये प्रार्थना की।

उपरोक्त घटना से पता चलता है कि यूनानी सेनापतिओ ने सुगद सेनाओ को किसी प्रपंच से अपनी ओर मिला लिया था और ठीक मौके पर उनकी सेनाओं मे बगावत करा दी। यह सब यूनानियो का ही प्रपंच था। यह इस तथ्य से पता चलता है कि सुगद सेनाओं को अपने नेता का सिर काटकर सिकन्दर के पास भेजने की क्या आवश्यकता थी। तब भी पूरे घटनाचक्र को देखने से यह तो पता चलता है कि श्वेतमान आर्य राजाओ में निश्चय ही एक वीर योद्धा था। वह बुद्धिमान तथा तत्क्षण बुद्धिवाला व्यक्ति था। सिकन्दर के महान अभियान में उसे किसी भी ऐसे बलशाली और दृढ निश्चयी शासक से पाला नहीं पडा था जैसा कि श्वेतमान था।[१] श्वेतमान की सेना मे विद्रोह कराकर उसे इस प्रकार कत्ल करा देना सिकन्दर के शौर्य पर कलंक है।

अब सिकन्दर को सुगद जाति का किला लेना शेष था। इस किले के बारे में ऐसी जनश्रुति थी कि वह समीप की एक शिला पर से ही जीता जा सकता है। परन्तु उस शिला पर मानव जाति का कोई जीव चढ़ ही नही सकता। केवल पंख वाले आदमी ही चढ सकते हैं। सिकन्दर ने उस पहाडी पर चढ़ने के लिए पारितोषिक घोषित किये। उसके सैनिको ने चट्टानों मे खेमे गाड-गाडकर उस पहाडी पर चढ़ना शुरू कर दिया और अन्त में वे उस पर चढने में सफल हो गये। जैसे ही सुगद लोगों ने देखा कि पहाडी पर यूनानी सेना चढ़ गई है किले की रक्षार्थ सेना ने त्वरित हथियार डाल दिये। किले मे पाये गये शरणार्थियों मे oxyartes वक्षुअर्थ नाम के शासक की अत्यन्त लावण्यमयी पुत्री रक्षिणा (Roxana) भी थी जिसके साथ बाद मे सिकन्दर ने विवाह कर लिया। सिकन्दर ने अब अगला जाडा (सन् ३२८-३२७) को समरकंद और वक्षुस नदी की उपजाऊ घाटी में नवतक नामक स्थान पर बिताया। इस नवतक को अब करशी कहा जाता है। यही रहकर सिकन्दर ने अपनी शेष विजयों को पूरा किया और यहीं से उसने वदख्शा की पहाडी जाति 'पराइतक' को जीत कर अपने आधीन किया।

---

१. Sir Percy ने श्वेतमान के लिए most energetic of Alexender's opponent लिखा है। (पृष्ठ २६८)

१०

भारत पर आक्रमण (३२७ ई० पू०)

सिकन्दर लगभग दो वर्ष तक ठहरकर युद्धप्रिय जातियों को दबाने में लगा रहा। भारत के विषय में उसने कई आश्चर्यजनक कहानियाँ सुन रखी थीं। अतएव वह भारत पर आक्रमण के लोभ को संवरण नहीं कर सका। इस समय उसके पास छटे हुए १ लाख २० हजार यूनानी सैनिक थे। अतः सन ३२७ ई० पू० में उसने हिन्दूकुश को पार करके निकइया (काबुल) पर आक्रमण किया, जहाँ के शासक तक्षशील ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

ऐसा मालूम पडता है कि निकइया नगर और राजा तक्षशील के नामों में पश्चिमी विद्वानों को कुछ भ्रम हो गया है। क्योंकि काबुल का प्राचीन हिंदू नाम वहाँ की प्रसिद्ध नदी कुभा के नाम पर कुभा ही पाया जाता है। निकइया उसके पास में कोई अन्य नगर रहा होगा और यह नगर भी तक्षशिला के राजा के अधीन रहा होगा। राजा का नाम तक्षशील भी उचित दिखाई नहीं पडता। सिकन्दर ने यहाँ से अपनी फौज का मुख्य भाग हैफिस्टियन के नेतृत्व में पुष्कलावती की ओर भेजा जो कि संभवतः पुरुषापुर अथवा वर्तमान पेशावर के उत्तर में रहा होगा। यहाँ की लड़ाई में सिकन्दर ने विजय प्राप्त की। यहाँ बहुत ही भयंकर संग्राम हुआ मालूम होता है। क्योकि इसी युद्ध मे कंधे में नेजा और पाँव मे तीर लगने से सिकन्दर भयकर रूप से घायल हो गया था। किन्तु यह ख़याल कि इस नगर को कोई नही जीत सकता सर्वथा निर्मूल हो गया।

सिकन्दर की फौजें अब निशा Nysa की ओर बढी। इस नगर के बारे मे उसने वहाँ के निवासियों से सुना कि इस नगर के निवासी यूनानी देवता द्यौ (Dionysus) की सन्तान हैं। यह जानकर सिकन्दर को बहुत प्रसन्नता हुई। वह यहाँ ठहरकर बलि-होम आदि में रत हो गया तथा निवासियों के साथ उसने बहुत अच्छा व्यवहार किया।

इसी बीच हैफिस्टियन अटक के पास सिन्धु नदी के किनारे पहुँच गया। वहाँ नावों का पुल बनाया गया और उसे सिकन्दर के आगमन के लिए तैयार

रखा गया। तक्षशिला के राजा ने बहुत से हाथी तथा अश्वरोही सेना; बैल, खच्चर और सात सौ सैनिक सिकन्दर की सहायता के लिये भेजे और उसने युद्ध की तैयारी के लिए तक्षशिला को भी दे दिया। इस सामरिक जगह को पाकर सिकन्दर बहुत प्रसन्न हुआ और भारत पर आखिरी और बड़ा आक्रमण करने की तैयारी में दत्तचित्त हो गया।

आर्य सम्राट पुरु के साथ युद्ध (३२६ ई०)

तक्षशिला मे थोडी-सी सेना को छोडकर शेष यूनानी सेना सिकन्दर के नेतृत्व मे आगे बढ़ी। सिकन्दर को सूचना मिली कि महान् सम्राट पुरु की सेना अपरिमित है तथा उसके पास हाथी एवं अश्वारोही सैनिक और रथों की काफी सख्या है। इसलिए उसकी हिम्मत पुरु पर आक्रमण करने की नही हुई। नदी के उस पार पुरु की विशाल सेना साफ-साफ़ दीख रही थी। अतः इस अवसर पर सिकन्दर ने बुद्धि-कौशल से शत्रु को धोखा देना उचित समझा। उसने रात के अँधेरे में सेना के पड़ाव से सत्रह मील ऊपर झेलम नदी के जंगली टापू पर अपनी सेना को उतार दिया। जंगल की अधिकता से सेना के इस समूह को पुरु सेना नहीं देख सकी। संयोग से इसी समय नदी मे भारी तूफान आया और वर्षा हो गई। परन्तु सिकन्दर ने बडी चालाकी से सेना के कुछ भाग को नदी के दूसरे किनारे पर उतार दिया। किन्तु यहाँ पुरु के सैनिक जासूसों से वे अपने को न बचा सके और तुरन्त ही पुरु को इसकी गतिविधियों का पता चल गया।

किन्तु यहाँ स्वयं यूनानियो ने बडा धोखा खाया; जिसे वे नदी का दूसरा तीर समझ रहे थे; वह नदी के बीचों-बीच एक टापू मात्र था। यहाँ से प्रमुख किनारे को जाने के लिए एक और भी तेज धारा पड़ती थी। सिकन्दर ने बड़ी मुश्किल से इसको पार किया। नदी के किनारे पर सम्राट पुरु के बड़े लडके के नेतृत्व में रथी सेना का एक भाग दो सहस्र सेना के नेतृत्व मे युद्ध के लिए तैयार खडा था।[1]

पुरु ने अपना व्यूह बड़ी योग्यता से बनाया। उसने सौ-सौ पग के बाद सबसे आगे की लाइन मे दो सौ हाथियों की कतार खड़ी कर दी। क्योंकि उसे हाथियों की अजेयता का पूरा विश्वास था। इस हाथियों की सेना के पीछे तीस सहस्र शूरमा तैनात थे। रथपतियों और अश्वारोहियों को उसने अपने दोनों ओर स्थित कर लिया।

सिकन्दर से यह तथ्य छिपा हुआ नहीं था। वैसे भी पानी, वर्षा और भयंकर आँधी की मार से उसके सैनिक थके हुए थे। उनका अब हाथियों के

१. हेरोडोटस

सामने टिकना अत्यन्त ही कठिन कार्य था। यह सब समझकर उसने अपना व्यूह बदल दिया। उसने हाथियों के सामने की लाइन पर आक्रमण न करके अपनी प्रसिद्ध अश्वसेना को पुरु के वामपार्श्व पर आक्रमण करने का निर्देश दिया। उसने 'कोईनस' सेनापति के नेतृत्व में एक टुकड़ी को यूनानी सेना के दाँये भाग में कार्य करने की आज्ञा दी[1] और आदेश दिया कि वह शत्रु सेना पर आक्रमण करके उन्हें खूब तंग करे और पहले अश्वारोही सेना को ही आगे बढ़ने का अवसर दे।

पुरु की सेना को अपने पिछले भाग में ही यूनानी सैनिको की इस गतिविधि का पता लग गया। किन्तु इसी बीच में यूनानियों की अश्वारोही सेना ने एकदम आक्रमण कर दिया। भारतीय फौजों को अब मुकाबला करने की अपेक्षा हाथियों के संरक्षण में लड़ने की आवश्यकता प्रकट हुई और वह उस ओर बढ़ी। सिकन्दर की दाईं फौज भी अब उस ओर बढ़ी किन्तु हाथियो की मार से वह त्रस्त हो उठी। वह घबड़ाने लगी। इसी बीच में भारतीय अश्वारोही सेना ने यूनानियों पर आक्रमण किया किन्तु यूनानी अश्वारोहियों ने उन्हें हाथियो के पास तक आ धकेला। इस समय बहुत से हाथी घायल होकर अंधाधुंध आक्रमण कर रहे थे। किन्तु इस मारामार में वे शत्रु और मित्र की पहचान न कर सके। यूनानी अश्वारोही अवसर-अवसर पर रुक-रुककर पीछे हट जाते थे तथा फिर आगे बढ़कर आक्रमण कर देते थे। अन्त में जब हाथियो ने आक्रमण करना बंद कर दिया तो इसी बीच क्रेटीरस के नेतृत्व मे झेलम को पार करके नई यूनानी कुमुक युद्ध-क्षेत्र मे आ धमकी जिसके कारण भारतीय सेनाएँ पीछे हटने पर विवश हो गईं।

सर पर्सी ने लिखा है, "सम्राट पुरु एक विशाल हाथी पर बैठा हुआ युद्ध में अत्यन्त शूरवीरता के साथ लड़ रहा था। वह अदम्य साहस और उत्साह के साथ उस समय तक भयंकर युद्ध करता रहा जब तक कि उसकी पूरी फौज मैदान से ओझल नहीं हो गई। जब वह बन्दी बनाकर सिकन्दर के सामने लाया गया तो सिकन्दर ने पूछा, "आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाये।" उसने बड़े साहस और दर्प के साथ उत्तर दिया, "राजाओं की भाँति।" फिर सिकन्दर ने दुबारा पूछा, "क्या आपको और कोई प्रार्थना करनी है।" पुरु ने निडरता से फिर उत्तर दिया, "राजाओं की भाँति के व्यवहार मे सब शब्द आ गये हैं।"[2]

इस लड़ाई में सिकन्दर को महान् सफलता मिली। इस युद्ध के बारे मे सिकन्दर बहुत ही सशंक और भयभीत था। क्योंकि अभी तक के सारे आक्रमणों में ऐसे बलशाली शत्रु से उसे कहीं सामना नहीं पड़ा था। हाथियों का विशाल निर्मित दुर्ग सबसे पहले उसे यहीं देखने को मिला था। इस युद्ध की गंभीरता

---

१. Plutarch
२. सरपर्सी, पृष्ठ २७२

का पता केवल इस तथ्य से चल जाता है कि जब उसके एक सेनापति क्विटस कर्टियस ने स्वयं सिकन्दर से कहा था, "यहाँ पर मुझे एक भयंकर खतरा दिखाई पड़ रहा है जिससे मेरा साहस क्षीण होता जा रहा है। यहाँ एकदम जंगली जंतुओं से पाला पड़ा है और जिनसे मुकाबला करना है वह किसी असाधारण धातु के बने मनुष्य हैं।"[1]

इन शब्दों से इस युद्ध की भयंकरता पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

यूनानी सेना विजय के पश्चात् भी अत्यन्त निराश हो गई थी ; क्योंकि भारतीय शूरवीरों ने भयकर हानि के बाद भी अपने महान् शौर्य का अभूतपूर्व चमत्कार दिखलाया था।[2] सिकन्दर ने अपनी सेना को निकइया में छोड़कर भारी मानसून में चिनाब और रावी को पार कर लिया और वह व्यास नदी के किनारे तक पहुँच गया।

यूनानियों को जब यह पता चला कि इस पुरु राजा से भी बढ़कर बलशाली और अपरिमित शक्तिवाले राज्य आगे की ओर हैं जिनके पास युद्ध-हाथियो की संख्या अपार है, तो उन्होने सलाह-मशविरा करना शुरू कर दिया। इन मंत्रणाओं में प्राय: सारे वक्ताओं ने इस बात पर बल दिया कि सेनाएँ बिलकुल थक चुकी हैं और अब आगे बढ़ने को बिलकुल तैयार नही हैं। सिकन्दर ने सेनाओ को बड़ी वीरता-भरे शब्दों से संबोधित किया किन्तु वे व्यर्थ सिद्ध हुए। कोईनस नाम के सेनापति ने युद्ध-स्थल की ही मीटिंग मे सिकन्दर को साफ़-साफ़ बतला दिया, "कि मनुष्य की तृष्णाओं और विजय की कहीं सीमा भी होनी चाहिये। यूनान से जितने सैनिक चले थे वे सब प्राय: मारे जा चुके हैं और उनमें से अब एक भी शेष नहीं बचा है, किन्तु यदि सिकन्दर पूरी पृथिवी को जीतने की अभिलाषा करता है तो उसे पहले अपने घर लौटकर वहाँ विजय-दिवस मनाना चाहिये और फिर सेना की नई भरती करके आगे बढना चाहिये।"[3] सिकन्दर ने बड़ी गंभीरता किन्तु उद्विग्न मन से इस वक्तृता को सुना और जब सभा समाप्त हो गई तो वह उठकर चला गया। वह तीन दिन तक अपने खेमे से बाहर नहीं निकला इस उम्मीद पर कि कदाचित उसके सैनिकों का फिर हृदय-परिवर्तन हो जावे। परन्तु जब कुछ नही हुआ तो उसने फिर बलि चढाकर भविष्यवाणी माँगी। किन्तु भविष्यवाणी उसके विपरीत गई अत: अब सेना को वापस जाने का आदेश दिया गया। आदेश मिलने के बाद तत्काल सेना के लोग खुशी मे नाचने लगे और तरह-तरह के उत्सव मनाये जाने लगे। देवताओ के सम्मान में १२

1. Quintus Curtius.
2. Arrian ने इसे स्वीकार किया है।
३. सर पर्सी, पृष्ठ २७१

यज्ञ-वेदियाँ निर्माण की गईं जिनमें बार-बार देवताओं को धन्यवाद दिया गया। इसके पश्चात् सेना रावी की ओर बढ़ी; लाहौर के पास नदी को पार किया। चिनाब को वजीराबाद के पास पार किया। सिकन्दर ने झेलम के पास पहुँचकर आठसहस्र आदमियों को भेजने के लिये बड़े-बड़े बजड़े तैयार कराये और जब वे तैयार हो गये तो सेना ने वापसी का अभियान आरंभ कर दिया।

क्लीमेंट ने लिखा है कि जब सिकन्दर सतलज तक बढ़ गया तो पुरु और तक्षशिला के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। काबुल और सिंधु-रुद नदी के बीच में एक नये राज्य का शशिगुप्त (Sisicottus) के नेतृत्व में उदय किया गया और अवर्ण के किले (जिसे अब रानीगढ़ कहा जाता है) को राजधानी बनाया गया। चूँकि माली के किले पर आक्रमण के समय सिकन्दर गंभीर रूप से घायल हो गया था। अतः उसने Musicanus की राजधानी को संपूर्ण रूप से नष्ट करके उन ब्राह्मणों को जिन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह उकसाया था, फाँसी पर लटकवा दिया।

३२६ ई० पू० मे शिशिर ऋतु में यह क़ाफिला झेलम नदी के किनारे से वापस लौटा। यहाँ से समुद्र ६०० मील दूर पड़ता था अतः समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते एक वर्ष लग गया। अब यहाँ सेना के दो भाग कर दिये गए। एक भाग को तो समुद्र द्वारा लौटने का आदेश दिया गया और दूसरा समुद्र के किनारे-किनारे भूमि के रास्ते द्वारा जाना तय किया गया। समुद्र के रास्ते से जानेवाली सेना नियरकस नाम के सेनापति के अधीन कर दी गई जबकि भूमि सेना सिकन्दर के नेतृत्व मे चली। चिनाब पार करने के बाद सिकन्दर ने मल्लों से युद्ध किया और उनकी राजधानी संभवतः (मूल स्थान) मुलतान पर आक्रमण कर दिया। किले के भीतर वह केवल तीन साथियो के साथ घुस पड़ा, परन्तु यहाँ वह इतनी बुरी तरह घायल हुआ कि सेना ने समझ लिया कि वह युद्ध मे मर गया। सिकन्दर ने अच्छा होने पर फिर कोई अभियान नही छेड़ा। संभवतः उसे और उसके साथियों को भारतीय शूरवीरता का पूरा-पूरा पता चल गया था। यहाँ उसने अपनी सेना के फिर दो भाग किये। घायल सैनिको और हाथियों को उसने फारस के रास्ते से भेजा। यह सेना प्रसिद्ध क्रेटीरस के अधीन कर दी गई। सिकन्दर स्वयं समुद्र के रास्ते से आगे बढ़ा।

सन् ३२५ ई० पू० मे वह मकरान के रास्ते से सिंधु से लेकर सूसा तक बढ़ता चला गया। मार्ग में बलोचिस्तान से होते हुए उसने अर्बु नदी (वर्तमान पुरली) को पार किया; फिर उरैती (उर्वतु) प्रांत के पूर्व तरफ से आगे बढ़ा। इसी तरह वह कभी समुद्र, कभी किनारे से बराबर आगे बढ़ता गया। आगे रासमलान पर्वत के कारण उसे फिर भीतर घुसकर चलना पड़ा। यहाँ की मरुभूमि में सेना को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। वहाँ से वह पुर (जोकि बिलोचियो द्वारा परहा व

फारसियों द्वारा पहुवाज कहलाता है) होता हुआ आगे बढ़ा। बामपुर नदी को पार कर वह कुछ दिन तक वहाँ ठहरा रहा और अपने परशु क्षत्रपों से मुलाकात करता रहा। पुर से वह सलिलरुद्र नामक नदी के संगम पर पहुँचा जो अब रुदवार जिले मे पड़ता है। यहाँ उसने सिकंदरिया नाम का एक नगर बसाया जिसे अब गुल आर्शकिद कहा जाता है। यहाँ समुद्री रास्ते से भटकते हुए अत्यन्त करुण दशा मे उसका मित्र नियरकस उससे आकर मिला। उसे ऐसी दशा में देखकर उसे बहुत रंज हुआ। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि समुद्री बेड़ा पूरी तरह सुरक्षित है तो उसे अपार हर्ष हुआ।

सलिलरुद्र की घाटी मे क्रेटीरस फिर आकर मिल गया। अब सब सेनाएँ बहुत खुशी-खुशी आगे बढ़ी परन्तु नियरकस फिर समुद्री रास्ते के लिये चला गया। सिकन्दर थोड़े से सैनिको के साथ सिरजन तथा भावनाथ होता हुआ पसरगढ़ की ओर चल पड़ा जहाँ उसे कुरु या कुरुष की समाधि को टूटा हुआ देखकर बहुत दुःख हुआ। इसके बाद सिकन्दर कारुन नदी पार करके अन्य सैनिको के साथ सूसा नगर मे पहुँच गया। सन् ३२४ मे वह बगदाद के ऊपर के भाग पर स्थित ओपिस (opis) नामक नगर मे जा पहुँचा।

यहाँ उसने यह समझकर कि अब यूनान के समीप आ ही गये हैं, पुराने यूनानी सैनिको को बड़ी-बड़ी खिलअत देकर रवाना करने का विचार किया। उनकी जगह परशु देश के बड़े-बड़े लड़ाकू योद्धाओ को रख लिया गया। यह देखकर सेनापतियो ने उसके विरुद्ध बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया। परन्तु सिकन्दर ने निर्दयता से उन सबको मरवा डाला। शेष व्यक्तियो को माफी माँगने पर क्षमा कर दिया गया।

सिकन्दर अब मेद और लूरिस्तान को पार कर बेबीलोन जा पहुँचा। यहाँ उससे मिलने पश्चिम जगत् के बड़े-बड़े राजदूत आये। जिन्होने उसका बड़ा सम्मान किया। बेबीलोन मे बेल के पुजारियो ने उससे शहर में न घुसने की प्रार्थना की परन्तु उसने उस प्रार्थना को ठुकरा दिया और भीतर शहर मे जाकर हर्ष-उल्लास मनाने मे काफी समय बिताया। किन्तु यहाँ भी उसकी लालसा शांत न रही। उसने फोनीशियस के नेतृत्व मे एक बड़े जहाजी बेड़े का निर्माण कराया ताकि वह अरब देश पर भी आक्रमण कर सके, किन्तु इसी बीच मे उसे भयानक बुखार आ गया। कुछ दिनो के बुखार के बाद बोलने की शक्ति समाप्त हो गई। इस प्रकार अपने सेनापतियो, सैनिको, प्रशसको को पराये देश मे रोता-बिलखता छोड़कर वह केवल ३२ वर्ष की अल्पायु मे स्वर्ग सिधार गया।

इस प्रकार ससार का एक महानतम योद्धा, अदम्य साहस का धनी, दैवीय शक्ति से अलकृत व्यक्ति अपनी यश-गाथा को शेष ससार के लिये छोड़कर अपनी विजय-यात्रा के दौरान ही चला गया।

११

सक्षमान साम्राज्य का संगठन और उत्कर्ष

एशियाई देशों के राजाओं की भाँति सक्षमान वंश में भी प्रजा की संपूर्ण निष्ठा राजा के प्रति केन्द्रीभूत होती थी। राजा देवताओं की भाँति आदर, सत्कार पाता और पूजित किया जाता था। समय-समय पर होनेवाले विशेष त्यौहारों पर राजाओं की शान-शौकत का प्रदर्शन उसकी सत्ता और महानता का परिचायक होता था। सक्षमान वंश के दो महान् सम्राटों कुरुष और दु की महान् सफलताओं ने परशु के इतिहास में उनका नाम अमर कर दिया है। यही नहीं परशु जाति ने उनके चित्रों के पीछे जो आभामंडलों का चित्रण किया है वह उनके अद्‌भुत तेज और अलौकिकता का प्रतीक है। इस आभा मंडल को अवस्ता में 'हिरण्य' कहा गया है जोकि स्वयं ही संस्कृत भाषा का शब्द प्रतीत होता है, क्योंकि उसका अर्थ भी लगभग वही है।

किन्तु प्रजा अपने कर्म को पालन करने में पूर्ण स्वतंत्र थी। उसकी निष्ठाओं पर राज्य की ओर से कभी प्रहार नहीं किया गया। फोनीशिया, मिस्र और यहूदी राजाओं की निष्ठा जब तक सम्राट के प्रति रहती थी, और वे नियमित ढंग से कर चुकाते रहते थे; तब तक उनकी प्रजा को कभी भी नहीं छुआ। साधारणतः प्रजा को राजा का 'बन्धक' माना जाता था।[1]

यह महान् साम्राज्य जिसमें भिन्न-भिन्न देश, भिन्न-भिन्न बोलियाँ तथा विभिन्न संस्कृतियाँ समाविष्ट थी, अत्यन्त चतुरता से प्राचीन असुर और बेबीलोन राज्यों के आधार पर चलाया जाता था। इन राज्यों में सम्राटों के पुरखों ने राज्य-संचालन का स्वयं भी अनुभव लेकर दक्षता प्राप्त की थी।

सर क्लीमेंट ने लिखा है कि "इस राज्य-प्रणाली को संचालन करने में जिस लिखावट का प्रादुर्भाव हुआ था उसे भी परशु लोग अपने साथ विजित देशों में लेते गये जहाँ से उनका क्रमशः हिंद-यूरोपियन भाषा तथा लिपि का विकास होता

१. क्लीमेंट ने बंधक का अर्थ गुलाम लगाया है जो सर्वथा ग़लत है।

गया। Cunieform अक्षरो के निर्माण ने भी, जिसमें कि पुराने समय के अनेक शिलालेख पाये जाते है, इन लिपियो के विकास में बड़ी सहायता दी।"

समस्त साम्राज्य अनेक क्षत्रपो (प्रांतों) में बटा हुआ था। प्रांतपति को क्षत्रप कहा जाता था। जिसका यूनानी तथा यूरोपीय रूप 'सट्रप' है। इस क्षत्रप के साथ एक मंत्री का स्वाधीन पद भी होता था जो क्षत्रप पर निगरानी रखकर उसकी समस्त गतिविधियों की सूचना सम्राट को देता रहता था, वह पुलिस अधिकारी भी था। इसके अतिरिक्त सेना-भार एक 'कर्ण'[1] नामक अधिकारी के सिपुर्द रहता था। नगर की दीवार की रक्षा के लिये एक विशेष अधिकारी रहता था जिसे दुर्गपति कहा जाता था।[2]

उपरोक्त तीन विशेष अधिकारी अपने-अपने कार्य-संचालन मे स्वाधीन थे। स्थान-स्थान पर राज-समाचार लाने ले जाने के लिये व्यवस्थाएँ बनाई गई थीं तथा दूर-सुदूर प्रांतो में राजा के अक्ष और कर्ण (आँख और कान) साम्राज्य में होने वाली घटनाओ पर निगाह रखकर उनका निराकरण करने तत्पर रहते थे।

हेरोडोटस ने पूरे साम्राज्य के अंतंगत २० क्षत्रपो की विद्यमानता लिखी है, किंतु परशुपुर (Pesopolis) तथा नक्शे रुस्तम के शिला-लेखो मे इनकी संख्या क्रमशः २४ तथा २८ बताई गई है। पहले केवल २३ क्षत्रप थे जो निम्न प्रकार है: (१) परशु (फारस), (२) ऐलम (सूसा), (३) बेबिलिया, (४) असुर (असीरिया), (५) अर्वयु सहित मेसोपोटामिया, फोनीशिया, सीरिया और फिलिस्तीन, (६) मिश्र, (७) समुद्र देश (केलीशिया और साइप्रस), (८) यवन (ऐशिया माइनर की यूनानी बस्तियाँ), (९) लीडिया और मीसिया (टर्की) (१०) मेद, (११) हयस्थान (आरमीनिया), (१२) कटपातुक (मध्य ऐशिया माइनर तथा केपेडोसिया), (१३) पार्थ तथा हर्षण, (१४) सारंग (आरंगिया), (१५) आर्य, (१६) (खुरास्मिया) खुरासान, (१७) वाह्लीक (बैक्टरिया), (१८) सुखद (सोगिडियाना), (१९) गाधार, (२०) शक (तार्तार के मैदान का अंश), (२१) सत्यगाधि (थेटागस) Sattagudians हेलमंड क्षेत्र (सरस्वती क्षेत्र), (२२) आर्यकुश (बलूच) Arachosia, (२३) मग (मकस हारयुज के मुहाने पर पूर्वी अरब)। बाद मे द्रु के राज्यकाल के पश्चात ये क्षत्रप ३१ गिनाये गये हैं। परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि परशु देश को केन्द्र मानकर ये प्रदेश चारों ओर घड़ी की भाँति स्थित मानकर गिनाये गए हैं।

राजाज्ञा से ये क्षत्रप तत्काल वापस बुला लिये जाते थे। यदि कोई परि-स्थिति उत्पन्न हो जावे तो इन क्षत्रपों को देश निकाला तथा मृत्यु-दण्ड भी दिया

---

१. यूनानियों ने इसे Karanos लिखा है।
२. यूनानियो ने इसे Arga-pat लिखा है।

जाता था। कभी-कभी इन मृत्यु-दण्डों को क्रियान्वित स्वयं क्षत्रपो के अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा किया जाता था। वर्तमान समय की भाँति इनके लिये कोई न्यायालयीन सुविधाएँ नहीं थीं। राजाज्ञा ही सर्वोपरि समझी जाकर उनका पालन करना अनिवार्य था। परन्तु कभी-कभी ये क्षत्रप आवश्यकतानुसार सैनिक कर्तव्य भी करते थे और स्वय सैन्य-संचालन करते थे।

क्षत्रपों का मुख्य कार्य कर-वसूली था। कर दोनों प्रकार के होते थे, नकदी तथा प्रकार में। निश्चित मात्रा मे ये कर उगाहे जाते थे। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हेरोडोटस ने इस विषय में पूरा विस्मयकारी वृत्तात लिखा है। कर देनेवालों को इलाके या समूहों मे बाँट लिया जाता था। इसके लिये मिस्री तथा बाद मे यूनानी नाम 'नोम' दिया गया है। एक उल्लेख मे कहा गया है कि एशिया माइनर को चार भागो में विभाजित किया गया था। प्रथम यवन कार्यन तथा लोसियन को ४०० चाँदी के टेलेंट[1], दूसरे मीसियन लीडियन को ५०० टेलेंट, तीसरे फ्रीगियन आदि को ३६० टेलेंट तथा चौथे गेलाशिया को ५०० टेलेंट देने पड़ते थे। इसके अतिरिक्त उसे ३६० सफेद घोड़े भी देने पड़ते थे।

मिस्र को ७०० टेलेंट के अतिरिक्त ६१० टेलेंट के बराबर का धन उस सेना के लिये भी देना पड़ता था जो उसके प्रदेश मे सम्राट द्वारा रखी गई थी तथा धान्य के रूप मे १,२०,००० नाप धान्य भी दिया जाता था। साम्राज्ञी के लिये मत्स्य-कर के रूप मे २०० टेलेंट अलग वसूल किया जाता था। बेबीलोन को ५०० हिजड़े देने पड़ते थे। मेद को १ लाख भेड़ें तथा ४००० खच्चर और ३००० निशापुरी घोड़े देने पड़ते थे। हयस्तान (आरमीनिया) को ३०,००० Colts तथा भारत के उस प्रदेश को जो सम्राट के अधीन था, महल की रक्षा के लिये शिकारी कुत्ते तथा ४०,६८० चाँदी के टेलेंट के बराबर स्वर्ण-धूलि देनी पड़ती थी। प्रत्येक तीसरे वर्ष एथोपिया को स्वर्ण, हाथी-दाँत, elrcny और पाँच बच्चे देने पड़ते थे। चोल्सिस को प्रत्येक पाँचवें वष १०० लड़के और १०० लड़कियाँ देने पड़ते थे। अरब लोग Frankın cense के १०० क्वार्टर देते थे। इस प्रकार नजराने तथा प्रकार के धन को छोड़कर लगभग ४० लाख पौंड की साम्राज्य को आमदनी थी। परन्तु वर्तमान फारस कर से मुक्त था किन्तु वहाँ के निवासी सम्राट को नजराना देते थे।

प्लूटार्क ने लिखा है कि एक बार सम्राट ने जब एक प्रान्त पर करारोपण किया तो उसने वहाँ के निवासियो की कर देने की शक्ति का जायजा लिया। अनुसधान के बाद यह सोचकर कि कुछ-न-कुछ अपने रख-रखाव के लिये क्षत्रप अवश्य ही वसूल कर लेता होगा उसने निश्चित मात्रा से केवल आधा कर वसूल

1. एक चाँदी का टेलेंट लगभग वर्तमान २४० पौंड के बराबर होता था।

किया। उस समय की प्रथा के अनुसार जबकि क्षत्रप को राज्यकोष में एक निश्चित राशि जमा करनी होती थी जिसके जमा हो जाने पर आगे कोई जाँच नहीं होती थी। अतः ऐसा अनुमान है कि क्षत्रप लोग अधिक वसूली ही करते होंगे।

द्रु प्रथम के समय में एशिया माइनर में सिक्के का चलन प्रारम्भ हो गया था। Croesus ने सोने-चाँदी के सिक्के ढाल लिये थे। द्रु ने जो सिक्के ढाले उनमें एक तरफ अपने धनुष को झुकाकर एक घुटने को जमीन पर रखे बताया गया है।

ये क्षत्रप जिनके पास असीमित शक्ति होती थी। सड़को को निरापद तथा खेती की रखवाली आदि भी करते थे। द्रु ने Gadatas नामक क्षत्रप को इस बात पर बधाई दी थी कि उसने सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाये थे तथा शिकार-गृह और राजप्रासाद के लिये वन का निर्माण किया था। सम्राट आखेटों के शौकीन होते थे। ये आखेट स्थल 'स्वर्ग' कहलाते थे। इन आखेट-गृहों के चारों ओर दीवारें तथा राजघराने के व्यक्तियो के लिये सुन्दर घर बने होते थे। सीदन नामक स्थान मे ऐसे घरो के खण्डर अभी प्राप्त हुए हैं। इनके खंभो पर चारों ओर बैठे हुए बैलों की सुन्दर आकृति खुदी हुई है।

सम्राटों की रक्षा के लिये परशु तथा मेद जाति के वीरों की टुकड़ियो में से योद्धा चुने जाते थे। संभवत. सूसा के व्यक्ति भी चुने जाते थे। सूसा के राज-प्रासादो मे जो चित्र उपलब्ध हैं उनमे साँवले रग की जो आकृतियाँ मिलती हैं उनसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि इन संरक्षको मे गरम देश के निवासी भी सम्मिलित थे। ये संरक्षक २००० अश्वारोही और २००० पदाति सैनिकों की ३ टुकड़ियो मे बटे हुए रहते थे। किन्तु ये सब उच्च घरानो के व्यक्ति होते थे। ये सैनिक बड़े-बड़े नुकीले भाले रखते थे जिनके नीचे सिरो मे सोने-चांदी की गेंदें लगी रहती थी। आर्चर फ्रीज लिखता है कि इन सात फीट लबे भालो के अति-रिक्त ये लोग धनुष तथा वाणो का संग्रह-कोष भी रखते थे जो प्राय. पीठ के पीछे कसा रहता था जैसा कि चित्रो मे बतलाया गया है। इस प्रकार धनुषवाण रखने की प्रथा शुद्ध भारतीय है। इन सैनिको के पश्चात् दस सहस्र सैनिक जो अपनी वीरता तथा शौर्य के लिये संसार-प्रसिद्ध होते थे, रहते थे। ये सैनिक दस टुकड़ियो मे बटे हुए रहते थे तथा इन्हे अमृत्य (फारसी मे अमर्दी) कहते थे। ये शब्द संस्कृत के अ=नही, मृत=मरे हुए अर्थात् न मरनेवाले कहा जाता था।[1] ये व्यक्ति अमृत्य इसलिये कहे जाते थे कि जैसे ही इनका एक भी सैनिक जूझकर गिरता था तत्काल उसके स्थान पर दूसरा आ जाता था। इस प्रकार

1. Page 77

दस सहस्र की संख्या कभी कम नहीं होती थी। ये अमृत्य परशु देश के निवासी थे। यह सेना अस्थायी थी। इसके अतिरिक्त कुछ स्थायी सेना अलग भी थी। किन्तु जब कभी बड़ा युद्ध होता था तो क्षत्रप लोग अपनी-अपनी सेनाएँ भेजते थे। स्थानीय युद्धों में क्षत्रप अपने स्थानों की चुनी हुई टुकड़ियों से ही काम निकाल लेते थे। सम्राट की सेना में बहुधा विविध प्रान्त और विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले सैनिकों की कमी नहीं रहती थी, जो अपने अलग-अलग किस्मों से न केवल पहचाने जाते थे अपितु उनमें संगठन का भी सर्वथा अभाव रहता था और जब इस प्रकार की सेना को एक बलशाली संगठन से काम पड़ जाता था तो उसकी हार हो जाती थी।

न्याय में सम्राट की आज्ञा सर्वोच्च होती थी। राज्य या राजा के विरुद्ध षड्यंत्रों में वह ही दण्ड देने का पात्र होता था। दीवानी मामलों में वह न्यायदान के लिये अपने अनुयायियों को नियुक्त करता था जो अपना निर्णय देते थे। यह प्रथा Cambyses के शासनकाल में भी जारी थी। शशिमणि (Sisamnes) नाम के एक शाही न्यायाधीश को सम्राट ने फाँसी की सजा इसलिए दी थी कि उसने इतने उच्च पद पर रहकर घूस खाकर निर्णय किया था। मृत्यु के बाद उसकी खाल उधेड़ी गई और उस खाल को उस कुर्सी पर बैठने की जगह पर मढ़ा गया जिस पर बैठकर वह निर्णय देता था। सम्राट ने शशिमणि के लड़के को उस उच्च पद पर बैठाकर उसी कुर्सी पर बैठकर निर्णय किये जाने के लिये नियुक्त किया। आर्तक्षयहर्ष सम्राट ने और भी क्रूर निर्णय लागू किये। इस प्रकार घूस लेनेवाले न्यायाधीशों की उसने ज़िंदा खाल खिंचवाकर उसी प्रकार कुर्सियों पर मढ़वा देने की प्रथा जारी रखी। किन्तु किसी एक अपराध के लिये कानून के अनुसार किसी व्यक्ति को भी ऐसा कठोर निर्णय देने का अधिकार नहीं था। दासों तक के लिये भी यही निर्णय लागू होता था।

देश-द्रोह के लिये मौत और बाहु-विच्छेद का दण्ड नियत था। एक लेख के अनुसार इस प्रकार के विद्रोहियों को शाही दरबार में पेश किया गया। उनके नाक-कान काट लिये गए। फिर उन्हें सारी जनता के सामने प्रदर्शित किया गया। अन्त में उन्हें उस प्रान्त में भेजा गया जहाँ कि उन्होंने विद्रोह किया था और वहाँ उनकी मौत का दण्ड कार्यान्वित किया गया।

स्वयं जब बागी सम्राट कुरुष छोटा मारा गया तो उसका सिर व दाहिना हाथ काट डाला गया। अपने मुखिया की भाँति प्रायः सारा कुटुम्ब ही इस प्रकार के दण्ड का भागी होता था।

मृत्युदण्ड को कार्यान्वित करने के लिये प्रायः व्यक्तिगत दण्डाधिकारी हुआ करते थे। सम्राट कुरुष छोटे ने जब ऊरन्ती को मृत्युदण्ड की आज्ञा दी थी तो वह आर्तपट्ट नाम के व्यक्ति को कार्यान्वित किये जाने के लिये सौंप दिया गया था।

सम्राट और धर्म

कुरुष ने जिस महान् साम्राज्य की स्थापना की थी उसमें धर्म-पालन की प्रत्येक विजित जाति को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इस माने में सम्राट सर्वथा उदार थे। यद्यपि सम्राट बाहर के देशों के देवी-देवताओं को मानते थे और उन्हें संरक्षक भी समझते थे। इन विजेताओं को बाहरी देवगणों की उपासना की आवश्यकता क्यों पड़ी यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, और इसका प्राचीन इतिहास में कोई समाधानकारक उत्तर भी उपलब्ध नहीं है।

गवेषणा के अनुसार मेद-परशु जाति तीन धर्मों का पालन करती थी। एक तो सम्राट का; जिसके विषय में प्राचीन लेख तथा हेरोडोटस और अवस्था की गाथाओं में उल्लिखित संदर्भ प्राप्त हैं तथा माखिओ (यज्ञकर्त्ताओं) ने स्पष्ट लिखा है। इसमें असुर-मज्द (पारसियों का अहुर-मज्द) को देवताओं में सबसे बड़ा[1] तथा इस भूलोक एवं स्वर्ग का निर्माता माना है। भूमि पर रहने वाले राजागण उसकी कृपा से राज्य-संचालन करते हैं; शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं। द्रु का बहिस्तून में उत्कीर्ण लेख इसका पर्याप्त प्रमाण है।

किन्तु यदि यह सबसे बड़ा देवता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य देवतागण भी हैं। किन्तु उनके नाम नहीं दिये गये हैं। इस विषय में यह उक्ति प्रचलित है: 'विठिबिश बगबिशि' जिसका अर्थ अनेक प्रकार से किया गया है, किन्तु विद्वानों के अनुसार यह विश सस्कृत शब्द विश्व का ही रूप है क्योंकि 'जिंद' में भी यही अर्थ लिया गया है जिसका अर्थ समस्त है। कुरुष और Cambyses के विषय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वे किस धर्म के अनुयायी थे, परन्तु द्रु के विषय में अवश्य ही सामग्री प्राप्त है।

देवगण की प्रत्यक्ष कोई आकृति नहीं थी। वे आर्यों की भाँति प्रतीकात्मक रूप में ही पूजे जाते थे। द्रु की समाधि पर जलती हुई अग्नि को शिलांकित किया गया है। सूर्य भी चमकता हुआ बतलाया गया है। उस समय मन्दिरों के स्थापन की परम्परा शुरू नहीं हुई थी। इस प्रकीर्ण में असुरों की भाँति असुर मज्द को पंख फैलाया हुआ दिखाया गया है।

आर्तक्षयहर्ष तथा वाहुक के शिलालेखों में सबसे प्रथम मित्र तथा अनाहिता के नाम मिलते हैं। किन्तु उससे यह समझना भूल होगी कि यह नाम व देवतागण पहले के निवासियों में विद्यमान ही नहीं थे। हो सकता है कि इनकी विद्यमानता का कोई प्रमाण ही उपलब्ध नहीं हुआ हो। इस कारण इनकी इन राजाओं के बाद से ही गणना या उपलब्धि समझ ली गई हो। बेबीलोन की दस्तावेजों में

---

1. Malhista Baganum in an inscription in Persepolis.

कुरुष को बेबीलोन के राजा मारदुक को पूजता हुआ बतलाया गया है।

इतिहासकार मिलेट का यह लिखना सच प्रतीत नहीं होता कि विश्वदेव (God of Compact) को बाद में सूर्य देवता में सम्मिलित कर दिया गया जो आगे चलकर समस्त रोमन साम्राज्य में प्रचलित हो गया। अनाहिता देवी जोकि असुरों द्वारा प्रचलित थी बाद में उसे रोमन लोगों ने अपनी भाषा में वीनस का रूप दे दिया। असुरमज्द देवता अब पुराना पड़ गया था, उसके स्थान पर नये विचारवानों ने इन दोनों (सूर्य और अनाहिता) देवताओं को ग्रहण कर लिया जोकि अधिक ग्राह्य और आकर्षक थे।

प्रसिद्ध इतिहासकार क्लीमेट के अनुसार सूर्य देवता ईरान में अति प्राचीन-काल से पूजा जाता था। किन्तु धार्मिक क्रियाओं मे इसका समावेश सम्भवतः ५वीं शताब्दी ईसा पूर्व हुआ। ईसा से १४ शताब्दी पूर्व वह इन्द्र, वरुण और नसत्यस के साथ 'मित्राणि' (Miltanni) के रूप में उत्तरी मेसोपोटामिया में पूजा जाता था। प्राग्भवस्थाकाल मे वह ऊपर की स्वर्गीय आभा तथा पाताल के अधकारयुक्त स्थानों का मध्यस्थ माना जाता था। आर्तक्षयहर्ष द्वितीय के काल से उसे राज्यशक्ति का स्रोत और सौगन्धों मे प्रयुक्त करने के हेतु मान्य किया जाने लगा तथा युद्ध-भूमि में भी वह प्रेरणा-स्रोत समझा जाने लगा।

ईरानी देवताओं में अनाहिता का प्रवेश इस बात का तथ्य है कि शाही धर्म बेबीलोन के ज्योतिष से प्रभावित होता जा रहा था परन्तु साम्राज्य के पतन के बाद यही धर्म बाद मे एशिया माइनर के भागों मे फैल-फूट गया।

जनता चार तत्वों का पूजन करती थी: (१) तेज जो कि दिवस के रूप में, मित्र और चन्द्रमा के रूप मे रात्रि, (२) जल, (३) पृथ्वी और (४) वायु।[१] सार्वजनिक धर्म में पशुओं की बलि देना एक प्रथा थी किन्तु इसे वैध घोषित करने के लिये बलि के समय माखी (यज्ञकर्त्ता) अथवा मागी का होना आवश्यक था। माख इन बलि-पशुओं को हिना या मेहदी के फूलों से स्वयं के साफों या उष्णीष को सजाकर जनता और राज्य की सुख-कामना करते हुए वध करता था। हेरोडोटस ने इसका बडे विस्तार से रोचक वर्णन किया है। इसके बाद पशु की बलि देकर उसका मांस पकाकर यजमानों मे बाँट दिया जाता था, जो कि माखी के मन्त्रों द्वारा पवित्र कर दिया जाता था। हेरोडोटस का अभिप्राय इन मंत्रों से 'गाथा' के उच्चारण से प्रतीत होता है।

ऐसा विदित होता है कि इस देश के आर्यों को भारत के आर्यों ने दस्यु,

---

१. पंच महाभूत का वैदिक धर्म में स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है, देखिये—महाभूतानि ख वायुरग्नि रापस्तथा च भू। (महाभारत २१० अध्याय) किन्तु उपरोक्त भाँति आचार्य चार्वाक ने चार महाभूत ही माने हैं।

असुर आदि विविध नामों से जो सम्बोधन या उल्लेख किया है वह इस कारण ही किया है कि भारतीय आर्यों की प्रथाएँ यहाँ के आर्यों से कुछ अर्थों में भिन्न थीं। जैसे भारतीय आर्य गो-वंश को श्रेष्ठ मानकर पूजा करते थे। किन्तु पारस देश में बहुत बाद तक वहाँ के राजाओं द्वारा वृषभ-बलि को शुभ समझा जाता था। एशिया माइनर में डेसीलियन स्थान के समीप मणिया नामक झील के किनारे स्थित इरगिली गाँव में जो शिलाखंड मिले हैं उनमें माखी द्वारा वृषभ का बलि किया जाना उत्कीर्ण किया गया है।

जिस प्रकार लेवी जाति में जहवेह का पूजन करने वाले लेवी कहलाते हैं उसी प्रकार मेद जाति में पूजक वर्ग को मागी या माखी कहा जाता था। यह मूल शब्द मख जिसका अर्थ यज्ञ होता है से बिगड कर बना है। अतः जहाँ कही मागी शब्द का प्रयोग हो वहाँ यज्ञकर्त्ता की जाति से वह अर्थ-सूचक समझा जाना चाहिये। स्वयं क्लीमेंट ने भी इसका यही अर्थ लगाया है। उसके अनुसार यह जाति उस समय से प्रारम्भ हुई जबकि भारतीय और इरानी लोग एक ही जाति के समुच्चय थे।[१] शशकाल (Sassanion) मे दोनों की प्रथाओं की 'अवस्था' में संग्रहीत किया गया है।

हेरोडोटस ने मृत्यु-संस्कार के विषय में लिखा है कि शव को एक प्रकार के मोम से पोतकर उसे भूमि में समाधिस्थ किया जाता था। किन्तु मागी लोगों में कुत्ते या चिडियो को शव का कुछ अंश चुगाने के बाद ही समाधिस्थ किया जाता था। यहाँ पर धर्म-प्रथा के दो स्वरूप अलग अलग दिखाई पडते हैं। प्रथा के अनुसार सम्राटगण अपने शवों के ऊपर बडे-बडे समाधि-घरों का निर्माण करते थे और इस हेतु सुरक्षित स्थान पहाड़ो की तलहटी अथवा ऊँचे स्थानों का चयन किया करते थे जबकि मागी लोग सार्वजनिक स्थानों पर शव गाडते थे। 'अवस्था' के समय सम्भवतः कुत्ते को शव-अंश देना बन्द हो गया था। किन्तु आज तक शेष प्रथाएँ पारसियों में जारी हैं और शवों को रखने के लिये 'दखमा' स्थान का आज भी निर्माण किया जाता है। किन्तु प्राचीन समय मे 'दखमा' प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलने से यह प्रथा नवीन मालूम पडती है।

राजाओं का धर्म प्राचीनकाल के कुरुष सम्राट के पुरुखों के समय से ही चलता आया धर्म था। इस धर्म पर जो कि शुद्ध आर्य धर्म था सेमेटिक धर्म की अवश्य ही छाप पडी थी जोकि सूसा तथा अनशानी सभ्यताओं से प्रभावित थी।[२]

क्लीमेंट आदि अनेक इतिहासकारों ने लिखा है कि मागी जाति के पुजारी-गण पहाडी या ऊँचे स्थानों पर रहने के कारण अपने मैदानी भाइयों से अधिक

१. क्लीमेंट, पृष्ठ ८४
२. क्लीमेंट, पृष्ठ ८६

मिल-जुल नहीं पाये थे इस कारण उनके रीति-रिवाज बिलकुल अप्रकाशित और अछूते रहे। ये लोग अध्वयुं (अजरवेजान) तथा ईराकी अजामी के पर्वतों में निवास करते थे। 'अवस्था' के रचनाकाल तक इन्होंने अपने पुरातन रीति-रिवाजों को नहीं छोड़ा और अपने धर्म और भारतीय सभ्यता को बहुत काल बीतने तक भी नहीं छोड़ा। सक्षमान वंश के सम्राटों के समय तक इनका कोई विशेष हाल पाया नहीं जाता सिवाय उन कुछ यूनानी लेखों के, जिनमें इन भागी लोगों की परशु यज्ञों के समय उपस्थिति बतलाई गई है।

"वास्तव में शाही धर्म केवल एक ब्रह्म में विश्वास करता था जबकि भारत में अनेक देवों की पूजा प्रचलित थी। इसके विपरीत 'अवस्था' में इन दोनों विश्वासों का सम्मिश्रण है। ये तथ्य इस बात के साक्षी हैं कि ऐलम की सभ्यता का उन पर भारी प्रभाव था, यदि भागी की परम्पराएँ प्रचलित न रही होती तो उस समय की परंपरा का आज भी कुछ पता न चल सकता। केवल भाषा ही शेष रह जाती जिसमें उसके आर्य-वंश के उद्गम होने का पता मात्र हाथ लग पाता।"[1]

कला और सभ्यता

परशु और समीपवर्ती राज्यों की सभ्यता और कला पर विभिन्न आगत सभ्यताओं का व्यापक प्रभाव पड़ा है। स्वयं आर्य सभ्यता में कलाकृति की दृष्टि से असुर अथवा दानव-कला आर्य-कला से श्रेष्ठ मानी जाती थी।[2] पुराण तथा कथाओ मे अनेक स्थलो पर वर्णन आया है कि यहाँ के सम्राटो तथा कला-प्रेमियो ने जब कोई नये भवन का निर्माण कराया तो मय दानव को ही निर्माण किये जाने हेतु बुलाया गया था।[3] स्वयं धृतराष्ट्र के महलों और वाणासुर की राजधानियो के महलो का निर्माण मय दानव द्वारा सम्पन्न हुआ था।

यही हाल परशु देश का हुआ। वहाँ की सभ्यता और कला को सबसे बड़ी देन असुरो ने ही दी। असुर देश जिसे अब असीरिया या सीरिया कहा जाता है कला के विकास के लिए प्राचीनकाल मे प्रसिद्ध था। वहाँ प्राचीन सभ्यता के बहुत पूर्व ही चबूतरो और विविध प्रकार की सीढियों का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। टिगरिस और फरात नदियों की घाटियों पर बने हुए शहरों में ईंटों का व्यापक उपयोग किया गया है। परशुपुरी में नींव के लिये, द्वारों की चौखटों, और खंभों के लिये पत्थरो का उपयोग किया गया है। भवन मिट्टी के बने हुए होते थे। इस कारण वे अब मिलते नहीं हैं। असुर प्रदेश की भाँति द्वार तथा

---

१. क्लीमेंट, पृष्ठ ८५

२. मय दानव ने देवताओं को हराने और्व नामक अग्नि से महामाया की सृष्टि की थी।

३. महाभारत हरिवंश पर्व, अध्याय ४३

उनके सरकाने की क्रियाएँ भी प्रचलित थीं। इसी प्रकार असुरों की भाँति यहाँ भी भीतर आने के द्वारों पर बड़ी-बड़ी दीर्घ कायाएँ (colossi) रखा करती थीं। यह प्रथा भारतमें प्रयुक्त द्वारपालों की भाँति ही थी। सूर्य की गोलाकार आभा के चारों ओर देवताओं की प्रतिमाएँ झूलती रहती थीं। राजा सिंहासन पर बैठता था तथा वह सेवकगणों से घिरा रहता था।

परशु देश में, यद्यपि मन्दिर नहीं होते थे, किन्तु तो भी परशु देश के विजेताओं ने, जिन्होंने मिस्रदेश को जीता था, वहाँ के कारीगरों को लाकर मिस्र के मन्दिरों की सजावटो, कलाकृतियो तथा रोचकताओं से अपने महलों को साजा और सम्हारा था। ईरान पर यूनान का प्रभाव उस समय बिलकुल नगण्य था। हाँ, कुछ यूनानी कारीगर सम्राट के देश में अवश्य रहते थे; द्रु और क्षयहर्ष के महलों में काम करनेवाले एक यूनानी कलाकार तेलीफन (Telephanes) का वर्णन प्लिनी ने किया है। परशु देश के अधिकांश लेख निनेवा के लेखों की अनुकृति हैं। असुर प्रदेश, जिसकी राजधानी निनेवा थी; में जो आकृतियाँ बनाई गईं उनके कपड़े चौड़े और चिपके हुए बताये गये हैं जबकि परशु देश में वस्त्रों की सलवटें और तहों को दिखाने की सुन्दरता में अधिक कुशलता दिखायी गई है। परशु देश की कला मे एक और विशेषता यह है कि वहाँ बड़े-बड़े महल, बड़े-बडे खंभे, बड़ी-बड़ी आकृतियो को बनाया गया है। हालाँकि उनकी सजावट में भी आश्चर्यजनक कारीगरी बरती गई है।

जहाँ भारत में खमों या स्तंभों पर—अधिकाश में चार सिंहों या दो सिंहों की आकृतियाँ बनाई गई हैं वहाँ परशु देश में दो वृषभों की आकृतियाँ अंकित किया जाना बतलाया है।[1] इन वृषभों की पीठ से पीठ जुड़ी हुई है। क्षयहर्ष के एक महल में ऐसे अश्व की आकृति एक खंमे पर बनी हुई है जिसकी मजल तथा खुर एक जैसे हैं। भारत में प्रायः ईसा से पाँचवीं शताब्दी पूर्व से लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक जबकि मुसलमानों ने इन वास्तु-कलाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, इस प्रकार की अनेक कल्पनायुक्त पशुओं पर से आकृतियों का निर्माण किया गया है। सीढ़ियों और छतो मे विभिन्न मुद्राएँ भी वहाँ बनाई जाती थीं।

बाहर चमकदार रंग-बिरंगी ईंटो का भी प्रयोग किया जाता था। बेबीलोन के कारीगरों को अधिक ताप देकर मिट्टी पर विविध रंगों को पोतने की कला का ज्ञान था। परशु लोगों को धातु की तश्तरियाँ और विशेषकर कांसे की विभिन्न वस्तुओं को बनाने का भारी शौक था। सोना और चाँदी का भी उपयोग किया जाता था।

पसरगढ़ में कुरुष और द्रु के समाधि-स्थल को देखने पर दूर से ही ऐसा

१. साँची में यह शैली मिलती है।

विदित होता है कि मानो ये भारत की ही कृतियाँ हैं। द्रु की समाधि-स्थल को एक पहाड़ में से काट कर बनाया गया है। दूर से वह दुमंजिली गुफा मालूम पड़ती है। उसका ऊपरी भाग बिलकुल भारतीय ढंग के खंभों, उन पर रखी हुई म्यालों और उस पर रखे पत्थरों की कारीगरी शत-प्रतिशत भारतीय कारीगरी है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि इस काल तक भारत और परशु के कारीगरों का शिल्प-ज्ञान और कौशल एक-सा ही था। इसी प्रकार दरवाजे के चारो ओर की पत्थरों की चौखट बिलकुल साँची, बोध गया, आदि स्थानों में पाये गए द्वारों की भाँति ही है।

अग्निकुण्ड

परशु साम्राज्य में स्थान-स्थान पर अग्निकुण्ड पाये जाते हैं। जिन्हें फारस देश के लोग आतिशगाह कहते हैं। अधिकांश में एक ही स्थान पर जोड़े के रूप में पाये जाते हैं। नक्शे-रुस्तम नामक स्थान पर ही दो अग्निकुण्ड पत्थर की पहाड़ियो से काटकर बनाये गए हैं। इनमें पवित्र अग्नि जला करती थी। कहीं-कही पर ये अग्निकुण्ड जोडो में न होकर एक ही पाये गए हैं। गौर प्रदेश (अफगानिस्तान) के फ़ीरोजाबाद मे एक ऐसा ही अग्निकुण्ड है। कुरुष ने मेद तथा अष्टवाक Ostyages पर की गई विजय स्मृति में जो महल बनवाये हैं उनमें भी उस समय की कारीगरी की रूपरेखा देखने को मिलती है। सिकन्दर के समय में इन महलों को उसकी अनुपस्थिति में नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था तथापि बचे-खुचे अवशेषों मे एक शिलाखड है जिस पर परशु, सूसा तथा बेबीलोन की तीनों भाषाओं में लिखा है, "मैं सक्षमान वंश का सम्राट कुरुष हूँ।"

बहुत दिनों की शांति के कारण बाद के परशु काल मे नगरों के चारों ओर की दीवारें बनाना बन्द कर दिया गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे शीघ्र ही आक्रमणकारियों के शिकार बन गये।

इस प्रकार सक्षमान काल में कला और सभ्यता का बाहरी देशो की सहायता से भी पर्याप्त विकास हुआ।

इसी प्रकार प्राचीन सक्षमान काल में वस्त्रों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। राजा को बहुधा तीन प्रकारों से बतलाया गया है। पहले तो वह शत्रु आदि को मारता हुआ, दूसरा अग्नि की पूजा करता हुआ और तीसरे सिंहासन पर बैठा हुआ। इस अन्तिम वेश में राजा सिर पर पगडी बाँधे हुए है जो नीचे से ऊपर क्रमशः चौडी होती जाती है। वह पैरों तक चोगा या पीला लबादा जिसे Candys कहा जाता है, पहिने हुए है। एक में शस्त्र और दूसरे में फूल लिये हुए है। सेवकगण पीछे चँवर ढल रहे हैं।

किन्तु सैनिकों का परिधान एक-दूसरे प्रकार का ही था। सूसा में मिले उत्कीर्णों में सैनिक बाएँ कंधे पर धनुष रखे हुए हैं। पीठ पीछे तरकश पड़ा हुआ है। अपने दोनों हाथों में वह लम्बा भाला पकड़े हुए हैं। इस भाले में नीचे गोल तथा ऊपर नोकदार सिरा है। यह एक घुटनों तक लम्बा चोगा पहने हुए हैं जिसकी बाहें कलाई तक पहुँची हुई हैं। इस चोगे मे मूल्यवान किनारी जड़ी हुई हैं। ये हल्के नीले रंग के चमड़े के जूते पहने हैं। कलाइयो मे सोने के कंकण पड़े हुए हैं। इसी प्रकार कानो मे कुण्डल पहने हुए हैं। सिर पर पगड़ी के स्थान पर एक गोल टोपी पहने हुए हैं।

सक्षमान बश मे सिक्कों का चलन भी प्रारम्भ हो गया था। वे एशिया माइनर मे प्रचलन मे थे। पार्थ और शश राजाओ के सिक्के प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे। राज्य-कोष मुद्राओ से भरा पडा रहता था। सिकन्दर के आक्रमण के समय ४० सहस्र कच्ची धातु तथा ९००० अर्शाफियाँ सूसा के कोष में भरी पाई गई थीं। द्रु सम्राट ने अपने नाम पर सबसे पहले दारिक नाम का सोने का सिक्का ढलवाया, जिसमे स्वय का चित्र बना हुआ है। यह सिक्के शुद्ध सोने के बने हुए थे। इन स्वर्ण-मुद्राओ के अतिरिक्त चाँदी के मेद राज्य के शाकल सिक्के भी चलते थे। यह सिक्का सोने के सिक्के का बीसवाँ भाग था। इसके अतिरिक्त कुछ शहरो को चाँदी तथा कासे के सिक्के ढालने का भी अधिकार मिला हुआ था। पश्चिमी इतिहासकारों का मत है कि परशु के आर्य धातु पर नक्काशी का कार्य स्वयं नही करना जानते थे। सम्भवत: यह नक्काशी बेबीलोन में की जाती होगी।

सक्षमान वंश ने तीन भाषाओ मे अपने लेख छोड़े हैं—पुरानी परशु, अंशानी तथा बेबीलोनियन। इनमे से कोई-कोई एक ही भाषा मे लिखे गये हैं। राजा और राजघरानों के व्यक्ति प्राचीन परशु भाषा का प्रयोग करते थे। यह सब क्यूनीफार्म लिपि में लिखे हुए हैं किन्तु प्राचीन फारसी सक्षमान लिपि मे है।

क्यूनीफार्म लिपि

१२
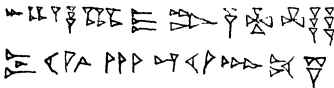
सिकंदर के उत्तराधिकारियों का युद्ध और सिल्यूकस का उदय

सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में लगभग दो पीढ़ियों तक घोर युद्ध तथा प्रतिद्वंद्विता चली। चूंकि सिकंदर बहुत ही अल्प-आयु में मर गया था। अतएव उसने अपने पीछे कोई घोषित उत्तराधिकारी नही छोडा था। परिणामतः इस विशाल साम्राज्य के लिये लड़ाई होना सर्वथा स्वाभाविक था।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि वाल्हीक प्रदेश को विजय करने के बाद सिकंदर ने वहाँ के शासक अक्षय अर्त की लडकी रक्षणा से विवाह कर लिया था। इसके अतिरिक्त उसने सम्राट द्रु की लडकी स्तेतिरा (Statira) से भी विवाह किया था। उन दोनो स्त्रियों के अतिरिक्त उसे मेमनन की विधवा पत्नी बरसाइन से एक तीन वर्ष का अवैध पुत्र था। इन सब उत्तराधिकारियों के अलावा उसका एक अवैध भाई फिलिप अरह्रीदयूस भी था। सिकंदर की माँ ओलंपिया तथा उसकी मौसी क्लियोपेटरा (ओलंपिया की बहन) जोकि जनरल इपीरिस को ब्याही गई थी, भी उत्तराधिकारियों की श्रेणी में थीं, साइनेस सिकंदर की एक बहिन व उसकी लडकी यूरीडिस (भानजी) जिसने कि आगे चलकर फिलिप अरह्रीदयूस से विवाह कर लिया—भी अपने-आपको सिकंदर की उत्तराधिकारिणी मानती थी।

सिकदर के शव का अन्तिम संस्कार भी नही हुआ था कि उत्तराधिकार के लिये षड्यंत्र होने शुरू हो गये। सिकंदर का एक पुराना साथी पेरिडिक्कस जो कि बड़ा ही चतुर था ने राज्यसत्ता की डोर अल्पवयस्क बालक के संरक्षक के रूप में संभाली। उसकी ओर प्राय. सब बडे-बडे अमीर हो गये। परंतु छोटे-छोटे पैदल सैनिको ने अलग ही फिलिप अरह्रीदयूस को शासक घोषित कर दिया। परंतु एक युद्ध में यह फिलिप बडे सामतों की फ़ौज द्वारा हाथी के पैरो तले दबाकर मार डाला गया। अब पेरिडिक्कस ने निश्चित होकर चारो दिशाओं में

क्षत्रप और राजदूत नियुक्त कर दिये।

रनवास भी इस समय षड्यन्त्रों से खाली नहीं था। रक्षणा ने दु की लड़की स्तैतिरा को फुसलाकर अपने पास बुला लिया और फिर उसे धोखे से मरवा डाला। कुछ दिनों के बाद ही रक्षणा के लड़का पैदा हो गया जिसका नाम भी सिकंदर रखा गया। इसी समय पेरिडिक्कस ने अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिये ग्रोलंपिया की बहन क्लिओपेटरा से विवाह कर लिया। इस गठजोड़ से फ्रीजिया प्रान्त के शासक को बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया। वह अपनी रक्षा के लिये एक अन्य शासक ऐंटीपेटर के पास भागा।

अब पेरीडिक्कस ने यह समझकर कि उसके इस विरोधी संगठन में मिस्र देश का शासक टालमी भी कहीं शामिल न हो जाये, मिस्र पर आक्रमण कर दिया। किंतु यह आक्रमण निरर्थक रहा। इस असफलता से चिढ़कर यूनानी सैनिकों ने उसे मार डाला। इस बग़ावत में एक अन्य सेनापति सिल्यूकस का बड़ा हाथ था।

यह सिल्यूकस एक निर्भीक और साहसी योद्धा था। वह यूनानी सेना में सबसे कम आयु का सेनापति था। वह भारत के युद्ध में एक मँझोली पदाति सेना का सेनापति रह चुका था। सूसा के प्रसिद्ध युद्ध में उसकी वीरता से प्रसन्न होकर श्वेतमान राजा ने अपनी पुत्री उपमा (Apama) का उससे विवाह कर दिया था।

मिस्र-युद्ध के बाद सिल्यूकस बेबीलोन का शासक नियुक्त हुआ। अगले बीस वर्षों में यूनानी उत्तराधिकारियों में सत्ता के लिये जो घोर युद्ध हुआ उसमें सिल्यूकस ने प्रमुख रूप से भाग लिया। मेद के क्षत्रप प्रथु (Pithon) और परशु के क्षत्रप वेणुकष्ट (Penkestas) सिकंदर के प्रमुख ईरानी सलाहकार थे। इनमें प्रथु बहुत ही महत्वाकांक्षी था। जैसे ही सत्ता का बटवारा हुआ, प्रथु ने एकदम बाल्हीक प्रदेश पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया। इस यूनानी बाल्हीक गठजोड़ से एक नयी संस्कृति का विकास हुआ जो एशिया में अपनी जड़ें जमाने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। क्लीमेंट के अनुसार इस सभ्यता की रूपरेखा से यूनानी-बुद्ध-कला के रूप में गांधार में प्रादुर्भाव हुआ। यही धीरे-धीरे पूरे भारत में फैल गई।[१]

इस यूनानी बाल्हीक राज्य का हाल वर्तमान पीढ़ी को उसके सिक्कों तथा ट्रोगस पेपी के ग्रंथों द्वारा विदित हुआ है। इस वंश की शासक देवदत्त द्वितीय (Diodotus II) था। यह अपने पिता के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है। पहले तो इसने यूनानी सेनापति अन्टीओकस द्वितीय से गठबंधन कर लिया। फिर स्वतन्त्र होकर एक नये राज्य को जन्म दिया जो (Sogdiana) सोगदन से मारगिन

---

१. क्लीमेंट

(Margiana) अर्थात् समरकंद से मर्व तक फैला हुआ था ।

इसी काल में पार्थ राज्य का भी उदय हुआ। बहिस्तून के लेखों में पार्थ को एक प्रांत बतलाया गया है। कहा जाता है कि पार्थ निवासी सीथिया देश से आये और वे ईरानी कबीलों से घुल-मिल गये। सन् २५० ईस्वी पूर्व आर्षस् नाम के योद्धा ने इस आर्षस् वंश की नींव डाली और सिल्यूकस की अधीनता से अपने को स्वतंत्र कर लिया। इस व्यक्ति को जोकि स्वयं दस्यु था, दस्यु जाति की (जिसे यूनानियों ने Dahoe दहा लिखा है) एक शाखा अपर्ण ने स्वतंत्रता प्राप्त करने में बड़ी सहायता दी। इस महान् योद्धा की मृत्यु संभवत: पार्थ जाति के साथ हुए युद्ध में हुई। सिल्यूकस के साथ लागिद जाति का जो संघर्ष हुआ उसमें आर्षस् के भाई त्रिदत्त (२४८-२१४) को अपने राज्य के विस्तार का पर्याप्त अवसर मिल गया, और उसने Hyrcania हुर्वण (Gurgan) तथा उसकी राजधानी Zadra karta (अस्तराबाद) पर अधिकार कर लिया। कुछ दिनों बाद इसने देवदत्त द्वितीय से मित्रता करके सिल्यूकशीय सेनाओं को पूर्णरूप से पराजित करके सम्राट् की पदवी धारण कर ली। इस प्रकार १४ अप्रेल सन् २४७ ई० पूर्व से इसके नये संवत् का आविर्भाव हुआ।[1] आर्षस् जाति में चूंकि अपने पुरुषों की पूजा का रिवाज जारी था। अत: आर्षस् का स्वयं उसके उत्तराधिकारी-गण देवता की भाँति पूजन करने लगे।

पहले वर्णन किया जा चुका है कि प्रथु ने वाल्हीक पर कब्जा कर लिया था। इस कार्य को वेणुकष्ट सहन न कर सका। अत: उसने भी आसपास के क्षत्रपों को एकत्रित करके एक नया संघ बना लिया। फिर उसने प्रथु पर भयंकर आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया। प्रथु इस आक्रमण से भयभीत होकर बेबीलोन की ओर भाग गया।

इसी समय ऐशिया मे सिकंदर के वंश का एक व्यक्ति जिसका नाम 'यूमीनीज' था और जो उसका सचिव भी रह चुका था एक अन्य यूनानी सेनापति ऐंटीगोनस से रणक्षेत्र में जूझ रहा था, किंतु शीघ्र ही उसे हारकर कैपेडोसिया के एक दुर्ग मे शरण लेनी पड़ी। इसी समय संयोग से ऐंटीपेटर नाम के सरदार की जोकि सिकंदर के वास्तविक उत्तराधिकारी के रूप में उभर रहा था, की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु से रंगमच का एकदम पासा ही पलट गया। इस ऐंटीपेटर ने अपने पुत्र कैसेन्द्र (Cassander) को उत्तराधिकारी न बनाते हुए पोलीपरचन नाम के एक अपने सहयोगी सेनापति को उत्तराधिकारी चुना था। स्वभावत: इस नियुक्ति से कैसेन्द्र अप्रसन्न हो गया। अत: पोलीपरचन ने ओलंपिया राजमाता का समर्थन प्राप्त

१. यह तिथि बेबीलोन के एक नक्शे से सिद्ध हुई है। देखिये—जी० स्मिथ की असुर खोज 'assyrian discoveries', पृष्ठ ३८६

कर दिया। सिकंदर के सचिव यूमीनीज की जो अभी तक ऐंटीगोनस से हारकर एक किले में पड़ा हुआ था, की अब बन पड़ी। उसकी शक्ति में अचानक ही वृद्धि हो गई और सारी सेना उसके अधीन हो गई। किंतु सन् ३१८ ई० में बैजैन्टाइन के जलयुद्ध में कैसेन्द्र ने उसे बुरी तरह हरा दिया। इस युद्ध में हारकर भी यूमीनीज ने साहस नहीं खोया, अब वह बाहर के युद्धों को छोड़कर भीतर की ओर घुस पड़ा। सन् ३१७ ई० पू० में वह मेसोपोटामिया (शामदेश) की ओर चढ़ दौड़ा। सिल्यूकस ने उसे निरर्थक रोकने का प्रयत्न किया। यूमीनीज ने आगे बढ़कर सूसा के पास पहुँचकर अन्य क्षत्रपों से संधि कर ली और अपनी शक्ति को बढ़ा लिया।

ऐंटीगोनस ने सिलयूक्स के साथ संधि करके सूसा के युद्ध में यूमीनीज का मुकाबला किया। अत्यंत धूर्तता और धोखे से यूमीनीज को उसने उसकी सेना द्वारा ही मरवा डाला। इस प्रकार उसने अपने को निष्कंटक बना लिया; यह घटना ३१६ ई० पू० की है।

अब ऐंटीगोनस ने न्यायालय द्वारा प्रथु को भी मरवा डाला। केवल अवशिष्ट वेणुकष्ट को भी उसने तरकीब से अलग-थलग कर दिया। इस प्रकार सूसा और एकपट्टन की अनंत धन-राशि उसके कब्जे मे आ गई। इतनी सारी शक्ति का स्वामी होकर उसने टालमी की ओर मुख मोड़ा और वह उससे निबटने के लिये सिल्यूकस की ओर बढ़ा किंतु सिल्यूकस बड़ा चतुर निकला, उसने इस समय की गति को पहचान कर भाग जाना ही उचित समझा और वह मिस्र देश मे टालमी के पास भाग गया जिसने उसे बड़े आदर के साथ अपने संरक्षण मे रखा। उस समय ऐंटीगोनस अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था और अब सबको यह साबित हो रहा था कि सिकंदर का सच्चा उत्तराधिकारी वही है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि किस प्रकार पोलीपरचन को बास-फ़ोरस (शाम) के मुहाने पर जल युद्ध मे कैसेन्द्र ने हरा दिया था। किंतु इसी बीच में राजमाता ओलंपिया ने नया नाटक खेला। वह ऐपीरस से चलकर यकायक मकदूनिया जा पहुँची और वहाँ उसने चालाक यूरीडिस को उसके पति फिलिप अरहीदयूस के साथ पकड़ने का यत्न किया और सफलतापूर्वक दोनों को पकड़वाकर अत्यंत निर्दयता से मार डाला। ऐंटीपेटर के अन्य सहायकों को भी उसने बड़ी निर्दयता से समाप्त कर दिया। किंतु कैसेन्द्र के आते ही पासा पलट गया। राजमाता ओलंपिया पकड़ी गई और उसे पत्थरों की भारी मार से मार डाला गया। इस घटनाचक्र के कारण युवक सिकंदर और उसकी माँ रक्षणा कैसेन्द्र के हाथों मे पड़ गये। कैसन्द्र ने स्वयं फिलिप की एक लड़की से विवाह कर लिया था, अतएव वह स्वय गद्दी का उत्तराधिकारी अपने को मानने लगा था। कुछ वर्षों तक इनको गिफ्तारी मे रखने के बाद जब उसने प्रजा के

असंतोष को जाग्रत होते देखा तो एक दिन उसने प्रतापी सिकंदर के इस अबोध बालक को भी नृशंसता से मरवा डाला और कुछ दिनों के बाद क्लिओपेटरा (एपीरस की विधवा रानी) तथा उसके अवैध पुत्र हेरीक्लीज को भी मरवाकर सिकंदर के वंश से सर्वथा मुक्त हो गया। अब सिकंदर के वंश में कोई भी वैध उत्तराधिकारी शेष न रहा। इस प्रकार सन् ३११ ई० पू० में केवल सिकंदर की मृत्यु के १२ वर्ष बाद ही संसार से उसके वंश का नाश हो गया।

पेरीडिक्कस, यूमीनीज, वेणुकष्ट और क्रेटीरस की समाप्ति के बाद ऐंटीगोनस भूमध्य सागर से वाल्हीक तक का राजा हो गया। टालमी मिस्र में शासक बना रहा। कैसेन्द्र यूनान और मकदूनिया का राजा बन बैठा। थ्रेस और एशिया माइनर मे लायसी मेचस ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। सिल्यूकस रंगमंच से भाग ही चुका था। इस समय ऐंटीगोनस ही सबसे बड़े भूभाग का स्वामी था। उसने अब यूरोप विजय करने की ठानी। किंतु उसकी बढ़ती को तीनों अन्य छोटे अधिकारी ईर्ष्या की दृष्टि से देख रहे थे। अतः उपरोक्त तीनों उसके विरुद्ध संघ बनाकर सन् ३०१ ई० पू० के इप्सस नामक स्थान की अंतिम लड़ाई तक बराबर युद्ध करते रहे। गाजा की पहली लड़ाई मे ऐंटीगोनस के पुत्र डिमित्रिय को उन्होने हरा दिया था। इस युद्ध में टालमी ने सिल्यूकस की सहायता से ऐंटीगोनस की सेना को हराने मे प्रमुख भाग लिया था। अब सिल्यूकस का भाग्योदय होने लगा। इस लड़ाई के बाद उसने केवल एक सहस्र शूरमाओ के साथ बेबीलोन की ओर कूंच किया। नैपोलियन की भाँति जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता जाता था उसकी सेना मे वृद्धि होती जाती थी। अंत में सन् ३१२ ई० पू० में उसने बेबीलोन पर कब्जा कर लिया। अब मेद के क्षत्रप ने १७००० सैनिको के साथ सिल्यूकस पर आक्रमण किया किंतु उसकी सेना में विद्रोह हो गया और क्षत्रप मारा गया।

सन् ३१२ के गाजा के युद्ध से ही ऐंटीगोनस ने यह भलीभाँति समझ लिया था कि उसका असली शत्रु तो टालमी है।[1] जब तक टालमी बना रहेगा, उसे

१. टालमी का वंशवृक्ष (मिस्र)
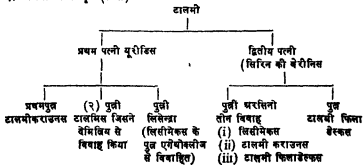
बराबर संकटपूर्ण स्थिति का सामना करना पड़ता रहेगा। अतः उसने उसको हराने का यत्न सोचा।

ऐंटीगोनस ने अपने पुत्र को एक सेना देकर बेबीलोन पर आक्रमण को भेजा। सिल्यूकस वहाँ नहीं था। अतः ऐंटीगोनस के लड़के द्विमित्रिय के सामने सिल्यूकस के सेनापति ने हथियार डाल दिये और बेबीलोन पर सहज ही में उसका अधिकार हो गया। वहाँ उसने भारी अत्याचार व लूट मार की जिससे हा-हाकार मच गया।

द्विमित्रिय के बेबीलोन से चले जाने के बाद सिल्यूकस मेद से बेबीलोन आया। उसने अब वहाँ न उलझकर यूनानी साम्राज्य के पूर्वी भाग की ओर ध्यान देना शुरू किया। सन् ३११ से सन् ३०२ ई० पू० तक पूरे ६ वर्ष तक वह बराबर पूर्व में विजय करता रहा। यहाँ तक कि वह भारत में पंजाब तक चला गया। उसके आगे उसका मुकाबला भारत के महान् शक्तिशाली सम्राट् चंद्रगुप्त[1] से जिसे यूनानी साहित्य में सैन्ड्रोकोटस (Sandrocottas) कहा गया है, से पड़ा। उसके साथ जो युद्ध हुआ उसका वर्णन आगे किया जायेगा।

लगातार विजयों से उत्साहित होकर सिल्यूकस ने बेबीलोन से ४० मील उत्तर की ओर नया नगर सिलूसिया बसाया और उसको अपनी राजधानी बनाया। उसने पूरे साम्राज्य को ४२ क्षत्रपों में बाँट दिया और इस प्रकार अपने शासन की जड़ें पक्की जमा लीं ताकि वह इन झंझाओं से हिल भी न सके।

उधर ऐंटीगोनस[2] ने पश्चिम में अपना युद्ध जारी रखा। सन् ३०२ में द्विमित्रिय ने साइप्रस पर आक्रमण किया। मिस्र का शासक टालमी स्वयं एक बड़ी सेना लेकर लड़ने को आया किंतु वह बुरी तरह हरा दिया गया। इससे उत्साहित होकर ऐंटीगोनस ने मिस्र पर आक्रमण किया किन्तु उसे सफलता न मिली।

इप्सस का युद्ध (सन् ३०१ ई० पू०)

ऐंटीगोनस की सफलताओं से कैसेन्द्र और लायसी मेचस भयभीत हो उठे। अतः उन्होंने एकमत होकर सिल्यूकस के साथ साँठ-गाँठ की और ऐंटीगोनस के

---

१. जिस समय चन्द्रगुप्त मगध देश पर राज्य कर रहा था उस समय तक्षशिला के प्रांत में लाहौर का राजा सोभूत था जिसे यूनानियों ने Sophytes लिखा है। उसका राजदूत मेगास्थनीज भारत से एक बृहत् ग्रंथ लाया था किंतु बाद को वह खो गया। सिल्यूकस के पौत्र ऐंटीओकस द्वितीय थियस के समय में जोकि सन् २६१ से २०६ ई० पू० तक रहा बाल्हीक तथा पार्थ राजाओं ने अपनी स्वतंत्रता फिर से प्राप्त कर ली।

२. ऐंटीगोनस का वंशवृक्ष। पृष्ठ २०६ पर देखें—

विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर दिया। ऐंटीगोनस ने यह देखकर स्वयं ही अपने पुत्र डिमित्रिय को यूनान से बुला लिया। इस समय दोनों पक्ष युद्ध की पूरी तैयारी करने लगे। सिल्यूकस के साथ २० सहस्र पदाति, १२ सहस्र अश्वारोही, ४८० हाथी और १०० रथ थे। ऐसा विदित होता है कि हाथी और रथ भारतीय योद्धाओं की देखरेख में थे। फ्रीगिया प्रांत के इप्सस नामक क्षेत्र में संग्राम शुरू हुआ। पहली ही भयंकर मारकाट में डिमित्रिय ने सिल्यूकस के लड़के ऐंटीओकस के नेतृत्व में लड़ रही फौज को बुरी तरह हरा दिया, किंतु हाथियों ने लड़ाई का पासा पलट दिया। ऐंटीगोनस अपने बहादुर पुत्र की प्रतीक्षा करते-करते मारा गया। उसके मारे जाने से लड़ाई का पासा पलट गया और सिल्यूकस की पूर्ण विजय हो गई।

इस विजय के बाद टालमी और लायसी मेचस सिल्यूकस से भयभीत हो गये अतः उन्होंने उसके विरुद्ध संग्राम करने का निश्चय किया। इस युद्ध की आशंका से सिल्यूकस ने अपनी राजधानी सिलूसिया से बदलकर आरेन्तीज को कर दिया। कुछ समय के बाद सिल्यूकस ने डिमित्रिय की लड़की से अपने विवाह का प्रस्ताव रखा जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस प्रकार दो महान् व्यक्तियों में मित्रता हो गई और टालमी तथा लायसी मेचस सिल्यूकस का कुछ न बिगाड़ सके।
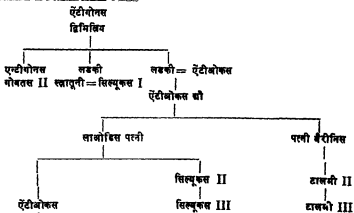
सन् २६७ ई० पू० कैसेन्द्र का स्वर्गवास हो गया। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकार के लिये झगड़ा पैदा हो गया। द्विमित्रिय ने इसका लाभ उठाकर सन् २६३ ई० पू० में मकदूनिया के सिंहासन पर कब्जा कर लिया। इसी बीच यूनानियों ने द्विमित्रिय की विलासिता से ऊबकर एक अन्य सेनापति पाइरस को चुन लिया। उसने जब सार्डिज पर आक्रमण किया तो वहाँ एगेथोलीज ने भी जो कि लायसी मेचस का पुत्र था उसका साथ दिया। द्विमित्रिय ने अपने जामातृ सिल्यूकस से सहायता माँगी। पहले तो वह तैयार हो गया परंतु उसके दरबारियों ने उसे द्विमित्रिय के घर में न घुस जाने देने के लिये सावधान किया। अतः सिल्यूकस ने उसे मैदान में पराजित किया और गिरफ्तार कर लिया। किंतु सिल्यूकस ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया। वह राजधानी ओरेंतीज में दो वर्ष रहकर मर गया।

सन् २८१ ई० पू० में टालमी भी मर गया। उसके बाद उसका बडा लड़का टालमी कैराउनस गद्दी पर नहीं बैठा बल्कि उसका एक दूसरा पुत्र बैठा। सिल्यूकस इस समय अपने भाग्याकाश में सूर्य की भाँति चमक रहा था। अतः कैराउनस वहाँ से भागकर पहले तो लायसी मेचस के दरबार में गया बाद में वह सिल्यूकस के दरबार मे चला गया। परंतु चूँकि सिल्यूकस इस समय बहुत वृद्ध हो चुका था अत. उसने अपने पुत्र को राज्याधिकार दे दिया और वह शांति से अपने घर मकदूनिया में रहने को जा रहा था, तभी क्रुद्ध होकर कैराउनस ने एक दिन जब वह वेदिका के पास बैठकर प्राचीन वीरो की कथाओ को सुन रहा था उसका वध कर डाला। इस प्रकार सिल्यूकस का अंत हो गया।

१३

ऐंटीओकस प्रथम

सिल्यूकस की मृत्यु के बाद उसके बृहत् साम्राज्य का उत्तराधिकारी कोई एक व्यक्ति न बन सका। क्योंकि उसका साम्राज्य बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था और उस सबकी रक्षा और संचालन करना कोई साधारण बात नहीं थी। सिल्यूकस की मृत्यु से एन्टीओकस को त्राण मिल गया और उसने अपने साम्राज्य-विस्तार के लिये जो यत्न प्रारम्भ किये उसमे उसके साले एन्टीगोनस गोनतस का काफी हाथ रहा। यह एन्टीगोनस प्रसिद्ध द्विमित्रिय का पुत्र था। उसने अपने बहनोई सिल्यूकस का बदला लेने के लिये शीघ्र ही कैराउनस पर हमला किया। किन्तु उसका वह बाल बाँका न कर सका और उसे रणभूमि से वापस आना पड़ा।

कैराउनस यहाँ तो विजयी हो गया पर उस पर एक दूसरी विपत्ति आ पड़ी। मध्य यूरोप की नंगी और बर्बर जाति 'गालों' ने उस पर हमला किया और उसके सारे प्रदेश को सन् २८० ई० पू० में रौंदकर उसे मार डाला। ये बर्बर जाति वाले न केवल धन-धान्य ही लूटते थे वरन् ये यूनानियों के लड़कों को भी खा जाते थे।

किन्तु ऐंटीओकस प्रथम ने इन गाल लोगों को बडी बहादुरी से पराजित कर दिया। लूसियन नामक इतिहासकार के अनुसार गाल लोगों के "विनाश-लीला करते हुए घोड़ो ने" ज्यों ही ऐंटीओकस की सेना के हाथियों को देखा तो वे बिदककर इधर-उधर भागने लगे और ऐंटीओकस को ईश्वर प्रदत्त विजय मिल गई।

सिल्यूकस का साम्राज्य अब तीन हिस्सों में बट चुका था। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि सिल्यूकस ने ऐंटीगोनस गोनतस की बहन (Stratonice) स्त्रातूनी से विवाह किया था, किन्तु थोड़े दिनों के बाद ही उसने इस स्त्री का अपनी दूसरी स्त्री से उत्पन्न लड़के से पुन: विवाह करा देने का जघन्य पाप किया था। सिल्यूकस ने मकदूनिया से अपने सम्बन्धों को और भी दृढ़ करने की दृष्टि से अपने काका को जो मकदूनिया का एक बड़ा सरदार था, अपनी एक

लड़की ब्याह दी थी। मकदूनिया राज्य छोटा अवश्य था परन्तु रक्त, युद्ध और वीरता के लिये काफी प्रसिद्ध था। अतः सिल्यूकस के साम्राज्य का प्रथम भाग इस वंश को मिला।

दूसरा भाग मिस्र के शक्तिशाली टालमी के अंतर्गत रहा। यह ऊपर ही बताया जा चुका है कि मिस्र के योद्धा टालमी द्वितीय के एक भाई मग (Magas) ने सिल्यूकस को अपनी लड़की उपमा ब्याह दी थी। टालमी की सेना में स्वयं बहुत से यूनानी सिपाही थे।

इसके सिवाय छोटे-छोटे राज्यों में कई सरदार स्वतंत्र हो गये। अथर्वन (अजरवेजान) आर्मीनिया, कैपेडोसिया और वियानिया में नये शासकवंश जन्म ले चके थे। इस प्रकार ईरान के पश्चिमी भाग और यूरोप मे यूनानी सम्राज्य का सर्वत्र लोप हो चुका था।

सन् २६२ ई० में ऐंटीओकस की मृत्यु हो गई। वह टालमी से युद्ध कर रहा था किन्तु टालमी उससे पराजित न हो सका था। तब उसकी सहायता के लिए एन्टीगोनस गोनतस दौड़ पड़ा और मिस्रियो को कास नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित किया। परन्तु ऐंटीओकस की मृत्यु ने इस विजय का कुछ लाभ नहीं उठाने दिया।

ऐंटीओकस की मृत्यु के बाद उसका लड़का अंतओकस थौ गद्दी पर बैठा। उसका राज्यकाल (२६२-२४६ ई० पू०) तक रहा। इसका नाम 'थौ' नाम के देवता के कारण थौ पड़ा। इसके समय में भी टालमी से युद्ध चलता रहा। अंत मे दोनों पक्षों ने थककर संधि कर ली और इस सधि की पुष्टिस्वरूप टालमी ने अपनी लड़की बेरीनिस (Bercnice) का विवाह थौ से कर दिया। इससे थौ की पुरानी स्त्री 'लोओडिस' बहुत चिढ़ गई और एक दिन उसने थौ को जहर देकर मार डाला।

सच पूछिये तो अब यूनानी साम्राज्य का अंत आ गया था। सन् २५६ ई० मे बाल्हीक प्रान्त के शासक देवदूत (Diodotus) ने सागदियाना तथा मार्गी के साथ गठजोड़ करके अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसके देखा-देखी पार्थ राज्य ने भी अपने को स्वाधीन कर लिया। अब दूरवर्तीय अथर्वन (अजरवेजान) ने भी अपने परशु स्वामी के नेतृत्व में अपनी शक्ति बढ़ाना शुरू कर दिया।

सीरिया का तृतीय युद्ध

थौ की मृत्यु ने फिर घरेलू युद्ध की भूमिका तैयार कर दी। इस युद्ध में बेरीनिस और लाओडिस दोनो प्रतिद्वन्द्विनी थीं। लाओडिस बड़ी रानी थी और उसको यह लाभ था कि उसके एक बालिग पुत्र भी था। अतः उसने

धोखे से बेरीनिस को पकड़वा कर उसके नाबालिग बालक के सहित उसे मरवा डाला। इधर जब यह घटना घट रही थी तो उधर मिस्र का शासक टालमी भी मर गया और उसके स्थान पर उसका पुत्र टालमी तृतीय गद्दी पर बैठा। यह टालमी उदार के नाम से प्रसिद्ध है। यह बड़ा प्रतापी था। इसने यूनानियों के घरेलू युद्ध का लाभ उठाकर मेसोपोटामिया सूसिग्राना, परशु, मेद और बाल्हीक तक के सारे प्रदेश जीत लिये। इस विजय को सीरिया के तृतीय युद्ध की संज्ञा दी जाती है। अंत में इस टालमी ने सिल्यूकस द्वितीय को जो कि लाप्रोडिस का लड़का था, युद्ध में पराजित करके मैदान से भगा दिया।

पराजित सिल्यूकस द्वितीय ने अपने भाई के पास सहायतार्थ सूचना भेजी तो टालमी डर गया और उसने दस वर्षीय संधि कर ली। सिल्यूकस का भाई ऐंटीप्रोकस मदद देने के स्थान पर सिल्यूकस को फँसा देखकर प्रसन्न हुआ और उसने सन् २३५ ई० मे पोन्टस के द्विमित्रिय की सहायता से सिल्यूकस द्वितीय को पूरी तरह अंकारा के युद्ध मे पराजित कर दिया। परन्तु जब बाद में दोनो भाइयों में संधि हो गई तो युद्ध से छुटकारा मिलने पर सिल्यूकस द्वितीय ने पार्थ और बाल्हीक की तरफ अपना ध्यान फेरा। उसने पार्थ प्रान्त को तो हरा दिया किन्तु बाल्हीक की सेनाओं का मुकाबला न कर सका और एक दिन जब वह घोड़े पर बैठा जा रहा था सन् २२७-२२६ मे वह उस पर से गिरकर मर गया।

द्वितीय सिल्यूकस की मृत्यु के बाद सिल्यूकस तृतीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी सिंहासन पर आरुढ हुआ। किन्तु वह तीन वर्ष के अल्प राज्यकाल मे ही मार डाला गया।

२२१ ई० पू० को पश्चिमी इतिहासकारों ने एक महान् परिवर्तनकारी वर्ष माना है। क्योंकि इसी वर्ष पूर्व मे महान् पार्थ साम्राज्य का और पश्चिम में रोम साम्राज्य का उदय हुआ। पश्चिमी इतिहासकारों ने यूनानी साम्राज्य के अंतर्गत परशु जाति का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। हेरोडोटस ने काफी गंभीरता से परशु जाति की विशेषताओं की प्रशसा की है। उसने यह बतलाने का स्थान-स्थान पर यत्न किया है कि परशु जाति तथा यूनानी स्वभाव तथा सयम में बहुधा एक से थे, दोनों जातियाँ आखेट खेलने, खेलकूद मे भाग लेने, बड़ी-बड़ी दावतों का आयोजन और उत्तम भोजनो के साथ मद्यपान करने में भी एक सी आदत वाली थीं। युद्ध और युद्धीय-धन को लूटने मे वे बेजोड़ थे। किन्तु इतिहासकारों ने परशु धर्म की बार-बार प्रशसा की है। इससे विदित होता है कि धर्म के मामले मे वे अपने यूनानी भाईयों से अधिक कुशल थे। सत्य बोलने, सत्य आचरण करने मे वे बेजोड थे और इन्हीं कारणों से उनका आकर्षण परशु जाति की तरफ अधिक हो गया था। इसी कारण उन्होने बड़े-बड़े सरदारों से विवाह सम्बन्ध भी कर डाले थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ईरान में यूनानियो की जो शाखाएँ रहीं

वे शुद्ध यूनानी एकाकी न होकर यूनानी ईरानी हो गई। अन्य, भूमि की उर्वरता, धर्म और काम की विशेषताओं ने उनका प्राचीन शौर्य नष्ट कर दिया। एपेमिया के पोसीडोनियस (१३५-५१ ई० पू०) ने अत्यंत दुःख और खेद के साथ लिखा है कि "ईरान में बसनेवाले यूनानियों को अच्छी भूमि मिल जाने से उनमें श्रम करने की शक्ति का ह्रास हो गया जिसके कारण जीवन-संघर्ष में वे पिछड़ गये हैं—उनका दैनिक जीवन समारोहों की दावतें उड़ाना मात्र रह गया। बड़े-बड़े सभागृहों में दिनभर वे भोज और मद्यपान में मस्त रहते हैं और संगीत की तानों पर झूमते रहते हैं।[1]

1. Pesidonius of athens V. 210

१४

पार्थिया (पार्थ राज्य का उदय)

मध्य परशु अथवा ईरान में पार्थ राज्य स्थित था। इस राज्य के उत्तर में वक्षुष नदी तथा दस्युस्थान था, पूर्व में वाल्हीक प्रदेश तथा आर्यन देश, दक्षिण में जारंग; बलोचिस्थान; कारमीनिया व लूट; और पश्चिम मे मेद, सूसियान व बेबीलोन थे। यह पार्थ राज्य वीर योद्धाओ की जन्मभूमि के रूप में प्राचीन काल से ही विख्यात था। वर्तमान मे यह पार्थ राज्य खुरासान तथा अस्तराबाद कहलाता है। पार्थ देश ने हर्षेण प्रान्त से मित्रता करके अपना विस्तार करना प्रारम्भ किया था। इसी पार्थ के दक्षिणी भाग का प्राचीनतम नाम तुर्वष था जिसे तौरस कहा जाता है।

उन दिनो इसकी राजधानी दमग़ान के समीप में थी। टालमी ने इस शहर का नाम कमसीन लिखा है। पार्थ के पूर्व की ओर तेजन नदी बहती है। इस पूरे ५०० मील लबे क्षेत्र मे गुर्जन का मैदान तथा अत्रेक नदी की घाटी बहुत ही उपजाऊ मानी जाती है। इस घाटी को कश्यप रुद्र नाम की नदी भी सींचती है। इनमे निशापुर और तुरशमि के इलाके अत्यंत पैदावारी क्षेत्र हैं।

पार्थ का प्राचीन इतिहास उसकी कहानियों से ही प्राप्त होता है। आसपास के क्षेत्रो से जहाँ कहीं युद्ध में पार्थ का वर्णन आया उससे ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की गई है। इसके अतिरिक्त कुछ पुराने सिक्के तथा लेखों से भी कुछ-कुछ मसाला मिला है। सबसे पहले पार्थ देश के इतिहास में हर्ष या आर्ष वंश (arsacid) का जिक्र आता है परन्तु दुर्भाग्य से न तो परशु और न अरब जातियों ने ही इस वंश का कोई हाल लिखा है, हाँ अलबत्ता ईसा की प्रथम शताब्दी से ही इस वंश का कुछ हाल मालूम होता है। किन्तु तब तक यह प्रसिद्ध साम्राज्य आधी अवधि व्यतीत कर चुका था। इस राज्य के विषय में पश्चिमी इतिहासकारों जैसे—रावलिनसन, गार्डनर, राथ आदि ने अवश्य कुछ प्रकाश डाला है।

आर्ष वंश के विषय में यद्यपि कोई खास जानकारी नहीं मिलती तथापि यह

विदित होता है कि यह जाति बाहर से आई हुई थी। पार्थ देश के मूल निवासी यह लोग नहीं थे। बहिस्तून के शिला लेखो से यह विदित होता है कि दु ने इन लोगों के विषय में वरकन या वर्षेण अथवा हर्षेण के रूप में उल्लेख किया है[1] जोकि अपने पड़ोसियों की भांति आर्य लोग ही थे। कश्यप समुद्र के पूर्व की ओर निवास करने वाली दस्यु या दह्यु[2] जाति जो वर्तमान में यामूत तुर्कमान में बसी हुई है, के पूर्वज घुमक्कड़ जाति के दस्यु थे। और उन्होंने परणी (Parni) नामक उत्तरीय स्थान से पार्थ पर हमला किया था। यह जाति कालांतर में तूरानी कहलाने लगी। अत्रेक नदी के उत्तर की ओर अरबल नखलिस्तान का भाग दसवीं शताब्दी तक (दह्यु स्तान) दस्युस्थान ही कहलाता रहा है। परन्तु लोगों की धारणा के अनुसार इस स्थान पर एक नगर भी कैकबाद द्वारा बसाया गया था। उसका नाम भी दस्युस्थान पड़ गया था।

हर्ष घराने का मूल पुरुष ऐसा कहा जाता है कि असाक (Asaak) नामक स्थान पर रहता था। यह नगर अष्टवन (Astavene) जिले में बसा हुआ था। बाद में इस जिले का नाम अरबल पड़ गया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक गुट्समिड ने इसका नाम कुशन बतलाया है। असक सम्भवतः ईरान के एक भाग अक्षण (अशकनी) का अपभ्रंश मालूम पड़ता है। इसमें भी यह अधिक समावना है कि यह शब्द ईरान की किसी वंशावली से निकला हो। फारस देश के इतिहासकारों के अनुसार इस वंश का आदि पुरुष प्राचीन ईरान का राजवंशी असक था[3] किंतु पश्चिमी लेखकों के अनुसार इस वंश के लोगों ने सक्षमान वंश (अखमीनियन) से संबंध प्रस्थापित करने की दृष्टि से हर्ष शब्द जोड़ा हो। क्योंकि सक्षमान सम्राटो में आर्तक्षयहर्ष के नामों में अर्षस् शब्द भी मिलता है।[4] इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि जब सक्षमान आर्यों का राज्य पार्थ प्रांत में भी था, उक्त हर्ष सम्राट जब पैदा हुआ था और उस समय उसका पिता हर्षेण तथा पार्थ प्रांतों का भी संभवतः अधिकारी था।

पार्थ लोग अपने वंश की शुरूआत सन् २४६-२४८ ई० पू० से करते हैं। यह हो सकता है कि यह वर्ष उनकी किसी विजय से सम्बन्ध रखता हो इसी प्रसिद्धि के कारण यह वर्ष विशेष रूप से स्मरण रखा जाता हो।

---

१. सर पर्सी पृष्ठ ३०७
२. फारसी में 'स को ह' बोला जाता है।
३. A fifth Journey in Persia Journal R. G. S. for Nov. Dec. 1906 कई विद्वानों के अनुसार यह अश्वक का बिगड़ा रूप है जिससे पख्तून बना है।
४. सर पर्सी पृष्ठ ३०८। सर पर्सी ने सक्षमान सम्राट के एक नाम Artaxerxes का स्पष्ट संस्कृत नाम अपनी पुस्तक के पष्ठ १९५ पर क्षयहर्ष लिखा है। इससे विदित होता है कि इस वंश का नाम 'हर्ष' ही होना चाहिये।

हर्ष अथवा आर्षक ने सन् २४६ से २४७ ई० पूर्व तक राज्य किया। उसका एक भाई त्रिदत्त (Tiridates) था जिसके साथ मिलकर उसने सिल्यूकस की ओर से नियुक्त अधिकारियों पर हमला किया। सिल्यूकस के एक अधिकारी ने जो असक प्रांत का शासक था त्रिदत्त का भारी अपमान किया था इसी हेतु उसने यह पग उठाया। इस अधिकारी का नाम फेरीक्लीज अथवा अगथक्लीज कहा जाता है। इस लड़ाई मे फेरीक्लीज मारा गया। इस शासक के मरने के बाद ही वाल्हीक; मार्गियाना तथा सुगद प्रदेशो ने सिल्यूकस साम्राज्य से अपना विच्छेद कर अपने आपको स्वाधीन घोषित कर दिया। ऐसी दशा में हर्ष के लिये असुरक्षित प्रान्तो की ओर अपने पैर फैलाने का स्वर्ण अवसर मिल गया। जस्टिन ने हर्ष को घुमक्कड जाति का सदस्य होने के कारण डाकू माना है किन्तु उसकी इस युक्ति को स्वय पश्चिमी इतिहासकारो ने भी नही माना है। सच बात तो यह है कि उस समय का कोई प्रमाणित इतिहास ही उपलब्ध नही है जिसके आधार पर कि कोई निश्चित नाम या तिथि निर्धारित की जा सके।

पार्थ की भाँति वाल्हीक प्रदेश पर वहाँ के एक बागी सरदार देवदत्त (Diodatus) ने कब्जा कर लिया। इस समय एक इन्द्र गौड (Andra Gorus) के नाम का व्यक्ति पार्थ का क्षत्रप था जिस पर अष्टवन के इस हर्ष ने हमला किया था। इसके बाद हर्ष के नाम का कही उल्लेख नही मिलता है। संभव है वह इस लडाई में, जो पार्थ के साथ सन् २४७ ई० पू० में हुई थी, मारा गया हो।

पार्थ प्रांत की राजधानी के विषय मे भी कई अनुमान हैं। रावलिसन ने इसे जाजर्म नगर के आसपास कही माना है जबकि अपोलोडोटस ने इसे कश्यप सागर तट से १४४ मील दूर माना है। पालिवियस नाम के इतिहासकार ने जिसने अतिखिस (Antiochus) के आक्रमण का उल्लेख किया है। लिखा है कि उसने हर्ष तृतीय की राजधानी शकटमपुरी (Hecatompylus) को ले लिया तथा वह तक्ष या ताक्षी की ओर बढा और वहाँ से हर्षण पर कब्जा कर लिया। तक्ष जिसे यूनानी इतिहासकारो ने Tak या Tagi लिखा है, के अनुसार यह शकटमपुरी अलवुर्ज श्रेणी मे तवारिस्तान के सिपहवुद या श्वेतबुद्ध की शरण-स्थली थी।[1] सिडलर तथा जैक्सन इतिहासकारों ने इसे प्राचीन कुमिस के खडहरो पर बसा हुआ नगर माना है, जो वर्तमान के दमगान से ८ मील दक्षिण की ओर है तथा तक्ष से केवल १६ मील दूर है अत. उपरोक्त कारणों से यही स्थान उसकी राजधानी होना मालूम पडता है।

---

१. पृष्ठ २०८

हर्ष द्वितीय (२४७ से २१४ ई० पू०)

अनुमानों के आधार पर हर्ष प्रथम के बाद उसका भाई हर्ष द्वितीय उसके उत्तराधिकारी के रूप मे सिंहासन पर बैठा। यह पहला पार्थ सम्राट है जिसके ढले हुए सिक्के वर्तमान मे उपलब्ध हुए हैं। यह भी अनुमान है कि यह हर्ष द्वितीय उपरोक्त वर्णित त्रिदत्त ही होगा जिसने कि वास्तव मे युद्ध के बाद पार्थ साम्राज्य की नीव डाली। यह उसके सौभाग्य, की बात थी कि उसकी अभिवृद्धि और विस्तार में यूनानी शासको अथवा सिल्यूकस कुटुम्ब के किसी भी शासक ने कोई बाधा नही डाली, क्योकि वे अपने गृहयुद्धों मे भयंकर रूप से फँसे हुए थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर हर्ष द्वितीय ने अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली। और उसने हर्षेण पर आक्रमण करके उस पर भी कब्जा कर लिया।

जब सिल्यूकस द्वितीय अपने भाई से सधि करके निश्चिन्त हो चुका तो उसने अपने पूर्वीय साम्राज्य की ओर ध्यान दिया। किन्तु उसने देखा कि पार्थ राज्य अब थोड़े दिनो मे ही एक शक्तिशाली राज्य बन चुका है, तो उसने एक बड़ी सेना लेकर मेद के इलाके से होता हुआ इस ओर कूंच किया। त्रिदत्त इस आक्रमण को रोकने मे अपने को सर्वथा असमर्थ पाता था अत. वह वक्षु और फरात नदियो पर रहने वाली जातियो के सरदार अश्व सियाक के पास चला गया जिसने उसका बड़ा आदर-सम्मान किया। किन्तु पता नहीं चलता कि बाद मे क्या हुआ जिसके कारण शीघ्र ही सिल्यूकस अपने पश्चिमी साम्राज्य की ओर लौट गया।

ऐसा मालूम पडता है कि पार्थ लोगो ने सिल्यूकस द्वितीय को किसी बड़े युद्ध मे हराकर उसे भागने पर विवश कर दिया होगा जिसको कि पक्षपाती पश्चिमी इतिहासकारों ने छिपाया है। क्योकि सब इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि पार्थ लोग कई पीढ़ियो तक सिल्यूकस द्वारा अपने विजय-संस्मरण को हर्षोल्लास के साथ मनाते रहे।[1]

सिल्यूकस द्वितीय के रणक्षेत्र से तिरोहित होने के बाद कई वर्षों तक आस-पास के प्रदेशो मे त्रिदत्त अपनी विजय-यात्राएँ करता रहा। उसने अपने साम्राज्य के अनेक नगरो का पुन.निर्माण कराया और अपवर्त[2] जिले मे जोकि चारो तरफ से जंगलों से आच्छादित था और जहाँ जगली जानवरो का खूब शिकार मिलता था, उसके बीच में उसने नई राजधानी बनाई जिसका नाम उसने धारा (Dara) रखा। किन्तु ऐसा विदित होता है कि सम्भवत: पानी की कमी के कारण यह राजधानी

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ ३१०

२. इतिहासकार बुन होफर के अनुसार अपवर्त का वर्तमान नाम बावर्द है जो अब कलात नादिरी कहलाता है, अपवर्त सस्कृत नाम है, जिसे पर्सी और बुन होफर ने भी स्वीकार किया है।

अनेक वर्षों तक नहीं चली। क्योकि प्रमाणो से विदित होता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी तक शकटमपुरी[१] ही राजधानी रही।

इसी बीच में जबकि पार्थ अपनी उन्नति में लगा था। यकायक अंतिखिस के रूप मे सिल्यूकस के बंश मे फिर एक नई शक्ति का उदय हुआ। इसका शासन काल २२३-२१३ ई० पू० में था। यह 'अंतिखिस तृतीय' के नाम से प्रसिद्ध है। यह अपने चचेरे भाई एकीग्रस के कारण अपनी शक्ति का उदय कर सका क्योंकि घर पर एकीग्रस ने सारा राज्यकार्य सँभाल लिया जबकि बाह्य विजयों के लिये वह निकल पड़ा। उसने बेबीलोन और उसके पश्चात् सीरिया (असुर प्रदेश) पर आधिपत्य करके एकीग्रस को ऐशिया माइनर का राज्यपाल नियुक्त किया। टिगरिस नदी के दक्षिण मे उसने मेद के मोलन तथा परशु के क्षत्रप सिकन्दर को पूरे अधिकार देकर राज्यपाल बना दिया। फिर उसने ऐंटिओक नगर पर आक्रमण करके टालमिस और टायर नामक नगरों पर कब्जा कर लिया। उसने मिस्र देश के टालमी के साथ २१७ ई० पू० मे राफ़िया के मैदान में घनघोर युद्ध किया। पहले दौर मे भारतीय हाथियो की सहायता से उसने मिस्र द्वारा प्रयुक्त अफ्रीकी हाथियो को मैदान से भगाकर विजय प्राप्त कर ली।[२] परन्तु बाद मे उसकी दूसरी सेना हार गई। किन्तु इसके बाद स्वयं टालमी ने संधि कर ली।

२१६ मे अंतिखिस ने तुर्वस् पर कब्जा कर लिया। परन्तु इसी बीच उसके भतीजे ने बगावत कर दी अत वह उसको दबाने के बाद पुन. पूर्व की ओर मुड़ा। अब उसका पाला पार्थ के शासको से पडा।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि हर्ष तृतीय ने सिल्यूकस घराने की इन कठिनाइयो से खूब लाभ उठाया। उसने अपने पिता की भाँति विजयो में अधिक ध्यान दिया। उसने मारदियाना और बाद मे मेद तथा रागियाना के शहरो पर कब्जा करके एकपट्टन पर कब्जा कर लिया। अब वह जगरस की ओर बढा। किन्तु इतने मे ही अपने भतीजे की बगावत से छुट्टी पाकर अंतिखिस मेद की ओर बढ़ा और हर्ष की अनुपस्थिति मे उसके प्रतिनधि को हरा कर उसने एकपट्टन पर कब्जा कर लिया। प्रसिद्ध सम्राट अष्टवेगु (astyages) की राजधानी मे अब भी भारी प्रासाद खडे हुए थे जोकि युद्ध की आग से दैवीय शक्ति या चमत्कार से अछूते बच गये। इसमे प्रसिद्ध अनाहिता देवी का प्रसिद्ध मन्दिर भी बचा हुआ था जिसे अंतिखिस ने लूटकर अपने धन की कमी को पूरा कर लिया। इस आक्रमण से भयभीत होकर हर्ष ने अपनी राजधानी को बचाने

---

१. वर्तमान मे दक्षिण पश्चिमी समगान—क्लीमेंट।

२. इससे विदित होता है कि उसकी सेना में शक्तिशाली भारतीयो की शृंखला थी।

के उद्देश्य से उसकी खंदकों मे पानी भरने के आदेश देकर वह चला गया। परन्तु अंतिखिस ने कश्यप सागरीय द्वारो को तोड़े जाने से रोक दिया जहाँ से कि पानी भरा जाना था। पार्थों ने अपनी राजधानी को अजेय समझकर उसकी रक्षा का कोई खास प्रबन्ध नहीं किया था। अतः अंतिखिस ने घेरा डाल दिया और फिर वह तुर्वस की ओर बढ़ गया जहाँ से वह सिकन्दर के रास्ते से आगे चलकर हर्षेण की पहाड़ियों की ओर बढ़ा किन्तु यहाँ पर हर्ष की फौजों ने गुरेला युद्ध से उसको थका दिया। अन्त मे जब वह हर्ष को न हरा सका तो समान मित्रता के आधार पर दोनों में संधि हो गई।

पार्थ से निबट कर अतिखिस वाल्हीक की ओर बढ़ा। इन्ही दिनो मे वाल्हीक में एक विद्रोह हो चुका था जिसमे राजसत्ता आर्य राजा देवदत्त के हाथ से निकलकर मेंगनेशियन की यूनानी जाति के यूथीदेमिय के हाथों में जा चुकी थी। अंतिखिस ने घेराबन्दी करके वाल्हीक सेना को तेजन नदी के किनारे पर हरा दिया। सिकन्दर महान के पदचिह्नों पर चलकर उसने हिन्दूकुश की घाटी में कुभा या काबुल नदी को पार किया, और खैबर के दर्रे से निकलकर पंजाब में घुस गया। जहाँ अशोक के उत्तराधिकारी के साथ उसने मित्रता कायम की और धन तथा हाथियो से लैस होकर वह लौटा।

कहने की आवश्यकता नही कि यूनानियो की गर्व-यात्रा मे अत्यधिक रुचि दिखानेवाले इतिहासकारो ने न तो अशोक के उत्तराधिकारियों के साथ अंतिखिस के किसी युद्ध का वर्णन ही किया और न उस विषय मे कोई विशेष विवरण ही लिखा क्योकि इसी प्रकार सिल्यूकस के बारे में यूनानी इतिहासकारो ने लिखा है कि उसने चन्द्रगुप्त से मित्रता कर ली जबकि वास्तविकता यह है कि वह चन्द्रगुप्त से पराजित हुआ था। इससे सिद्ध होता है कि या तो वह सिल्यूकस की भाँति भारतीय सम्राट से युद्ध मे हार गया होगा और फिर हाथी तथा धन दौलत की भेंट लेकर वापस लौटा होगा या फिर उसकी शक्ति की महानता से भय खाकर उसे मित्र बनाकर उस रास्ते को उसने छोडना ही श्रेयस्कर समझा होगा। क्योकि वह इतनी दूर से दिग्विजय करने की प्रबल इच्छा से आया हुआ भारत विजय की कामना न करे यह अस्वाभाविक सा लगता है।

अंतिखिस लूट, नर्मशीर और करमान के प्रान्तो से होकर वापस लौट गया। इस महान विजय-यात्रा से सिल्यूकस घराने और यूनान की खोई हुई प्रतिष्ठा एक बार फिर चमक उठी। पूरे मध्य ऐशिया में पुन: यूनानी सत्ता का दबदबा व प्रभाव छा गया किन्तु इसी समय इस यूनानी सत्ता को अपने से प्रबल-तम और नई उदीयमान शक्ति रोम-शासन से जूझना पड़ा जिसने अन्त में यूनान का तेज और रहे-सहे वैभव को हमेशा के लिये समाप्त कर दिया। सन् १८८ ई० पू० रोम से अंतिखिस की जो सधि हुई उसमे उसने यूरोप का सारा

साम्राज्य, तुर्वस के पश्चिम को सारे एशिया माइनर के प्रान्त और हैलिस नदी के पश्चिमी भाग छोड़ दिये। पश्चिम के साम्राज्य को खोकर अंतिखिस ने अब फिर पूर्व की ओर अपना ध्यान दिया और सन् १८७ ई० पू० में उसने सुदूर पूर्व की यात्रा हेतु असुर प्रदेश होता हुआ आगे बढ़ा किन्तु वह फिर लौट नही सका क्योंकि उसने इलीमियन पहाड़ी मे स्थित वेल के प्रसिद्ध मंदिर के विरुद्ध अभियान मे अपनी जान गँवा दी।

इधर पार्थ राजा हर्ष ने अंतिखिस की पीठ मुडते ही अपनी विजय-यात्रा फिर प्रारम्भ कर दी थी, जिसमे उसने काफी सफलता प्राप्त की। उसकी इस विजयाकाक्षा को उसके पुत्र और उत्तराधिकारी बृहस्पति (Phriapatius) ने जारी रखा। उसने मार्दी प्रान्त पर विजय प्राप्त की जो कि जाम्वन्त या देमवंत (Demavand) के अधिकार मे रह रहे थे। उसने मेद-रागियाना के प्रदेश में कश्यप द्वार के पश्चिमी ओर चरक्स या चरक्षु का निर्माण किया। किन्तु उसकी अभिवृद्धि और विस्तार का भार उसके भाई मित्रदत्त के कन्धों पर आकर पड़ा।

यहाँ पर वाल्हीक प्रदेश का भी इन दिनो का वर्णन करना अनुचित न होगा। यह प्रदेश हिन्दूकुश के दक्षिण तथा वक्षुस् घाटी के उत्तर मे स्थित है। जैसा कि पहले बताया गया है यह राज्य देवदत्त से यूनानी घराने में यूथीदेनिस के हाथो मे चला गया था। उसके बाद उसके पुत्र द्विमित्रिय ने अपने राज्य का विस्तार करके अफगानिस्तान और पजाब के कुछ भाग को भी अपने अधिकार मे कर लिया। किन्तु यह राज्य दुर्बल और छोटा होने के कारण अधिक समय तक न टिक सका और भारतीय आर्यों के साथ हुए सघर्ष मे उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये।

१५

पार्थ साम्राज्य का विस्तार

सिल्यूकस के घराने का राज्य (१८८-१७५) अंतिखिस तृतीय की मृत्यु के बाद कुछ समय तक कायम रहा। सिल्यूकस चतुर्थ के सिंहासनारूढ होने पर उसे रोम को युद्ध की भारी क्षति चुकाने पर बाध्य होना पडा जिसके लिये कि उसकी प्रजा बिलकुल तैयार न थी। अंत मे वह सन् १७५ ई० पू० मे एक विद्रोह मे अपने एक सामंत द्वारा मार डाला गया।

सिल्यूकस चतुर्थ के बाद अंतिखिस चतुर्थ गद्दी पर बैठा। यह कई वर्षों तक रोम में युद्धबंदी के रूप मे सजा भुगत चुका था। उसने किस्तबंदी से रोम के ऋण को चुकाने का यत्न किया। किन्तु इसी समय मिस्र के बढते हुए प्रभाव को देखकर उसे उसने पराजित करने का सकल्प किया और शीघ्र ही एक बड़ी सेना लेकर सिकन्दरिया पर आक्रमण करके उसे चारों तरफ से घेर लिया। सन् १६८ ई० पू० मे पायदना के युद्ध मे यूनान की बुरी तरह पराजय हुई। अपने शत्रु की इस पराजय के कारण रोम को दूसरी तरफ ध्यान देने का अब काफी मौका मिल गया।

सन् १६८ ई० पू० में रोम ने अंतिखिस को मिस्र छोड देने के लिये आदेश दिया। अंतिखिस ने अपनी कमजोरी को देखकर शीघ्र ही मिस्र छोड दिया। किन्तु वह हताश होनेवाला प्राणी नहीं था। जब उसने देख लिया कि मिस्र तथा पश्चिम मे उसके विस्तार की कोई सम्भावना नही है तो उसने पूर्व की ओर अपना ध्यान फेरा। पहले उसने आर्मीनिया पर चढाई करके उसे ले लिया; बाद में मेद तथा एकपट्टन पर अधिकार कर लिया। उसने एकपट्टन का नाम बदलकर अपने नाम पर इपीफेनिया रख लिया। उसके बाद उसने लूरिस्तान जाकर वहाँ के जगत् प्रसिद्ध मंदिरो को लूटने का यत्न किया। किन्तु कहा जाता है कि इसके बाद वह पागल हो गया और परशु मे वह सन् १६५-१६४ ई० पू० में मर गया।

चतुर्थ अंतिखिस ने मरने के कुछ समय पहले जो यहूदी बस्तियाँ जो

फोनीशिया के समुद्र तट पर बसी हुई थीं उन पर भी भयंकर अत्याचार किये। उसने जैरुसलम में घुसकर वहाँ का यूनानीकरण करना शुरू कर दिया। यहूदी लोगों का खतना कराना बंद कर दिया तथा मंदिर के प्रांगण में एक वेदिका का निर्माण कराकर वहाँ आर्यों की भाँति अश्वमेध यज्ञ किया।[1] इससे समस्त यहूदियों में घोर असंतोष फैल गया और उसके मरने के थोड़े दिन बाद ही वह स्वतंत्र हो गये।

इसके बाद उसका एक लड़का जिसकी आयु केवल आठ वर्ष की थी, गद्दी पर बैठा। इस समय पूरे साम्राज्य भर में अराजकता फैल गई थी। अतएव सिल्यूकस चतुर्थ का लड़का द्विमित्रिय जो रोम में बंधक के रूप में जीवन व्यतीत कर रहा था वहाँ से छूटकर आ गया और सन् १६२ ई० पू० में उसने सिंहासन पर कब्जा कर लिया। यह हालत देखकर मेद के क्षत्रप तिमार्क ने रोम के अफसरों को मिलाकर अपने नाम एक घोषणा पत्र लिखा लिया कि मेद का शासक तिमार्क ही है। इसके पश्चात् उसने असुर प्रदेश पर चढ़ाई की परन्तु वह उसे ले न सका। इसके बाद द्विमित्रिय और अतिखिस के पुत्र का युद्ध हुआ जिसमें द्विमित्रिय मारा गया।

पार्थ राजा मित्रदत्त

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि पार्थ के राजा बृहत् प्रथम के मरने के बाद उसके भाई मित्रदत्त ने राज्य-सत्ता की डोर सँभाली। इस समय वाल्हीक प्रदेश का राजा कहीं अन्यत्र उलझा हुआ था अतएव उसने हिंदूकुश की ओर उसकी सीमा के दो जिलों पर कब्जा कर लिया।

मित्रदत्त बड़ा बुद्धिमान था। उसने अपनी बुद्धि से अतिखिस को पश्चिमी देशों से उलझा कर पूर्व में अपने विस्तार की योजना बनाई। तिमार्क की मृत्यु के बाद उसने मेद पर कब्जा कर लिया और बाद में हर्षेण पर कब्जा कर पूरे इलामिस को रौंद डाला। धीरे-धीरे उसने परशु और बेबीलोन पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार मित्रदत्त प्रथम कास्पियन समुद्र से परशु की खाड़ी तथा वाल्हीक से फरात नदी तक के समस्त भूभाग का थोड़े समय में ही अधिपति बन गया।

वाल्हीक के राजा यूक्रातद की इसी समय मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि उसके क्रूर लड़के ने अपने पिता को रथ के पहियों के नीचे डालकर मार डाला और उसके शव की अन्तिम क्रिया न करते हुए उसे फिकवा दिया। किन्तु उसके इस भीषण कुकृत्य का फल उसे शीघ्र ही मिल गया। उसके वाल्हीक प्रदेश पर

१. सर पर्सी, पृष्ठ ३२७

अरंग, भारतीय तथा सीथियन राजाओं ने एक साथ चढाई की। परन्तु इसी समय मित्रदत्त ने भी उस पर चढाई कर सन् १५० ई० पू० मे उसे पूर्णरूप से परास्त कर दिया। यद्यपि द्विमित्रिय उसकी सहायता को आया था किन्तु उसकी हार को देखकर वह उसकी कोई सहायता नही कर सका। इसी प्रकार वाल्हीक पर उत्तर पूर्व की ओर शको ने हमला करके उसके निवासियों को वाल्हीक प्रदेश छोड़ देने को विवश कर दिया। इसके पश्चात के इतिहास का पता नही चलता किन्तु गत ५० वर्षों तक वाल्हीक प्रदेश पर हिंदूकुश के दक्षिणी भाग तक भारतीय-वाल्हीक संयुक्त शासन का काल रहा।[1]

एक बार फिर सिल्यूकश चतुर्थ के लडके द्विमित्रिय प्रथम के पुत्र द्विमित्रय द्वितीय ने जो अब २० वर्ष का हो गया था। अपने पूर्वी साम्राज्य को लेने की लालसा की। सिल्यूकस घराने के इस शासक के पास अभी भी मैसोपोटामिया (ईराक) था। सन् १४४ ई० पू० से बेबीलोन पर उसका आधिपत्य था ही क्योंकि पार्थ लोगो से बेबीलोन निवासी बहुत प्रसन्न न थे। अत उन सबने द्विमित्रिय का जोर-शोर से साथ दिया। मित्रदत्त के साथ हुए इस युद्ध मे वाल्हीक ने भी द्विमित्रिय का साथ दिया। परन्तु मित्रदत्त कोई कम कूटनीतिज्ञ नही था, उसने बडी होशियारी से द्विमित्रिय को सधि की झूठी चर्चाओ मे फँसाए रखकर एकदम उस पर हमला करके उसे गिरफ्तार कर लिया। पहले तो उसे साम्राज्य भर मे घुमाया गया। अन्त मे उसके साथ उदारता का व्यवहार करके उसे हर्षेण मे रहने का आदेश दे दिया। वहाँ हवालात मे रहते हुए एक बार उसने भागने की चेष्टा की किन्तु वह मित्रदत्त के लडके बृहत (Phraates II) द्वितीय द्वारा पकड लिया गया और पुन. नजरबन्द कर दिया गया। उसे अपमानित करने को उसने उसे दॉव लगाने के लिये नई चौपर (द्यून क्रीडा = Dice) भी भेजी।

सन् १३८ ई० पू० मे मित्रदत्त प्रथम इनेमिस को पुन: जीतकर अपने वैभव और उत्कर्ष काल मे ३७ वर्ष राज्य करके मर गया।

द्विमित्रिय के पतन का समाचार जब असुर प्रदेश मे उसके भाई सिदति को मिला तो वह उसके खाली सिहासन पर बैठा। उसने ट्राइफोन और यहूदियो पर पुन. विजय प्राप्त की। सन् १३० ई० पू० मे जब उसने देख लिया कि उसका राज्य भलीभाँति जम गया है तो उसने पार्थ राजा मित्रदत्त के पुत्र बृहत द्वितीय को हराने का सकल्प किया। उसने एक बहुत बडी सेना का संगठन किया और जब वह ईराक होता हुआ आगे बढा तो सहस्रो व्यक्तियो ने उसकी जय-जयकार की। इस काल मे तीन बडी-बडी लडाइयाँ हुई जिनमे वाल्हीक लोग

१. फारस का इतिहास—पर्सी, पृष्ठ ३२६

अपने प्राचीन स्थानों की ओर चले गये और सिदति ने बेबीलोन और मेद पर कब्जा कर लिया।

अगले जाड़े मे सिदति की सेनाओ को बडी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उसकी फौज में जो फालतू नौकर थे उन्होने भी बगावत आदि शुरू कर दी। उसके सौभाग्य से बृहत ने संधि की प्रार्थना की किन्तु वह कठोर शर्त्तों के कारण सम्पन्न न हो सकी। सधि की कठोर शर्त्तों के अनुसार पार्थ देश को सिदति तब ही छोडता जब बृहत उसे एक बडी धन राशिदेता तथा सिदीत के भाई द्विमित्रिय को नजरबन्दी से मुक्त कर उसे सौंप देता।

बृहत द्वितीय ने अब कोई अन्य चारा न देखकर कूटनीति का सहारा लिया। उसने द्विमित्रिय को छोडकर रक्षकों के साथ उसे असुर प्रदेश भेजा। किन्तु इसी बीच सिदति पर मेद ने आक्रमण कर दिया। इस सकट काल मे बृहत ने भी उस पर भयकर हमला किया। सिदति इस समय बहुत बुरी स्थिति मे फँस गया था। अतएव उसने निराश होकर एक पहाडी पर से कूद कर आत्महत्या कर ली। इधर बृहत ने उसके सैनिको का कत्लेआम मचा दिया और वापस लौटकर सिलूसिया नगर मे आग लगाकर उसके सैनिको तथा निवासियो को गुलाम बना डाला तथा भयकर क्रूरता से बदला लिया। इस प्रकार से सिल्यूकस वश का पूर्ण रूप से पराभव हो गया।

आर्य बृहत द्वितीय और चीनियों का सघर्ष

जिस समय पार्थ राज्य का उदय हो रहा था उसी समय पूर्व दिशा की ओर एक नई शक्ति का उदय हो रहा था, जिसने न केवल आपस मे ही सगठन किया अपितु आधे ससार को अगले आने वाली पीढियो तक त्रस्त और भयग्रस्त बनाये रखा।

चाऊ वंश के पतन के बाद चीन मे कई छोटे-छोटे राज्यो ने जन्म ले लिया। सन् २५० ई० पू० के लगभग इन छोटे-छोटे राज्यो को पुर्नगठित करने का श्रेय एक त्सिन नाम के सरदार को मिला जिसने समस्त मध्य चीन को अपने प्रभुत्व से सगठित किया। इसी शासक द्वारा उत्तर चीन के भयंकर हमलो से अपने मध्य राज्य को बचाने के लिये 'चीन की दीवार' का जो अत्यन्त प्रसिद्ध तथा संसार के महानतम आश्चर्यों मे गिनी जाती है निर्माण कराया गया।

सन् २०० ई० पू० चीन एक बडी सासारिक शक्ति बन गया। इस समय एक जाति जो हिंग-नू कहलाती थी, ने अपने पडौसी राज्यो को सताना और उन पर हमला करना शुरू कर दिया। यह जाति, जो आगे चलकर हूण कहलाई, बल और सख्या मे बहुत अधिक थी। इस जाति के डर के मारे जो जातियाँ पश्चिम की ओर भागी उनमे से एक यू ची जाति प्रमुख थी। पश्चिम मे इसी

नदी के कबीलों को जब यह जाति परास्त नहीं कर सकी तो उसने अपना मुँह दक्षिण की ओर फेरा और सन् १६३ ई० पू० में शको पर जो तारिम की तराई में रहते थे आक्रमण करके उन्हें अन्यत्र भागने पर विवश कर दिया। अब जब शक लोग भागे तो उन्होंने क्षीर दरिया को पार करके बाल्हीक प्रदेश की ओर धावा बोल दिया। इस प्रकार उनका बाल्हीक प्रदेश के पुराने शक्तिशाली आर्य राज्य से मुठभेड़ होना शुरू हो गया।

ये सब आक्रमण यद्यपि एक साथ नही हुए तथापि सीथियन बर्बर लोगो ने अपनी मार-काट, रक्त-पिपासा और लूट-खसोट से सभ्य संसार मे तहलका मचा दिया। सारे सभ्य राज्य भयभीत हो उठे। ये कबीले संगठित रूप मे रहकर कच्चे पक्के माँसो पर आश्रित होकर स्त्रियो को साझा रूप मे रखने के आदी थे।

सभ्य संसार के इस खतरे के समय बृहत द्वितीय जो कि पार्थ का शासक था पश्चिमी देशों से निबट रहा था। उसने सबसे बडी ऐतिहासिक गलती यह की कि अपने उत्कर्ष काल मे उसने असुर प्रदेश (सीरिया) को नष्ट नही किया, क्योंकि आगे चलकर उसे इसी राज्य से उलझना पडा। इस युद्ध मे जिसका कि पूरा वर्णन उपलब्ध नहीं हो रहा है सम्भवत: यूनानी सेनाओ की गद्दारी के कारण और उनके शत्रु पक्ष में मिल जाने से बृहत द्वितीय को रण में हारना पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई।

बृहत द्वितीय के बाद जो उत्तराधिकारी सिंहासन पर बैठा वह भी अपने पडोसी राज्यो को दबाने मे असमर्थ सिद्ध हुआ और उसका पूरा समय बर्बर जातियों से युद्ध करने मे ही बीता और अन्त मे इन्ही युद्धो मे वह मारा भी गया।

इस राजा की मृत्यु के बाद ऐसा विदित होने लगा कि पार्थ राज्य का नामो-निशान मिट जायेगा। किन्तु तभी एक नया उत्तराधिकारी मित्रदत्त द्वितीय सन् १४३ ई० पू० मे पार्थ के सिंहासन पर बैठा। यह बडा प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। इसने अपने वंश की डूबती हुई ख्याति को एक बार संसार के सामने उज्ज्वल रूप मे रखा। यह बहुत योग्य सेनापति और लडाकू वीर था। इसने अपने राज्य पर होने वाले कबीली बर्बर हमलावरो पर ऐसी मार दी कि वह अगले कई वर्षों तक पार्थ देश की ओर मुँह करना भी भूल गये। उसके भारी प्रहारों से इन बर्बर जातियों ने अब वर्तमान अफगानिस्तान मे, जो कि अपेक्षाकृत कमजोर क्षेत्र था घुसना शुरू कर दिया। मित्रदत्त ने इस सीमा में भी इन बर्बर जातियो को नहीं छोड़ा और अपने राज्य का हिमालय की सीमा तक विस्तार कर लिया।

पूर्व की लडाइयो से छुट्टी पाकर अब मित्रदत्त ने पश्चिम की ओर ध्यान दिया। बेबीलोन का शासक हिमरस बगावत की तैयारी कर रहा था। मित्रदत्त ने शीघ्र ही उस पर आक्रमण करके उसको पराजित कर दिया।

१६

पार्थ और आर्यमणि देश हयस्थान

आर्यमन अथवा आर्यमणि देश की राजधानी वन (Van) थी। इसका उल्लेख असुर सम्राटों के अभियानो मे पहले किया जा चुका है। वह पहले तीन भागों नैरी, उर्वतु और मणि मे बँटा हुआ था। किन्तु ईसा की सातवी शताब्दी पूर्व आर्यमणि जाति जो कि वास्तव मे आर्य है[1] पश्चिम से आई। हेरोडोटस[2] ने लिखा है *यह जाति वास्तव मे फ्रिगिया* (वर्तमान ईराक, टर्की आदि) से वहाँ पहुँची थी।[3] प्रसिद्ध इतिहासकार पर्सी ने आर्यमन को 'आरमिना' के नाम से संबोधित किया है। बहिस्तून के पुराने चित्रलेखों से विदित होता है कि यह देश पहले परशु साम्राज्य के अन्तर्गत था। क्षयहर्ष का इस देश पर राज्य करने का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। पश्चिमी इतिहासकारो के अनुसार आर्यमणि (आरमीनिया) निवासी अपने को एक हयाक्ष नाम के महापुरुष का वशधर बताते हैं। किन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है आर्यमणि देश अपने घोडो के लिये बहुत प्रसिद्ध था। यहीं के घोड़े सुदूर देशो को अश्वमेध यज्ञ के लिये ले जाये जाते थे।

जब मित्रदत्त प्रथम ने पार्थ राज्य का विस्तार किया तो इस आर्यमन देश ने अपने कंधे से सिल्यूकस के जुए को उतारकर फेक दिया और मित्रदत्त की अधीनता स्वीकार ली। निश्चय ही इस जुए को फेकने में पार्थ का लाभ था। क्योंकि इस समय जो बलहर्ष नाम का राजा (१५०-१२८ ई० पू०) राज्य करता था वह हर्ष या आर्ष वश का था। इस राजा के पुत्र ने पोटस प्रांत के

---

1. Sir Percy, Page 335
२. हेरोडोटस, जिल्द ७, पृष्ठ ७३
३. आजकल आर्यमणि देश रूसी साम्राज्य मे है। इस देश को अब भी हयस्थान के नाम से पुकारा जाता है। रूसी पत्रों मे इस प्रान्त का नाम हयस्थान ही लिखा जाता है। संस्कृत में हय' को घोडा कहते हैं। इसलिये संभव है कि प्रसिद्ध घोड़ों का देश होने के कारण इसका नाम 'हयस्थान' पड गया हो। —लेखक

विरुद्ध सन् ११३ ई० पू० तक युद्ध जारी रखा। यह पोटस वर्तमान टर्की राज्य के तथा आर्यमणि के उत्तरी भागों का क्षेत्र था और इसका उदय उन्हीं दिनों में हुआ था। वलहर्ष का पौत्र आर्तक्षय जिसे लेखक जस्टिन ने आर्त पुष्ट (Arta Vasdes) लिखा है, अपने पिता की गद्दी पर बैठा। ईसा पूर्व १०० मे मित्रदत्त ने आर्यमन देश पर चढ़ाई की जिसका बहुत सा हाल नहीं मिलता है परन्तु आर्यमन राजा का बडा पुत्र तिगरन (त्रिगुण) पार्थ राजा की कैद मे काफी दिनों तक रहा। इससे विदित होता है दोनो राज्यो में उस समय संघर्ष होता रहता था और पार्थ राज्य इनमे अधिक शक्तिशाली था।

एशिया का नामकरण

इन दिनो रोम का साम्राज्य दिनोदिन उन्नति कर रहा था। सयोग से इन दिनो पोटस के राजा का भी नाम मित्रदत्त था जैसा कि पार्थ राजा का भी था। पोटस का शासक रोम का मित्र था। अतः जब यूनानी सत्ता टूटी तो पश्चिम भाग का राज्य तो रोमन लोगों के पास चला गया और पूर्वी प्रांत पोंटस को मिल गये। इससे पोटस की काफी शक्ति बढ़ गई। इनमे से जो रोमन लोगो को क्षेत्र मिला उसका नाम एशिया रखा गया, तब से ही इस महाद्वीप का नाम एशिया पड गया। यह सन् ईसा पूर्व १२६ की घटना है।[१]

आर्य-रोम युद्ध का श्रीगणेश

पोटस का राजा मित्रदत्त छटवाँ जिसने सन् १२० से ६० ई० पू० तक राज्य किया अपने को प्राचीन आर्यवंश का मानता था क्योकि वह सक्षमान (Acharemanes) वश का था किन्तु उसकी माँ सिल्यूकश वंश की थी। बाल्यकाल मे ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था और वह अनाथो की भाँति इधर-उधर भटकता फिरता रहा किंतु भाग्य उसका साथ दे रहा था। वह सुंदर, वलिष्ट शरीर का तथा पढा-लिखा युवक था। किंतु वह बडा अत्याचारी और मूर्ख भी था। जिसके किस्से आज तक प्रचलित हैं। साधारण व्यक्ति की भाँति उसने अपना चरित्र प्रारंभ किया और शीघ्र ही वह एक विजेता बन गया। इन दिनों यूनानी शहरो पर जगली जातियो के आक्रमण हो रहे थे[२] अत इसने इन जातियों को युद्ध मे मार भगाया तो स्वतः यूनानी बस्तियों ने उसे उद्धारक और अपना नेता मान लिया और इस प्रकार सहज ही में वह धन-धान्यपूर्ण इलाके वासफोरस का स्वामी बन गया। उसने अपनी विजय यात्रा जारी रखी और थोड़े ही दिनो में आर्यमणि

१. प्रसिद्ध ईसाई धर्म-पुस्तक नये टेस्टामेंट में भी इसी प्रकार का उल्लेख है।
२. इतिहासकार मामसेन ने इन जगली जातियो को सीथियन बताया है।

देश के एक भाग पर भी कब्जा कर लिया। यह देखकर आर्यमणि राजा तिगरन (Tigranes) ने अपनी कन्या क्लियोपात्र का विवाह उससे कर दिया जिसके कारण मित्रदत्त षष्ठ का राज्य और भी सुस्थायी हो गया। इस तरह पोंटस राज्य रोमन लोगों का मित्र, आर्यमणि का सबंधी और आसपास के क्षेत्रों के उद्धारक के रूप मे प्रसिद्ध हो गया।

इसके पश्चात् जब मित्रदत्त ने पैफलेगोन तथा कैपेडोक प्रातो पर अधिकार कर लिया तो रोमन लोग पोंटस की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर चितातुर हो गये अतः उन्होने अपने सेनापति सल्ला को सग्राम के लिये भेजा। मित्रदत्त उसकी महान सेना का मुकाबला नही कर सकता था अतः उसने अधीनता स्वीकार कर ली। सल्ला प्रथम रोमन सेनापति के रूप में सारे प्रांतों को रौंदता हुआ आगे बढ गया किंतु जैसे ही वह लौटा सन् ८८ ई० पू० के लगभग ये सब प्रांत पुन: स्वाधीन हो गये किंतु जब रोमन लोगो ने पुन: एक नये सेनापति को भेजा तो फिर मित्रदत्त ने अधीनता स्वीकार कर ली।

पार्थ सम्राट मित्रदत्त द्वितीय पोटस राज्य की इन गतिविधियो पर पूरी नजर रखे हुए था और वह चितातुर भी था। क्योकि उसी की सहायता से पोटस ने राज्य-सत्ता पाई थी जिसका एक भाग स्वय पार्थ शासन को मिला था। किंतु पोंटस के उन्नतिकाल मे न केवल पोटस ने ये दिये हुए राज्य पार्थ से वापस ही ले लिये अपितु पार्थ के सीमावर्ती क्षेत्रो पर भी उसने कब्जा कर लिया था। अतः सन् ६२ मे जब रोमन जनरल सल्ला ने एशिया में चढ़ाई की तो पार्थ ने उसके साथ आक्रामक रक्षात्मक संधि करने के लिये अपने दूत अर्वुद (Orobazus) को भेजा। उस समय तो यह सधि हो गई किंतु बाद मे परिस्थितियो ने इस सधि पत्र को रद्दी की टोकरी मे फेके जाने पर विवश कर दिया। तब भी यह तथ्य हमेशा स्मरण रहेगा कि इस समय रोम और एशिया अर्थात् पश्चिम और पूर्व की दो शक्तियो का आपसी मिलाव एक मित्र के रूप मे प्रारभ हुआ।

पार्थ सम्राट का पश्चिम के देशो के साथ ही केवल मिलन नही हुआ अपितु इसी पार्थ सम्राट के समय में चीन का राजदूत सर्वप्रथम इसके दरबार मे गया। इस प्रकार पार्थ के सबंध सुदूर पूर्व तक जुड गये।[1]

सब चीनी विद्वान इस तथ्य से पूर्ण सहमत हैं कि सन् १७० ई० पू० तक चीन को पश्चिम का कोई ज्ञान नही था। सबसे पहले हान वश के शासक ने पार्थ राजा हर्ष के पास अपना राजदूत भेजा। चीनियों ने पार्थ देश को 'अशियह' लिखा है जोकि हर्ष का ही अपभ्रंश है। चीनियों ने पार्थ राज्य को धन धान्यपूर्ण लिखा है। उनके वर्णन मे पार्थ राज्य के नगरो के चारो तरफ दीवारें बनी हुई बतलाई गई हैं।

---

१. जनवरी १६०३ की एशियाटिक त्रैमासिक पत्रिका में पार्कर ने उल्लेख किया है।

चावल, गेहूँ और अंगूरों की शराब के निर्माण का काफी जिक्र है। पार्थ को एक बहुत बड़ा राज्य बतलाया गया है। चाँदी के रुपयों का जिस पर शासक की मूर्ति अंकित है प्रचलन होना लिखा है। उनकी भाषा के बारे में लिखा है कि वह बराबर-बराबर लिखी जाती है (क्योंकि चीन की लिपि ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाती है अतएव उसे इस पर आश्चर्य हुआ होगा)। चीन के राजदूत जब अपने देश को लौट कर जाते थे तो वे इन देशों से मुर्गाबियाँ और उनके अंडे ले जाते थे जोकि चीन में यह बड़ी अनोखी वस्तु मानी जाती थी।

सन् ८८ से लेकर सन् ६६ ई० पू० तक पार्थ राज्य का विशेष इतिहास नहीं मिलता। इतना अवश्य पता चलता है कि सन् ८८ ई० पू० में जब पार्थ शासक की मृत्यु हो गई तो आर्यमन राजा तिगरन (Tigranes) ने चारों तरफ अपनी सीमाएँ बढ़ा ली। उसने वर्तमान ईराक के मेसोपोटामिया (Mesopotamia) का ऊपरी भाग तथा मेद का अत्रपाटन पार्थ से छुडा लिया। इस प्रकार सन् ७४ तक आर्यमन राज्य शक्तिशाली राज्य बन गया और उसने एशिया के राजाओं की भाँति 'साहानुसाह' की पदवी धारण की।

जब रोम ने विस्तार हेतु पोंटस तथा आर्यमन पर आक्रमण किये तो पार्थ राज्य चुपचाप बैठा उनका पतन देखता रहा। किंतु जब रोमन सेनापति लुकुलस के हाथ से पपी के हाथ में सैनिक नेतृत्व आया तो दशा एकदम बदल गई।

आर्य राजा मित्रदत्त छठवें के साथ रोम साम्राज्य का प्रथम सपर्क (सन् ८९ से ६६ ई० पू०)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है पोंटस का राजा मित्रदत्त षष्ठम् धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढा रहा था। अब वह इस योग्य हो गया था कि उसे इस बात का भास होने लगा कि वह रोम की शक्ति का मुकाबला कर सकता है अतः उसने रोम से टक्कर लेने की ठान ली। इसी बीच मित्रदत्त षष्ठम ने परगेमस पर चढ़ाई कर दी। वहाँ उसने अपने को वहाँ के निवासियों का त्राणदाता कहकर उसने अगले पाँच वर्षों को निवासियों के सारे टैक्स माफ कर दिये। 'एशिया' नाम के क्षेत्र में रोमन लोगों की जो फौज एकत्रित थी उस पर मित्रदत्त ने विजय प्राप्त की। कहा जाता है कि उसने वहाँ ८०,० ० सैनिकों व निवासियों को इस युद्ध में मौत के घाट उतार दिया। उसके जहाजी बेडे ने और भी आगे बढ़कर डेलोज तथा पिरेअस पर कब्जा कर लिया। ऐथेंस ने शीघ्र ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके बाद अन्य यूनानी नगरों ने भी उसका अनुसरण करके मित्रदत्त की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार एक बार फिर पूर्व देशों का यूनान पर कब्जा हो गया।

एशिया निवासियों की बढ़ती हुई शक्ति को रोम चिंता और भय की दृष्टि से देख रहा था अत उसने अपने प्रसिद्ध सेनापति सल्ला को यूनान से मित्रदत्त की सेनाओ को निकालने को भेजा। सल्ला अपने साथ प्रसिद्ध रोमन योद्धाओं की ३०,००० सेना के साथ आगे बढ़ा। उसने एथेंस की ओर बढ़कर पिरेअस पर घेरा डाल दिया। किंतु वह उसे न ले सका और उसकी सेना की बड़ी दुर्दशा हुई। बाद में वह केवल एथेंस पर कब्जा करने में सफल हो गया। अंत मे जब विजय हर्ष के साथ मित्रदत्त की सेना यूनानी नगरो को छोड़कर वापस चली गई तभी सल्ला को पिरेअस लेने का अवसर मिल गया। रोम के इतिहासकारो ने सल्ला के चेरोनिया के युद्ध को जो उसने मित्रदत्त की सेना के साथ अगले वर्ष लड़ा, बहुत बढा-चढाकर वर्णन किया है। और लिखा है कि इस युद्ध में सल्ला की १५ सहस्र सेनाओ ने एशियावासी मित्रदत्त की सेना को परास्त करके २००० टेलेन्ट तथा ७० जहाज प्राप्त कर लिये। यह प्रथम 'मित्रदत्तीय युद्ध' कहलाता है।

दूसरे मित्रदत्तीय युद्ध का कोई महत्त्व नही है किंतु तीसरा मित्रदत्तीय युद्ध बहुत काल तक लबे संघर्ष के रूप मे चला। मित्रदत्त को रोम के आतरिक संघर्ष का पता चल गया, इतने मे ही प्रसिद्ध सेनापति सल्ला की मृत्यु हो गई। स्पेन में भी बागियो की विजय हो रही थी। अत. उसने विजयी विद्रोहियो के साथ सधि कर ली। सन् ५४ ई० पू० मे उसने बिठानिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। क्योकि यहाँ के शासक के कोई सतान न होने से उसने अपना राज्य रोम के गण-राज्य को सौंप दिया था। उसने बहुत शीघ्र ही बिठानिया को जीत लिया। किंतु जब रोमन सेनापति लुकुलस मैदान में आया तो स्थिति गभीर हो गई। इसी बीच मित्रदत्त का जहाजी बेडा तूफान में फँसकर नष्ट हो गया। अत. इस युद्ध मे मित्रदत्त को पोटस छोडकर आर्यमन देश की ओर जाने को विवश होना पड़ा।

रोमन सेनापति ने आर्यमन राजा तिगरस (Tigranes) से मित्रदत्त की सहायता न करने के लिये कहा किंतु उसने न केवल अपने श्वसुर मित्रदत्त को शरण ही दी अपितु रोम राज्य के विषय मे दर्पपूर्ण उक्ति मे कहा कि "रोमन लोग संसार भर मे राजदूतो की संख्या तो अधिक रखते हैं परन्तु सैनिको की सख्या मे वृद्धि कभी नही करते।" अतः इस दशा मे युद्ध होना अनिवार्य था और जब युद्ध हुआ तब उसे रोमन सेना के सामने पूर्व की ओर भाग जाने पर विवश होना पडा। किंतु लुकुलस भी संपूर्ण आर्यमन देश को अपने अधिकार में न कर सका। अतः उसने आर्यमन देश को छोड़कर दक्षिण की ओर बढ़ना शुरू किया और निसिबिस (निसीबिया) को अपने कब्जे मे कर लिया। सन् ६७ मे लुकुलस फिर पोंटस लौट आया। किंतु इसी बीच मित्रदत्त की सेनाओं ने उसे फिर घेर लिया। सयोग से मित्रदत्त की सेनाओ मे विद्रोह हो गया जिसके कारण वह युद्ध

नहीं कर सका। तब भी लुकुलस मित्रदत्त की सेनाओं को पूर्णरूप से पराजित नहीं कर सका।

इसी बीच रोम मे एक नये सेनापति पम्पी का उदय हुआ। यह रोम के महान सेनापतियो में से एक गिना जाता है। वह स्पेन और अफ्रीका की कई लड़ाइयो में लडकर विजय प्राप्त कर चुका था। अत. एशिया के युद्ध मे विजयश्री प्राप्त करने के लिये रोम ने उसकी नियुक्ति की। इस समय की स्थिति यह थी कि मित्रदत्त की सेनाओं ने पोंटस पर कब्जा कर लिया था और लुकुलस की गरुड़-ध्वज वाली 'महान सेनाएँ' आर्य सेनाओ के सामने हथियार डाल कर भाग चुकी थीं।

पंपी के आगमन से रोमन सेनाओं में एक नया जोश आ गया। सन् ६६ में लुकुलस और पंपी की सेनाएँ एकसाथ मिल गईं। मित्रदत्त के लिए इतनी बड़ी सेना के साथ युद्ध करना एक दुष्कर कार्य था। इस स्थिति मे उसने युद्ध को टालते रहने की प्रक्रिया को अपनाया। जब रोमन सेनायें आगे बढ़ी तो मित्रदत्त ने बडी चतुरता से पीछे हटकर पंपी की सेनाओं को रसद पहुँचाने वाले पिछले भाग को काटकर उसे पपी की सेना से अलग कर दिया। अत: आक्रमणकारी के रूप में बढती हुई रोमन सेना भारी संकट मे फँस गई। आर्य राजा की इस नई चाल से रोमन लोगो को अब स्वयं अपनी रक्षार्थ ही युद्ध करना पडा। किन्तु इसी बीच रोम से नई कुमुक आ गई, तो पोटिक राजा ने पूर्व की ओर बढना शुरू कर दिया और जब वह आर्यमन देश में घुसा तो तिगरन ने क्रुद्ध होकर अबकी बार न केवल उसको शरण ही दी किन्तु उसका सिर काटकर लानेवाले को पुरस्कार देने की घोषणा भी कर दी। पता नही चलता है कि इन दिनो मे श्वसुर जामातृ के संबंधो मे इतना खिचाव किसलिए उत्पन्न हो गया था। अत: मित्रदत्त उस प्रदेश को छोडकर अपने साम्राज्य के बासफोरस स्थान की ओर चला गया। यहाँ उसके लडके ने बगावत कर दी किन्तु इसी बीच रोमन सेनाओं के आ धमकने से उसके पुत्र ने युद्ध न करके आत्मघात कर लिया। इस पर भी मित्रदत्त ने हिम्मत न हारी।

इसी बीच पंपी ने आर्यमन की राजधानी आर्तासकता-आर्ताकार्ता (Artaxata) पर आक्रमण करके तिगरन को हरा दिया तथा उसे और उसके लड़के को सधि करने पर विवश किया। संधि की शर्तों के अनुसार ६००० टेलेन्ट अर्थात् १४ लाख पौंड हरजाने के रूप मे तथा पोटस द्वारा विजित सारे प्रदेशो को उसे छोड देना पडा। यह प्रदेश सिलीशिया, फोनीशिया तथा सीरिया के क्षेत्र थे। राजा के लड़के को राज्यपाल का पद लेने को कहा गया किन्तु उसने अपने गौरव के अनुरूप न समझकर उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर उसे तथा

उसकी पत्नी को गिरफ्तार करके विजेता के सामने नतमस्तक होने को विवश किया गया।

तिगरन को परास्त करके पंपी अब अलबानिया की ओर उस तंग पहाड़ी के दुर्गम रास्ते से आगे बढ़ा जहाँ तक जाने मे अब तक किसी ने साहस नहीं किया था। यह स्थान वातूम से बाकू को मिलाने वाला मार्ग है। उसने यहाँ मित्रदत्त की सेनाओं से सामना करने का यत्न किया किन्तु मित्रदत्त अब भी उसकी पहुँच से बाहर था अतः उसने कुर (Kur)पर कब्जा कर लेने से ही संतोष कर लिया।

आर्यमन देश को पूर्णरूप से पराजित न कर सकने के अपने उद्देश्य में सफल न होते हुए देख पंपी ने अब कूटनीति का सहारा लिया। उसने पार्थ राजा के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। पार्थ में इस समय बृहत तृतीय गद्दी पर आसीन था। उसने बृहत से प्रस्ताव किया कि यदि वह पंपी को सहायता दे तो आर्यमन देश के करड्यू्न और आदियावन प्रात जोकि मूल मे पार्थ के थे, वे पुनः पार्थ को दे दिये जावेंगे। बृहत ने यह स्वीकार कर लिया, बृहत की राजधानी में इस समय आर्यमन देश के राजा तिगरन का एक विद्रोही पुत्र अपने साथियो सहित रह ही रहा था। अतः उस सधि की शर्तों का पालन करवाने में उसे कोई भी कष्ट नहीं हुआ। उसने एक बडी सेना के साथ युवराज को साथ लेकर आर्यमन पर आक्रमण कर दिया तथा उसकी राजधानी पर कब्जा कर लिया। उसने यह समझकर कि लड़ाई समाप्त हो गई है, युवराज को आर्तासकता (Artaxata) राजधानी को घेरे रहने के लिए छोड दिया तथा वह वापस लौट आया। इसी समय तिगरन ने पुन बडे वेग से आक्रमण किया और पार्थ की सारी सेनाओं को पूरे क्षेत्र से निकालकर पुन अपनी राजधानी पर कब्जा कर लिया। ऐसे गाढ़े समय मे पंपी ने आकर पार्थ की सहायता की तथा जो संधि हुई उसका वर्णन ऊपर किया ही जा चुका है। किन्तु इसी समय पंपी और उसके जनरलों द्वारा पार्थ राजा बृहत को 'साहानुसाह' न मानने के कारण आपस में मनमुटाव बढ़ गया और पार्थ की सेना व निवासियों मे रोम के प्रति घृणा भर गई। पंपी ने इस व्यवहार से तंग आकर पार्थ देश को सजा देने की सोची किन्तु उसकी सेना ने उसका साथ नही दिया। इसने बडी चतुरता से यह समझकर कि पार्थ को हराना अत्यंत टेडी खीर है, आर्यमन तथा पार्थ देश के संबंधों को आपस में तय करने के लिये कुछ बीच-बचाव करनेवाले व्यक्तियों के सिपुर्द करके वह क्षेत्र से हट गया।

अब पोटंस का राजा मित्रदत्त जोकि अपने साहस तथा वीरता के लिए अत्यत प्रसिद्ध था, रोमन सेनाओं पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा। यही नही अब वह परिस्थितियों को अनुकूल देखकर रोमन लोगों से जन्मक्षेत्र इटली पर ही आक्रमण करने की इच्छा से आगे बढा। यद्यपि उसका यह वृद्ध काल था तो भी उसने हिम्मत नही हारी पर दुर्योग से इस समय उसके पुत्र ने बगावत कर दी।

इस बगावत में गरीब-अमीर सारी प्रजा ही उसके पुत्र के साथ मिल गई। अतः उसने निराश होकर अपनी पत्नी-पुत्रियों-रानियों, दासियों के साथ जहर पीकर आत्मघात कर लिया। इस प्रकार सन् ६३ ई० पू० में इस महान् सम्राट मित्रदत्त का अंत हो गया। उसकी मृत्यु से रोम की सेनाओं मे अपूर्व हर्ष मनाया गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि "पंपी की समस्त सेना ने जैसे ही सम्राट की मृत्यु का समाचार सुना वह दावतें उड़ाने लगी जैसे कि अकेले मित्रदत्त के रूप मे उसने सहस्रों शत्रु सैनिको पर विजय प्राप्त कर ली हो।"[1]

इस प्रकार इस महान् राजा का अंत हुआ। पंपी ने यद्यपि अब आगे बढने का यत्न किया किन्तु वह अपने अभियान मे सफल न हो सका।

सन् ५७ से ५५ ई० पूर्व तक पार्थ अपने गृह-युद्ध मे फँसा रहा। इस बीच में बृहत सम्राट को उसके दोनो पुत्रों ने मार डाला। जैसे ही रोमन जनरल पंपी ने पीठ फेरी कि दोनों पुत्रों ने दो वर्षों के भीतर यह सब काड कर डाला। बृहत् की हत्या के बाद उसका बडा लडका जिसका नाम भी मित्रदत्त था सिंहासन पर बैठा किन्तु वह अन्याय और क्रूरता के कारण शीघ्र ही अपनी लोकप्रियता खो बैठा, अत. उसके छोटे भाई उरुद ने जिसने कि 'साहानुसाह' की पदवी धारण की, सिंहासन पर कब्जा कर लिया। मित्रदत्त को उदारतापूर्वक मेद राज्य दे दिया गया। मित्रदत्त इससे संतुष्ट न हुआ और उसने बगावत की किन्तु वह हार गया और सहायता के लिये रोमन जनरल गैबीनियस के पास गया। रोमन जनरल अपनी पूर्व विजय के स्वप्न देख ही रहा था, उसने इस अवसर को हाथ से न जाने देने का बीडा उठाया। किन्तु इसी बीच मिस्र की राजनीति ने रोमन जनरल को मिस्र जाने पर विवश कर दिया। अतः मित्रदत्त अकेला पड गया और जब कि वह सेलूशिया और बेबीलोन पर कब्जा कर रहा था वह बेबीलोन मे पकड़ लिया गया और मार डाला गया।

सन् ५५ ई० पूर्व मे क्रेसस को रोमन सेनाओं का जनरल बनाकर पूर्व देशो को इधर जीतने के लिये भेजा गया। इतिहासकारो ने जहाँ उसे अत्यंत बहादुर बतलाया है वहाँ उसकी लोभवृत्ति की भी भारी निन्दा की है। उसे लूट का माल लेने मे अपार प्रसन्नता होती थी। वह न केवल वाह्लीक अपितु भारत को भी जीतने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। उसने शीघ्र ही फरात नदी को पार किया और पार्थ के क्षत्रप को एक लडाई में हरा दिया। परन्तु उसने आगे न बढकर सीरिया लौटकर आमोद-प्रमोद मे अपना बहुमूल्य समय गँवा दिया।

---

1 The whole army of Pompey upon hearing the news fell to feasting as if in the person of mithradetes alone there had died many thousands of their enemies—Plutarch's on Pompey.

सन् ५३ ई० पू० में उसने फिर अपनी विजय यात्रा प्रारंभ की। आर्यमन राज्य के आर्तपुष्ट ने (Artavasdes) उससे संधि कर ली और उसे सैनिक सहायता देने की प्रतिज्ञा की। वह आर्मीनिया के क्षेत्र से आगे न बढ़कर मैसोपोटा-निया के क्षेत्र से आगे बढा। इधर उरूद ने शीघ्र ही भाँप लिया कि रोमन जनरल का आक्रमण उस पर ही होनेवाला है। अतः उसने निडरता से सामना करने का संकल्प किया। वह बिलकुल ही भयभीत न हुआ। उसने अपने राजदूत के हाथ रोमन जनरल को संदेश भेजा कि "यदि यह युद्ध रोमन जनता की ओर से हो रहा है तो वह निश्चय ही उसका अंत तक मुकाबला करेगा। किन्तु यदि क्रेसस के व्यक्तिगत लाभ और महत्वाकाक्षा के लिये वह युद्ध लड रहा है तो वह उदारता दिखायेगा और जो युद्धबंदी उसकी जेलों में पड जावेंगे उसे वह लौटा देगा।" क्रेसस ने उत्तर भेजा कि वह इसका उत्तर सेलूशिया की युद्धभूमि पर ही देगा। इस पर पार्थ राजा ने हँसकर कहला भेजा कि सेलूशिया की भूमि तक आ जाना हथेली पर बाल जमने सरीखी असंभव बात है।

अब क्रेसस ने फरात नदी को एक बडी सेना के साथ पार किया और वह सेलूशिया के सामने नदी के दूसरे छोर पर पहुँच गया। यहाँ असरोइन नाम के शेख ने जोकि अरब जाति का था रोमन जनरल को सहायता देने का वचन दिया। यह शेख वास्तव मे उरुद राजा से मिला हुआ था उसने यह गप्प उडा दी कि डर से उरुद की सेनाएँ पूर्व दिशा की ओर भाग गई है अत: रोमन जनरल मूर्खता से उनका पीछा करता हुआ आगे बढ गया। उरुद, जोकि इस पूरी योजना मे अत्यंत चतुरता से कार्य कर रहा था, ने पीछे से जनरल क्रेसस की सेना पर भीषण आक्र-मण कर दिया। उसने आर्यमन देश के राजा आर्तपुष्ट से शीघ्र ही संधि कर ली और अपने लडके का विवाह उसकी पुत्री से रचाकर इस सैनिक संधि पर पुष्टि की मोहर लगा दी। उसने अपने सेनापति या सुरेन (Surena) को क्रेसस के मुकाबला करने को भेज दिया। सुरेन के साथ अत्यन्त उच्चकोटि के धनुषधारी अश्वारोही थे। रोमन सेना प्रथम तो इनके मुकाबले मे क्षीण थी; दूसरे रोमन सेना को बहुत पास से नेजा फेंक कर तलवार से मार करने का अभ्यास था। अत· इस सेना का एशियाई अश्वारोहियो पर जो दूर से ही धनुष बाणों से सैनिकों को घायल कर रहे थे कुछ वश न चला। सुरेन जोकि बहुत चतुर सेनापति और बहादुर व्यक्ति था अपने ऐशो-आराम में भी प्रसिद्ध था। उसका स्वय का सामान एक सहस्र ऊँटो पर लदा हुआ था। उसके रनवास की दासियों का सामान ही दो सौ छकडो मे लदा हुआ था। इस प्रकार दोनों सेनाओं में सन् ५३ ई० पू० में युद्ध प्रारम्भ हुआ।

क्रेसस फरात नदी से तीन या चार पड़ाव दूर चलकर बाइबिल में वर्णित हूरण क्षेत्र से तीस मील दूर वेलिक नदी के किनारे जा पहुँचा। उसे स्वप्न में भी

पार्थ सेनाओं के आने का भरोसा नहीं था किन्तु उसके विस्मय का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उसके सामने पार्थ सेना एकदम आ धमकी है। रोमन जनरल को अपने सैनिकों पर पूरा भरोसा था। अतः उसने थके-मादे और प्यासे सैनिको को एकदम पार्थ सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सुरेन ने अपनी सेना की सख्या को छिपा रखा था। इसके अतिरिक्त उनके हथियार भी खालों और चमड़ो मे छिपे हुए थे जिन्हे रोमन सैनिक देख नही सके। अत. जब एकदम पार्थ 'सैनिकों' ने हथियार निकाल कर हमला करना शुरू कर दिया, तो वे शीघ्र ही चारो ओर बिखर गये। पार्थ सैनिको ने रोमन सेनाओ को चारो तरफ से घेर लिया। भयंकर मारकाट प्रारंभ हो गई। इस भीषण सकट मे रोमन सेनापति क्रेसस ने अपने महान् वीर लड़के पब्लीअस को, जो कि शीघ्र ही गाल (जर्मन-फ्रांस) से उसकी सहायता को आ चुका था, प्रत्याक्रमण के लिये आदेश दिया। वह बहुत ही बहादुरी से लडा किन्तु युद्ध मे वह वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के समाचार ने क्रेसस का साहस तोड दिया। जब रोमन जनरल ने अपने पुत्र के मस्तक को बरछे पर छिदा हुआ देखा तो उसने युद्ध विराम की आशा भी छोड़ दी। सम्पूर्ण रोमन सेनाओ को काट डाला गया। कहा जाता है कि रोम देश की यह निकृष्टतम पराजय थी। उसके बीस सहस्र योद्धा रणक्षेत्र में मारे गये।

सेनापति आक्टेवियस और कैसियस, जो आगे चलकर महान सेनापति बने, इस युद्ध में अपने बचे-खुचे साथियों को लेकर रण-क्षेत्र मे रातो-रात भागकर पश्चिम दिशा की ओर भाग गए। प्रात· पार्थ की सेनाओ ने बचे-बचाये घायलो को समूल नष्ट कर दिया।

रोमन सेना की इस पराजय ने उनकी इतनी हिम्मत तोड दी कि भागने मे भी वे दिन का उपयोग न करके रात को ही भागते थे, दिन भर वे जगलो मे छिपे रहते थे। स्वयं क्रेसस को एक जंगल मे पार्थ सेनाओ ने घेर लिया किन्तु बडी मुश्किल से आक्टेवियस ने उसे बचा पाया।

अब सुरेन ने अपनी विजय को पूर्ण करने के लिये एक चतुरता का दाव और खेला। उसने रोमन सेनाओ को सुरक्षित लौटने का वचन दिया। क्रेसस को इस वचन पर रत्ती-भर भी विश्वास नही था परन्तु वह कर ही क्या सकता था। अतः जब सुरेन ने बहुत अधिक आग्रह किया तो उसे उसका कहना मानना ही पड़ा। सुरेन ने कहा कि अब दोनो पक्षों मे सधि हो ही चुकी है अतएव संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिये उसे नदी तट तक चलना चाहिये। क्योकि पपी जनरल ने अलिखित सधि-पत्र का उल्लंघन कर दिया था। क्रेसस ने अपने एक घोडे को सवारी के लिये बुलवाया। इस पर पार्थ लोगों ने कहा कि उनका सुन-हरी जिरह-बख्तर से लदा हुआ घोड़ा तैयार खड़ा है अतः उसी पर जनरल बैठ

कर चलें। क्रेसस अनिच्छापूर्वक उसपर बैठकर आगे चला। उसके साथियों ने अपने जनरल को अकेला न छोडा और वे उसके साथ हो गये। अतः इस पर विवाद छिड़ गया जिसमे क्रेसस मारा गया।

अपने जनरल के मारे जाने से रोमन सेना मे भगदड मच गई। दस सहस्र सैनिक फरात नदी की ओर भाग गये। इससे अधिक पकड़े गये, जो मारगियाना, जिसे अब मर्व कहा जाता है, में बस गये और वहाँ की देशी औरतों से विवाह करके वे देशी बन गये।

प्लूटार्क ने इस लडाई तथा उसके अन्त का बडा करुणाजनक चित्र खींचा है। वह लिखता है कि "उरुद सम्राट के लडके पाचोर से आर्यमन राजा आर्तपुष्ट की बहन के विवाह के मंगल-बाजे बज रहे थे। समस्त मेहमान और आगन्तुक व्यक्ति हर्ष मे नाच-कूदकर उत्सव का आनन्द ले रहे थे, उसी समय रोमन जनरल का सिर उनके बीच में खिलौने की तरह फेंक दिया गया।" प्लूटार्क ने आगे लिखा—"पार्थ लोगो ने हर्ष से उसे उठा लिया···एक यूनानी मसखरे ने जो कि वहाँ पर अपना करतब दिखला रहा था उसे व्यग मे उठा लिया और तत्काल तुकबन्दी रच डाली कि, 'आज दिन-भर के आखेट के बाद उन्हें एक ही शिकार मिला है परन्तु वह जगल का सबसे अच्छा शिकार है।"

सन् ५१-५० ई० पूर्व मे पार्थ ने सीरिया देश पर आक्रमण किया औरपार्थ राजा के पुत्र पाचोर ने पूरे असुर प्रदेश को रौंदकर अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार फरात नदी के पश्चिम के तरफ के देश फिर से एक बार पूर्वी नरेशो के अधिकार क्षेत्र मे आ गये।

१७

रोम का गृह-युद्ध और एशिया

सन् ४९-४८ ई० पू० रोमन जनरल पंपी और जूलियस सीजर मे गृह-युद्ध छिड़ गया, जिसमे अ्रंत मे पपी की हार हुई। यह युद्ध फरसेलिया के क्षेत्र में सन् ४८ ई० पू० में हुआ था। इस समय पपी ने पार्थ राजा के दरबार मे जाकर सहायता लेने का यत्न किया किन्तु वह सफल नही हो सका और अन्त में मिस्र के नवयुवक शासक के मत्रियों द्वारा मार डाला गया।

सन् ४० ई० पू० मे सीजर ने सीरिया (असुर प्रदेश) और एशिया माइनर की ओर ध्यान दिया। मित्रदत्त, जो कि बासफोरस का राजा था, के पुत्र Pharnces (वर्णस्) ने आस-पास के प्रदेशो पर अपना आधिपत्य जमाना चाहा था, जिससे सीजर के साथ उसका कलह प्रारम्भ हो गया। किन्तु २ अगस्त, सन् ४० ई० पू० में जेला स्थान पर सीजर ने उसे हरा दिया और जब वह वापस रोम लौटा तो उसके प्रसिद्ध शब्द 'वेनी, विदि, विसी' रोमन लोगो की जबान पर आ गये। ये शब्द यद्यपि रोमन भाषा के हैं तथापि इन पर संस्कृत की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है। आगमन से वेनि, विदि से दृष्टि तथा विजय से 'विसि' (मैं आया, मैंने देखा और जीत लिया) अर्थसूचक शब्द स्पष्ट है।

जब सीजर पश्चिम की ओर की लडाइयो मे उलझ गया तो प्रसिद्ध सेना-पति मार्क ऐंटोनी पूर्व की ओर गया। पूर्व की ओर जाने का एक कारण यह भी था कि मृत सीजर के लडके आक्टेवियन ने जो कि आगे चलकर प्रसिद्ध आगस्टस सम्राट के नाम से प्रसिद्ध हुआ; ऐंटोनी को हरा दिया। बाद मे ऐंटोनी को दो महान विजेता सेनापतिगण ब्रूटस तथा कैंसियस से सन् ४२ ई० पू० मे फिलप्पी के मैदान मे उलझना पड़ा जिसमे उसकी पूर्ण विजय हुई। कहा जाता है कि इस युद्ध मे एशियाई सैनिकों ने भी जो पार्थ देश की ओर से आये थे भाग लिया था। इस प्रकार यह युद्ध भी किसी न किसी भाँति पूर्व और पश्चिम का युद्ध बन गया था।

पार्थ देश मे इस समय भी उरुद राज्य कर रहा था। यद्यपि उसके पुत्र ने उसके विरुद्ध बगावत का झडा खड़ा करके रोमन लोगों की सहायता ली थी,

किन्तु कुछ समय के पश्चात पिता-पुत्र में आपस मे समझौता हो गया और उरुद ने अपने पुत्र पाचोर को क्षमा कर दिया तथा इस समय इस राज्य ने एक रोमन जनरल को भी नौकर रख लिया। जिसके साथ उरुद मे पाचोर को पश्चिमी इलाकों को जो उसके हाथ से निकल गये थे कब्जा करने के लिये भेजा। पाचोर ने सन् ४० ई० पू० फरात नदी को पार करके सीरिया पर आक्रमण किया। इस समय सीरिया (असुर प्रदेश) मे ऐंटोनी का नायब डेसीडियस सक्स सेना संचालन कर रहा था। पाचोर ने शीघ्र ही उसे हराकर अपामिया और ऐंटिओक स्थानों पर कब्जा कर लिया। इस विजय से उत्साहित होकर पाचोर और उसका सेनापति दोनो ही क्रमश: दो भागो मे बँट कर दक्षिण तथा उत्तर में विजय-यात्रा के लिये निकल पडे। पाचोर ने सीरिया पर आधिपत्य करके फिलिस्तीन में प्रवेश किया। उसके सौभाग्य से यहाँ काका-भतीजो मे राज्य के लिये युद्ध हो रहा था। काका ने जिसका नाम ऐंटीगोनस था पाचोर को एक सहस्र टेलेन्ट जो कि लगभग २½ लाख पौड के बराबर होते हैं तथा ५०० पाँच सौ यहूदी स्त्रियो को भेंट करने की पेशकश करके उससे सहायता माँगी। इस सहायता से वह तत्काल सिंहासन पर आरूढ कर दिया गया। इधर उसके जनरल लबीनस ने दूसरी लडाई मे सक्स पर विजय प्राप्त करके उसे मार डाला। पाचोर ने एशिया माइनर के पूरे दक्षिणी भाग को रौंदकर सम्राट की पदवी धारण कर ली और अपने नाम के सिक्के ढलवा दिये।

इसी बीच मे रोम मे सन् ४० ई० पू० में सीजर के उत्तराधिकारियो में एक समझौता होकर साम्राज्य को तीसरी बार फिर दो भागों मे बाँट दिया गया। लेपीदस को अफ्रीका मिला, ऐंटोनी को पूर्वी साम्राज्य मिला जिसकी सीमा स्कोदरा (वर्तमान स्कूतरी) निश्चित कर दी गई। इसके पश्चात ऐंटोनी और आक्टेवियन दोनो ने विजेता के रूप मे रोम मे प्रवेश किया जहाँ जनता ने अपूर्व हर्ष और उल्लास मनाकर उन दोनों का अभिनन्दन किया। थोड़े समय पश्चात आक्टेवियन की अत्यन्त सुन्दर और गुण सम्पन्न बहन आक्टेविया से ऐंटोनी का विवाह करके मित्रता पक्की कर दी गई। कुछ दिन के बाद अर्थात् एक वर्ष के भीतर ही ऐंटोनी ने अपने जनरल को भेजकर सीरिया पर फिर कब्जा कर लिया।

सन् ३८ मे पाचोर ने फरात नदी को फिर पार करके अपने खोए हुए प्रदेश को वापस लेने का यत्न किया। परन्तु धोखे से एक आक्रमण मे यह महान् पाचोर मारा गया जिससे पार्थ सेना के पैर उखड़ गये और वह वापस लौट गई। इस लडाई का महत्त्व इसलिये है कि इस नामहीन लड़ाई के पश्चात पार्थ देश ने आक्रमणकारी रुख छोड़ दिया और एशिया में अपने साम्राज्य की सुरक्षा में ही तल्लीन रहता रहा।

सन् ३७ में पार्थ सम्राट उरुद ने, जिसने रोम की महान् शक्ति से जीवन-भर युद्ध करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त की थीं, अपने महान पुत्र की मृत्यु के शोक में गद्दी का परित्याग कर दिया और अपने बड़े लड़के बृहत चतुर्थ को सिंहासनारूढ कर दिया। यह बात हमेशा चिरस्मरणीय रहेगी कि उरुद ने अपने जीवनकाल में रोम की बढ़ती हुई शक्ति को कभी भी एशिया की भूमि पर निरापद पैर जमाने का अवसर प्रदान नहीं होने दिया। उसने आर्य परम्परा के अनुसार वृद्धावस्था के कारण स्वयं सिंहासन छोड़ दिया।

सन् ३५ ई० पू० में बृहत चतुर्थ ने सिंहासन पर बैठते ही सबसे पहले अपने सहोदरों और भाइयों को मरवा डाला। जब उरुद उसके इस कृत्य पर शोकाकुल हो रहा था तो उसने उसको भी मरवा डाला। इस प्रकार इस महान् प्रतापी सम्राट का अन्त हुआ। इतिहास में इसी प्रकार की एक दूसरी घटना मुगलकालीन औरंगजेब बादशाह की है जिसने अपने भाइयो को मरवा कर अन्त में बाप को भी कैद मे रखकर उसे तड़प-तड़पकर मरने को विवश कर दिया।

सर पर्सी ने लिखा है, "इस प्रकार एक प्रसिद्ध राज्य का अन्त हुआ जिसके राज्य की प्रसिद्धि ने रोम के अंतर्जगत् को भी आतंकित कर रखा था। यद्यपि क्रैसस के साथ महान् युद्ध मे उसको विजयश्री अपने सेनापति के कारण मिली तो भी यह श्रेय उसको सदा ही मिलेगा कि उसने पार्थ राज्य का स्तर इतना ऊँचा उठा दिया कि वह रोम के समकक्ष गिना जाने लगा। इसने अपनी राजधानी क्तेसी भूमि (Ctesiphon) को बनाया।"

बृहत चौथे का राज्य आतंक और भय से प्रारंभ हुआ। उसके अत्याचार से दरबार के प्रसिद्ध सेनापति आदि इधर-उधर भाग गये; इनमे एक मनीषी नाम का सेनापति जो पाचोर के अधीन रहकर अपना नाम व यश कमा चुका था भागकर ऐंटोनी के पास पहुँच गया। ऐंटोनी इस स्वर्ण अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। अतः उसने पार्थ को शीघ्र ही सदेश के रूप मे चुनौती भेजी कि वह शीघ्र ही रोम के झंडो को, जो पार्थ ने छीन रखे थे, सम्मान पूर्वक वापस कर दे तथा जीवित कैदियो को तुरन्त छोड़ दे। यह तो ऐंटोनी का एक बहाना मात्र था क्योकि उसे स्वय यश की इच्छा और अपने रोमन प्रतिस्पर्द्धी वेन्टीडियस जिसने पाचोर को हराया था, से भी बढ़-चढ़कर नाम कमाने की धुन थी। अतः इस इच्छा से प्रेरित होकर उसने ६०,००० सैनिको को इकट्ठा किया व आस-पास के राज्यों से ३० सहस्र अश्वारोहियो को जुटा लिया, आर्यमन के राजा आर्तपुष्ट ने भी ७,००० पैदल सेना देने का वचन दिया।

इस प्रकार १ लाख से भी अधिक फौज के साथ वह मिस्र की अपनी नायिका क्लियोपत्र से बिदाई लेकर फरात नदी की ओर बढ़ा। आर्यमन के राजा ने उसे पहले मेद को लेने का सुझाव दिया क्योकि मेद राजा बृहत का मित्र था। अतः

मेद की राजधानी 'प्रासफ' (जो अब सुलेमान के तख्त के नाम से प्रसिद्ध है) का घेरा डालने का निश्चय किया गया। किन्तु वह अपने सैनिक सामान के अभाव में उसे ले न सका।

इसी बीच में पार्थ की विराट सेना ने एकदम रोमन सेना के एक भाग पर जो सेनापति 'स्तेतियन' के अधीन थी भयंकर हमला करके सेनापति तथा दस सहस्र सैनिकों का सफाया कर दिया। इस पराजय ने ऐंटोनी को भयकर मुसीबत मे डाल दिया। उसका संकट तब और भी बढ़ गया जबकि उसके मित्र आर्यमन राजा ने बीच युद्ध मे उसका साथ छोड़ दिया। अन्त मे अपनी इज्जत बचाने को ऐंटोनी ने पार्थ राजा से केवल यह माँग रख कर ही संतुष्टि कर ली कि वह युद्ध-झडे लौटा दे। किन्तु पराजित नेता की भाँति उसकी यह माँग भी अनादरपूर्वक रद्द कर दी गई।

रोमन सेना अब युरुमिया झील, जिसका पानी पीने के योग्य नही था, के किनारे से लौटने को बाध्य हो गई। उस पर चारों ओर से पार्थ सेना के बराबर हमले हो रहे थे। रोमन सेना क्रेसस की भाँति सकट मे नही पड़ना चाहती थी किन्तु अन्त मे वही हुआ। लगातार १९ दिन तक उसके भागते रहने पर भी पार्थ सेना के उस पर भयकर हमले होते रहे जिससे रोमन सेना को महान कष्ट हुआ। भयंकर शीत, भोजन का अभाव और पानी की कमी ने भी इस सेना का अन्त पूरे तौर से सन्निकट ला दिया। अंत मे मरते-पडते वे अफगान युद्ध मे अंग्रेजी सेनाओ की पराजय की भाँति (जो १८०० वर्ष बाद अफगानिस्तान में हुई थी) वे अरक्स नदी को पार कर पाये। यहाँ उसने पार्थ सैनिको से मुक्ति के कारण संतोष की साँस ली। सम्राट बृहत को यह गौरव मिला कि उसने सपूर्ण रोमन सेना को अपने साम्राज्य से बाहर झाड़ू देकर निकाल फेंका। दूसरे वर्ष भागती हुई रोमन सेना के आठ सहस्र सिपाहियो का भयंकर शीत मे ठिठुर कर मर जाना रोम साम्राज्य की प्रतिष्ठा मे एक और धक्के के रूप मे लगा जिससे वह अस्त-व्यस्त हो उठा।

इन संकटों को पार कर ऐंटोनी आराम करने के लिये मिस्र की अपनी पत्नी क्लियोपत्र के पास पहुँच गया। वह वहाँ कुछ दिन ही रह पाया था कि मेद राजा ने बृहत से डरकर ऐंटोनी की सहायता चाही ताकि वह बगावत का झंडा उठा सके। ऐंटोनी तो यह अवसर खोज ही रहा था कि उसे किसी भाँति अपने अपयश को दूर करने का मौका मिले। अत. उसने तत्काल स्वीकार कर लिया। उसने मेद को सहायता देकर आर्यमन पर धावा बोलकर धोखे से आर्तपुष्ट को पकड़ लिया और फिर आर्यमन देश को रौंदते हुए शीघ्र ही वह मिस्र लौट गया क्योकि वह स्वय अधिक देर तक रुकने का संकट जानता था। सन् ३३ में एक बार फिर वह मेद देश की सहायता को आया और आर्यमन राज्य का

काफी भाग मेद राज्य को दिलाकर वापस लौट गया और उसकी रक्षार्थ एक रोमन सेना वहाँ छोड़ गया।

पार्थ के लिये इस प्रकार एक भगोड़े जनरल का आकर, पार्थ साम्राज्य के मित्र देश की आंतरिक कलह में भाग लेना, चुनौती के रूप में लगा। अतः उसने भयंकर वेग के साथ बागी मेद पर आक्रमण किया और अंत में वहाँ के शासक को कैद में डाल लिया। फिर उसने आर्तपुष्ट के बड़े लड़के के साथ आर्यमन देश पर हमला करके रोमन सेनाओं को वहाँ से भगा दिया और उसको पुनः जीत कर आर्यमन देश को पुनः रोमन दासता से मुक्ति दिलवाई। मार्क ऐंटोनी को पूरे प्रदेश से बाहर करके उसकी पूरी सेनाओं का सफाया कर दिया गया। ऐंटोनी को इस हार से ऐसा धक्का लगा कि उसने पार्थ राज्य की ओर फिर कभी आँख उठाने का साहस नहीं किया। रोमन सेनाओं की इन बार-बार की पराजयों ने पार्थ राज्य के गौरव तथा प्रतिष्ठा मे अभूतपूर्व वृद्धि कर दी। पार्थ राज्य इस समय अपने इतिहास के सर्वश्रेष्ठ स्वर्णिम पृष्ठों मे से निकल रहा था।

किन्तु बृहत के भयकर स्वभाव और अत्याचारी शासन से उसके सरदार ऊब गये थे। जब तक बाहर का खतरा रहा तब तक तो वे चुप रहे परन्तु ज्योंही बाह्य परिस्थिति सुधरी तो बृहत के अत्याचार भी उग्र हो उठे। अतः उसके एक सरदार त्रिदत्त ने बगावत का झंडा खडा कर दिया। यह बगावत इतनी उग्र थी कि बृहत को डर के मारे मध्य एशिया मे भाग जाना पड़ा और त्रिदत्त सम्राट घोषित कर दिया गया। वह केवल तीन वर्ष ही राज्य कर पाया था कि बृहत बर्बर जातियों की सहायता लेकर फिर मैदान मे आ धमका। अबकी बार त्रिदत्त को भागने पर विवश होना पडा। त्रिदत्त भागते समय सम्राट बृहत के छोटे लडके को लेकर रोमन सेनापति आक्टेवियन के कैप मे पहुँच गया। उस समय यह जनरल सीरिया के प्रदेश में कही डेरा डाले हुए पडा था। रोमन सेनापति ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया किंतु पार्थ के भय के मारे न तो उनकी कोई सहायता ही की और न फरात नदी को पार करने का उसने पुनः कोई साहस ही किया।

सात वर्षों के बाद सन् २३ मे सम्राट बृहत ने बागी सरदार और अपने लडके की वापसी की माँग रोमन सेनापति से करने की इच्छा से चर्चा शुरू की। आक्टेवियन जो अब सम्राट अगस्त बन चुका था ने पहली शर्त ठुकरा दी परन्तु पार्थ सम्राट के छोटे लडके को बिना कुछ लिये दिये ही लौटा दिया। इसकी ऐवज मे उसने केवल रोमन झंडो की वापसी की माँग की। बृहत अपने लड़के को वापस पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और तीन वर्ष बाद अगस्त की पुनः माँग पर झडे लौटा दिये। झंडो की पुनः वापसी पर रोम मे भारी उत्सव मनाया गया और इसके बाद दोनों राज्य फिर एक-दूसरे से काफी दिनों तक मेल से रहे। क्योंकि एक-दूसरे की हानि का लेखा-जोखा दोनो को काफी मिल चुका था।

१८

पार्थ राज्य की संस्कृति, सभ्यता और धर्म

प्रसिद्ध इतिहासकार गार्डनर ने लिखा है कि पार्थ लोगो ने बिना कला, धर्म या नीति के ही पाँच सौ वर्षों तक लगातार शिविर जीवन व्यतीत करते हुए रोम के आक्रमणो से पूर्वीय देशों को बचाए रखा।[1] उसकी यह युक्ति सर्वथा सत्य है। पार्थ जाति का उदय मध्य एशिया अथवा ईरान मे हुआ। इन लोगो ने जो कि एक प्रकार से बर्बर थे, कभी भी जीते हुए प्रदेशों को एक राष्ट्र में ढालने का प्रयत्न नही किया। उनका राज्य उत्तर में कास्पियन तट पर ११ प्रान्तों और दक्षिणी भाग मे ७ प्रान्तो तक फैला हुआ था। जब तक कि कोई प्रांत अथवा राज्य उन्हें कर देता रहे तथा उनके विरुद्ध सिर नही उठाये, तब तक वे उसको अपनी इच्छानुसार चलने की स्वतन्त्रता देते थे। जीते हुए प्रातो को वे क्षत्रप या विताक्ष के द्वारा नियत्रित करते थे। जिन प्रान्तों मे राजा होते थे प्राय: उन्ही को वे क्षत्रप नियुक्त कर देते थे। मेद अत्रपटून, ऐलम, परशु, आद्यवन और बेबोलोन मे राजाओ को ही क्षत्रप बना दिया गया था। सिलूसिया आदि अनेक यूनानी नगर, जिन्हे पहले से ही नागरीय स्वतन्त्रता प्राप्त थी, वे तथा यहूदी नगर केवल कर देने को बाध्य थे। ये 'स्वतंत्र नगर' घोषित कर दिये गये थे। यद्यपि पश्चिम के आक्रमण के समय इन यूनानी नगरों से खतरा भी था। परन्तु तो भी उनके यूनानी आचरण ने पार्थ राज्य की इकाई को भी बनाए रखा।

पार्थ शासन मे राजा अत्यत पवित्र माना जाता था। किसी व्यक्ति को भी हर्ष वंशीय राजा को आहत करने का अधिकार न था। इसका प्रत्यक्ष लाभ यह भी था कि कोई भी गद्दी का दावेदार नही बन सकता था जब तक कि वह हर्ष वंशी या उस रक्त का न हो। राजा के अधिकार को सीमित रखने के लिये दो परिषदें थीं। पहली परिषद् में राजघराने के वयस्क व्यक्ति होते थे। दूसरी परिषद् मे धार्मिक या आध्यात्मिक नेता होते थे। सक्षमान राज्य की भाँति पार्थ में भी

1. Gardner on Parthians

अधिकार संपन्न सात कुटुम्ब थे। किन्तु सम्राट सदैव ही हर्ष-वंशी होता था जिसके चयन का अनुमोदन दोनों परिषदों से कराना आवश्यक था। चयन होने के पश्चात् उसका राजतिलक सुरेन[1] अथवा सेनापति द्वारा जोकि परंपरागत होता था, किया जाता था। आध्यात्मिक गुरुओं को 'माखी' अथवा 'सूफी' कहा जाता था (माखी शब्द संस्कृति के मख शब्द से निकला है जिसका अर्थ यज्ञ होता है)। ये आध्यात्मिक गुरुजन राज्य में सबसे अधिक पढ़े-लिखे होने के कारण बहुत ही प्रतिष्ठित गिने जाते थे। इन लोगों को परपरागत अच्छी जागीरें तथा भूमि मिली होती थी। साधारण जनता की राजा तक पहुँच प्रायः संभव नहीं थी। सिंहासन पर मुकुट बाँधे हुए उनकी प्रतिमाएँ प्रायः बड़े नगरों में स्थापित कर दी जाती थी। बाहर के व्यक्ति इन मूर्तियों का स्वागत करने के लिये बाध्य किये जाते थे।

राज-प्रहरियों के अतिरिक्त पार्थ राज्य में कोई नियमित सेना नही थी। जब कभी कोई अवसर आता था तो सम्राट अपने अधीनस्थ राजाओं और क्षत्रपों को सेना लाने का आदेश देते थे और प्राय: हर क्षत्रप पूरे साज सहित सेना लाता था। पदाति सेना का विशेष महत्त्व नहीं था। आयुधों सहित घुडसवार सेना को विशेष सम्मान से देखा जाता था। लगातार लडाई जारी रखने के अभ्यास में पार्थियों को दक्षता प्राप्त नही थी। इसी प्रकार दुर्गों पर घेरा डालने वाली सेना रखने का भी उनमे अभाव था। घुडसवारी के शौकीन इन बर्बर लोगो मे जल सेना के प्रति भी विशेष आकर्षण नही था। फलस्वरूप वे सागर-तटीय होते हुए भी अच्छे जल सैनिक नही बन सके।

सक्षमान राजाओं की भाँति, जो अपनी राजधानी सूसा से परशुपोलि और वहाँ से एकपट्टन को बदलते रहते थे; उसी प्रकार पार्थ राजा भी मेसोपोटामिया मे शीत तथा मेद और पार्थ मे ग्रीष्म व्यतीत करने के आदी थे। उनकी शीत राजधानी (क्षेसीभूमि) थी जो सेलूशिया के सामने तिगरिस नदी के दूसरे किनारे पर वर्तमान बगदाद से कुछ मील दूर ही बसी हुई थी। एकपट्टन मेद की राजधानी थी। उनकी दूसरी राजधानी शकटमपुरी (Hecatom pylus) थी, रेग (Rhages) भी कभी-कभी उनके सैरगाह की स्थली थी। बेबीलोन मे इनका राजमहल बहुत ही आलीशान बना हुआ था। इसके विषय में फिलास्ट्रेटस नाम के लेखक ने लिखा है, "महल का छत पीतल से ढँका हुआ है और उसमे से प्रकाश आता रहता है। स्त्री-पुरुषो के लिये अलग-अलग कक्ष बने हुए हैं। बाह्य द्वार और स्वागत कक्ष सोने और चाँदी की जरी से जगमगाते रहते हैं। कहीं-कहीं पर दीवारो मे चित्रों की भाँति सोने के तख्ते जड़े हुए हैं। जरी की

१. Surena भारत में भी इसका तात्पर्य सेनापति से है।

तसवीरो पर यूनानी चित्रो की कलाकृतियाँ हैं। कही यूनान पर आधिपत्य और कही थरमोपाली के युद्ध के दृश्यों का अंकन है। पुरुषों के एक कक्ष की छत अत्यंत गहरे नीले रंग की है जोकि आकाश के रंग में मिलकर आकाश की द्योतक है। यह नील मणियो से पूरी तरह ढका हुआ है।"[1]

ऊपर हमने क्रेसस को हराते समय सुरेन (सेनापति) के वस्त्रों का जिक्र कर ही दिया है। मेद आदि के लोगो की भाँति ही इनके वस्त्रों का पहनावा था। सुरेन के विषय मे कहा गया है कि उसके बाल बीच में से कढ़े हुए थे और उसका मुख चदन से मडित था।[2] उसके साथ स्वयं की रक्षार्थ दस सहस्र अश्वारोही रहते थे। उपरोक्त वर्णन तो केवल सेनापति का है किन्तु राजा का वैभव इससे ही अनुमानित किया जा सकता है।

पूर्व की प्रथानुसार बहुपत्नी वाले देशो मे स्त्री की श्रेणी द्वितीय होती है। सक्षमान राजाओं की भाँति इन सम्राटो के भी कई पत्नियाँ होती थीं जिनमें एक पटरानी होती थी। इनमे से बहुत-सी यूनानी स्त्रियाँ दासियाँ होती थी। स्त्रियों के रहने के लिये अलग कक्ष रहते थे। किन्तु बृहन्नलाओ का यहाँ पूर्ण निषेध था। पूरे पार्थ-परपरा में कोई स्त्री का राजनीति मे भाग लेना नही पाया जाता है केवल 'मूषा' नाम की एक इटली लडकी का अवश्य उल्लेख मिलता है।

पार्थ लोग शिकार के बहुत शौकीन थे। शिकार करके मृगया के 'भोजन-आनंद' मे उन्हे बहुत संतोष होता था। वे खजूर से बनी हुई शराब पीने के भी शौकीन थे। समस्त बर्बर जातियो की भाँति उनकी दावतो और उत्सवो में नृत्य होता था जिसमे बाँसुरी, ढोल और अलगोजो की तानें सुनाती रहती थी। पहले यह हर प्रकार का मास खाते थे किंतु बाद मे जब उनकी उन्नति का स्तर बढता गया वे शाक-सब्जी और पतली, हलकी बेली हुई रोटी खाने के आदी हो गये। यह रोटी उस समय मे रोम तक मे प्रसिद्ध हो गई थी।[3]

परशु जाति की भाँति पार्थ लोग भी मेदो सरीखे वस्त्र पहनते थे। वे अपने पाँवो मे ढीला गरारा जिसे अभी तक पठान पहनते हैं, पहनते थे। सिर पर वे लम्बा साफा बाँधते थे या फिर गोलमुकुट पहनते थे। इनमे दाढी रखने और सिर के बाल घुँघराले रखने की प्रथा थी किन्तु यह फैशन बदलता रहता था। लडाइयो मे वह चमकीले लोहे के कवच पहनते थे। उनके घोडो की जीनें, लगामे और रकाबें सुनहरी चमकदार होती थी। राष्ट्रीय अस्त्र उनका धनुष बाण था। तलवार भी रखते थे परन्तु कटार या छुरे को प्रत्येक नागरिक धारण किये रहता

---

१. Philostratus

२. मस्तक पर चंदन लगाना आर्यों की खास परम्परा है। —लेखक

३. Sir Percy, पृष्ठ ३६८

था। बड़े हथियारों में नेजा या बरछा था। प्रथम हर्ष के वस्त्रों का वर्णन गार्डनर इतिहासकार ने मुद्राओं पर से निम्न भाँति किया है, "वह असुरों की भाँति ऊँचा कोणदार शिरस्त्राण पहनता है और कानों तथा गले की रक्षार्थ उसके भाग निकले हुए हैं। कानों मे मुद्राओं की सजावट है (कानो मे बड़े-बड़े कुंडलों के पहनने का रिवाज आज तक आर्यों मे चला आता है) और गले मे साधारण कोटि की Torques है। वह रणक्षेत्र के वस्त्र परिधानो में लदा हुआ है। यह कवच जंजीरो से बना हुआ है जिससे उसके दोनो हाथ कमर तक ढके हुए हैं और पाँव घुटनो तक ढके हुए हैं। इसके ऊपर एक छोटा सैनिक लबादा या सागुम (Sagum) पड़ा हुआ है। उसके जूते तनी या डोरों से घुटनो तक मजबूत कसे हुए हैं। बाद के राजाओं ने यह बड़े-बड़े परिधान त्याग दिये थे और उनके स्थानों पर बाहर और भीतर हलके परिधान धारण करने लगे थे।"

स्वभाव के कठोर होते हुए भी इन लोगों का चरित्र अत्यंत ऊँचा था। पश्चिमी इतिहासकारो ने लिखा है कि इनको सभ्य बनाने में यूनानी सभ्यता का भारी प्रभाव पड़ा है। किन्तु यह सत्य नहीं है। वे अपनी पुरानी आर्य-परंपराओं के अनुसार ही चरित्रवान थे। वह शत्रुओं के साथ दया का व्यवहार करते थे और अपने किये हुए वचनो का पूर्ण पालन करते थे। सन्धि-पत्रों का पालन करना अनिवार्य समझा जाता था।

पार्थ लोगो का धर्म उनकी प्राचीन परंपराओं के अनुसार था। सर पर्सी ने लिखा है कि पहले-पहल वे बाह्य दृष्टि से बिना किसी धर्म के थे। क्योकि वे उस समय अपने पुरखा हर्ष की पूजा करते थे। किन्तु हर्ष (साम्राज्य स्थापक) का पूजन ही केवल धर्म नही था। धर्म का दूसरा स्रोत जरस्थ्रु धर्म के उद्‌भव की भाँति सत्य अथवा असुरमज्द और द्रु अथवा झूठ के बीच द्वंद्व युद्धात्मक था। उगते हुए सूर्य को पुराने 'मित्र' नाम से पुकारा जाकर चन्द्रमा के साथ उसकी पूजा होती थी।[१] इसके अतिरिक्त असुरमज्द की भाँति दूसरे देवी-देवताओ की भी पूजा होती थी। सर्व साधारण जनता अपने प्राचीन पुरुषों की मूर्तियो की पूजा करती थी। प्राय. प्रत्येक कुटुम्ब अपने-अपने पुरखाओं की मूर्ति रखकर उनकी पूजा करता था। कही-कही जादू-टोना तथा यत्र-तत्र की भी प्रथा थी।

मार्गी[२] लोगो का समाज पर भारी वर्चस्व था। वे अग्नि की पवित्रता और मृतको को खुले में रखने के पक्षपाती थे। खुले मे मृतको को रखने की शक

१. यही प्रथा आजकल हिन्दुओ में जारी है। "ओम् अग्नि वायु चद्र सूर्या प्रायश्चित्तयो"—आदि पारस्कर गृह्य सूत्र में मन्त्र १ लगायत २० तक सूर्य के साथ चन्द्र की स्तुति भी की गई है।

२. मार्गी=माखी अर्थात् यज्ञकर्ता।

परंपराओं को छोड़कर और सारी परंपराएँ तथा धर्म के स्वरूप पूर्णरूप से आर्य-धर्म अथवा उससे प्रभावित हैं। आज भी आर्यों की किसी भी धर्म-पुस्तक में मित्र, सूर्य और अग्नि की उपासना के बिना कोई अध्याय पूरा नहीं होता है।[1]

कुछ इतिहासकारों का मत है कि पिछले पार्थ राजाओं पर ईसाई धर्म का भी प्रभाव पड़ा है। वह निष्कर्ष वे इस तथ्य से निकालते हैं कि सन् १९८ में राजधानी ऐदेसा में एक बडा सम्मेलन हुआ था जिसमें ईस्टर का त्यौहार कब मनाया जावे इस पर काफी चर्चा हुई थी किन्तु केवल इसी मीटिंग से उपरोक्त निष्कर्ष निकालना सही नही है। क्योंकि कोई भी उदार राजा दूसरे धर्मावलंबियों की सभा बुलवा सकता है। १५०० वर्ष के पश्चात् मुगल सम्राट अकबर के समय में प्राय. ऐसी धर्म-सभाओ का होना मामूली बात थी। हाँ, पिछले पार्थ सम्राट

---

१ आर्य धर्म में देखिये मित्र की प्रशसा—

"ओ प्रातरग्नि प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना।"
"ओ चित्र देवानामुदगादनीक चक्षु मित्रस्य वरुणास्यग्ने।"
आपाद्यावा पृथिवी अतरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्त स्थषश्च।
— ऋग्वेद, प्रथम मडल सूक्त ११५।१

"स्वस्ति मित्रो वरुणा स्वस्ति पथ्य रेवति।" —ऋग्वेद मडल ५, सू० ५१, मन्त्र १४

'द्रु' के विषय मे—

ओ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। —यजुर्वेद अध्याय ३०, मन्त्र ३

अग्नि के विषय में—

'स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।"—ऋग० म० ५, सू० ५१, म०१५

"अग्नि मित्र वरुण सातये भगे द्यावा पृथिवी मरुत. स्वस्तये।"
—ऋ० म० १०, सू०१३, म० ६

"ओ शनो अग्निज्योतिरनीको अस्तु शनो मित्रा वरुणावश्विना शम।"
—ऋ० म० ७, सू० ३५, म० ४

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृति त्व मिष्टा पूर्ते स ँ सृजेथा मय।
—यजु० अ० १५, म० ५४

"ओ अग्नये स्वाहा।" "ओ भूरग्न्ये स्वाहा।" गोभिल गृह्य सूत्र

"अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत हुते" और "अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्च. सुवीर्यम्।"
—शतपथ का० १४।६।४।२४

आदि सहस्रो मन्त्र सूर्य मित्र और अग्नि की पूजा मे तथा 'दुर' के विरुद्ध कहे गये हैं। और देखिये—

तन्मित्रस्य वरुण स्यामि चक्षे सूर्यो रुप कृणुते द्यो रुपस्थे।
अनन्त मन्य द्रुश दस्य पाज. कृष्णमन्यद्धरित. स भरन्ति ॥५॥
—ऋ० प्रथम मडल, सूक्त ११५।५

इसी प्रकार ऋग्वेद का प्रथम अष्टक, प्रथ मण्डल, प्रथम अध्याय "अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देव मृत्विजम् होतार रत्न धातमम्।" से प्रारम्भ होकर अग्नि स्तुति से भरा पड़ा है।

पुलकेशी या बलघोष प्रथम (Volagases I) का झुकाव जरस्थ्र धर्म की ओर अवश्य हो गया था।

फिलास्ट्रेटस नामक लेखक जो सन् १७२ से २४० तक रहा है, ने बेबीलोन महल के वर्णन के अतिरिक्त राजकक्ष मे देवताओं की सोने की मूर्तियो के रखे होने का उल्लेख भी किया है।[१] उसने राजा के कक्ष के ऊपर चार स्वर्ण जादू चक्रों[२] का लगा होना भी लिखा है जिससे कि राजा अपने धर्म-पालन से पथभ्रष्ठ न हो जावे।

पिछले काल के सिक्को मे पल्ल (Pallas)[३], (Artemis) द्यौ[४] और (Deus) आदि देवताओं की छापें भी अंकित हुई पाई जाती है।

यह आश्चर्य की बात है कि पार्थ लोगो मे साहित्य की बिलकुल ही कमी थी। उसका कारण शायद उनका घुमक्कड स्वभाव होने से साहित्य की ओर बिलकुल अभिरुचि का न होना ही हो सकता है क्योकि उनका पूरा साहित्य या तो यूनानी है अथवा फिर लिखने की कला भी यूनानी ही है।

वास्तुकला में भी पार्थियन आर्यों की भाँति ही निर्माणकर्त्ता थे। तिगरिस और फरात नदियो के बीच में पार्थ राजाओं का पुराना स्थान 'हतरा' मिला है। उसकी खुदाई से पता चला है कि नगर के चारों ओर एक बडी दीवार थी जिसमे स्थान-स्थान पर बुर्ज बने हुए थे। यह दीवार और नगर एक चौडी और गहरी खाई से सुरक्षित हैं। इसकी लम्बाई ३ मील की है। बीचोंबीच मे एक राजमहल है जिसमे ७ बडे-बडे कक्ष हैं जिनकी लम्बाई-चौडाई ६० फीट × ४० फीट से लेकर ३० × २० फीट तक है। इन सबमें किवाड लगे हुए थे। दीवारो पर कई प्रकार के पलास्तर थे, जिन पर कई प्रकार की खुदाई और पच्चीकारी काम का किया हुआ था। इन कक्षो के बाद उनसे लगा हुआ एक दूसरा कक्ष है जो सम्भवत: मन्दिर था। मन्दिर में यद्यपि कोई खुदावट का काम नही है तथापि प्रकाश के लिये एक बडा दरवाजा लगा है।

इसी प्रकार दूसरे नगरों की खुदाई मे निफर तथा शेरकट आदि नगर मेसोपोटिमिया मे मिले हैं। इसके अतिक्ति बहिस्तून मे भी एक शिलाखण्ड पर खुदावट मिली है जिससे उस समय की उत्कीर्ण कला पर काफी प्रकाश पडता है।

---

१. फिलासट्रेटस छठवां, पूर्वी साम्राज्य, पृ० ४१७

२. सम्भवत यह बौद्ध धर्म का प्रभाव होगा, क्योकि बौद्ध धर्म में धर्मचक्र का प्रयोग धर्मरत रहने का प्रतीक था।

३. भविष्य पुराण में म्लेच्छ महावृत्तात वर्णन में गुरुण्ड, शक, खस, यवन जातियों के साथ पल्लव जाति का भी वणन है।

४. देखिये, पृ० १०७

१९

आर्यमणि देश के लिये संघर्ष

रोम और पार्थ राज्यों के बीच मे आर्यमणि देश को लेकर काफी कलह रही। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि दोनों राज्यों में काफी समय तक युद्ध के पश्चात् एक स्थायी सघि हो चुकी थी जिसके अनुसार आगस्त सम्राट ने आर्यमणि देश को आर्तक्षय या आर्तअक्षय के अधीन छोड दिया था। सन् २० ई० पू० मे जब आर्तअक्षय की मृत्यु ही गई तो रोम के सम्राट ने रोम से तिवेरियस नाम के सरदार को अक्षय के भाई तिगरन को गद्दी पर बिठाने को भेजा जिसने सन् ६ ई० पू० तक राज्य किया किन्तु उसकी मृत्यु के बाद आर्यमणिवासियों ने बिना रोम की स्वीकृति के उसके लडके और लडकी को राजसिंहासन पर आरूढ कर दिया। इससे आगस्त को अत्यत क्रोध आया और उसने एक दूसरे उत्तराधिकारी को सिंहासन पर बिठाने के लिये फौजें भेजी किन्तु उसी समय आर्यमणि मे बगावत फैल गई और पार्थ राजा बृहत ने एक दूसरे तिगरन को गद्दी पर बिठा दिया। आगस्त सम्राट यद्यपि काफी बूढा हो गया था तब भी उसे उसकी सत्ता पर ऐसा प्रहार अच्छा नही लगा और उसने अपने दत्तक लड़के के साथ पौत्र को पूर्व दिशा मे युद्ध हेतु भेजने का आदेश दिया।

जब इन दोनो राज्यों में महायुद्ध होने की तैयारी चल रही थी, उसी समय पार्थ राजा बृहत चतुर्थ को उसके लडके बृहदाश्व ने, जोकि उसके बुढापे में मूसा नाम की एक इटालियन दासी से उत्पन्न हुआ था ईसा से दो वर्ष पूर्व मार डाला और सिंहासन पर कब्जा कर लिया। रोमन सम्राट ने उसे राजा स्वीकार नहीं किया किन्तु जब बाद मे उसने आर्यमणि देश की राजनीति मे हिस्सा न लेने का वचन दिया तो दोनों देशो मे संधि हो गई।

किन्तु उसके द्वारा यह घृणित कार्य किये जाने तथा उसकी माता की मूर्ति को मुद्राओ में अंकित करने के कारण उसकी प्रजा उससे असंतुष्ट हो गई और उसका वध कर दिया गया। उसके बाद उरुद पार्थ सिंहासन पर बैठा किन्तु थोडे दिनो के बाद पार्थ के सरदारों ने रोम को बृहत के बड़े पुत्र को सिंहासन पर

आरूढ़ किये जाने हेतु आदेश भेजने को लिखा। इस लड़के का नाम पाणिनि था जिसे पश्चिम वालो ने Vonones लिखा है। किन्तु पाणिनि की आदतें व व्यवहार विदेशी थे और वह मद्यपान भी अधिक करता था। अतः राज्य मे बगावत फैल गई और पास के मेद राज्य के राजा आर्तभानु (Artabanus) जिसे रोमन लोगों ने आर्तवाणी के नाम से संबोधित किया है[1] को निमंत्रण भेजा; वह पहले आक्रमण में तो असफल रहा परन्तु बाद मे उसने पाणिनि को हराकर भगा दिया। वह सन् १६ में पार्थ की गद्दी पर बैठा। पाणिनि भागकर असुर प्रदेश मे पहुँचा, वहाँ से वह रोमन सुरक्षापंक्ति में पहुँच गया।

इधर रोमन सम्राट ने आर्यमणि राजा आर्तअक्षय पर हमला करने जनरल तिबेरियस के भतीजे जरमनीकस को भेजा। उसने आर्मीनिया पहुँचकर जनता की राय से आर्तअक्षय नाम के उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठा दिया।

पार्थ राजा अपने समस्त आक्रमणो मे सफलता प्राप्त करता गया। इससे उत्साहित होकर उसने सन् ३४ मे आर्तअक्षय की मृत्यु होने पर आर्यमणि देश के सिंहासन पर अपने लड़के हर्ष को बिठा दिया। इस आर्यभानु ने रोम का भी तिरस्कार किया जिससे चिढकर तिबेरियस ने बृहत चतुर्थ के एक लडके को जो रोमन लोगों के पास था, असुर प्रदेश मे भेज दिया। उनका विचार था कि इस राजकुमार के आगमन से आर्यभानु के विरुद्ध जो पार्टी है वह खुल्लम-खुल्ला इस राजकुमार के साथ हो जायेगी। किन्तु उसका यह प्रयत्न राजकुमार के मर जाने से समाप्त हो गया। अब आर्यभानु ने तिबेरियस का और भी मजाक उडाया अतः उसने चिढकर अब एक नये राजकुमार त्रिदत्त को जोकि मृतक राजकुमार का भतीजा था पार्थ देश में हमला करने भेज दिया और आस पास के देश के राजाओं को भडका दिया। इससे उत्साहित होकर इबीरिया के शासक बृहषमान (Rharasmanes) ने सन् ३५ मे आर्यमणि पहुँचकर आर्यभानु के लडके हर्ष को मार डाला और फिर पूरे आर्यमणि को रौंदकर उसकी राजधानी पर कब्जा कर लिया।

आर्यभानु की पराजय (३६-३७ ई०)

आर्यभानु ने अपने दूसरे लडके उरुद को मुकाबले के लिये भेजा किन्तु पार्थ सेना हार गई। अत: अब स्वयं आर्यभानु ने एक बडी सेना लेकर आर्यमणि देश पर आक्रमण किया। इधर रोम के शासको ने आर्यमणि को बचाने के लिये असुर प्रदेश के राज्यपाल विटेलियस को भेजा। इस युद्ध में आर्यभानु की पराजय हुई और वह हर्षण प्रदेश की ओर चला गया। यह युद्ध सन् ३६-३७ में हुआ था।

1. 'Artabani=Suetonius Tiberius 8.66 पर्सियन इतिहासकारों ने इसे अर्दभानु Ardawan लिखा है। सर पर्सी, पृ० ३८७

आर्यभानु के भागने पर त्रिदत्त निःशंक होकर पार्थ के सिंहासन पर कब्जा जमाने आगे बढा। उसका किसी ने भी विरोध नही किया और वह क्षेसीभूमि नामक राजधानी में दाखिल हो गया। किन्तु त्रिदत्त अपनी इस जीत को स्थायी भी नहीं बना पाया था कि आर्यभानु ने बडी फौज के साथ उस पर आक्रमण किया। या तो त्रिदत्त की साथी रोमन सेना हार गई या भाग गई और आर्यभानु ने बिना किसी भीषण विरोध के पार्थ सिंहासन पर पुनः अपने पुराने साथियों के बल पर कब्जा कर लिया।

इन छुटपुट संघर्षों से रोम काफी थक गया अतः उसने पार्थ के साथ संधि की अभिलाषा की। सन् ३७ मे असुर प्रदेश के गवर्नर विटेलियस ने फरात नदी के किनारे आकर पार्थ के साथ संधि की। इस सधि द्वारा आर्यमणि देश पार्थ की अधिकार-सीमा से बाहर हो गया। पार्थ सम्राट ने अपने एक लडके को रोम में राजदूत के रूप में रख दिया। कुछ वर्षों के बाद एक आंतरिक संघर्ष मे आर्यभानु यद्यपि पुन गद्दी खो बैठा था परन्तु उसने शीघ्र ही उस पर कब्जा कर लिया। सन् ४० मे उसकी मृत्यु हो गई। उसने तीस वर्ष तक राज्य किया।

आर्यभानु की मृत्यु के कुछ समय बाद तक पार्थ की आन्तरिक स्थिति बहुत ही कलहपूर्ण रही। उसके दोनो पुत्रों मे सिंहासन के लिये युद्ध छिड गया। अत मे वर्द्धन (Vcrdanes) ने सिंहासन पर कब्जा कर लिया। परन्तु वह शीघ्र ही मार डाला गया और आर्यभानु के दूसरे पुत्र गोतर्ज ने उस पर कब्जा कर लिया। किन्तु सरदार उससे अप्रसन्न थे अत· उन्होंने क्लाडियस सम्राट को पाणिनि के लड़के को सिंहासन पर बिठाने के लिये भेजने को कहा। एक रोमन सेना के साथ इवीरिया के शासक के भाई मिहिरदत्त ने फरात नदी को पार करके पार्थ मे प्रवेश किया, किन्तु उसकी भयंकर हार हो गई। बहिस्तून का शिलालेख गोतर्ज ने इसी विजयश्री के उपलक्ष मे निर्मित किया था।

इस युद्ध के कारण कुछ दिनो तक पार्थ मे शांति अवश्य रही किन्त इसी बीच आर्यमणि के अभागे प्रदेश पर युद्ध के बादल फिर मँडराने लगे। गोतर्ज के पश्चात् पाणिनि द्वितीय पार्थ की गद्दी पर बैठा; परन्तु कुछ महीनों के बाद ही उसके ज्येष्ठ पुत्र पुलकेशी प्रथम (Volgases) ने, जोकि एक यूनानी दासी से उत्पन्न था, आर्यमणि लेने की इच्छा प्रकट की। पुलकेशी अपने भाई त्रिदत्त को आर्यमणि की गद्दी पर बिठाना चाहता था, इस समय आर्यमणि देश इवीरिया के शासक बृहषमान के भाई मिहिरदत्त द्वारा राज्य-सचालन मे था। किन्तु दुर्भाग्य से इवीरिया के शासक का लडका रधमिष्ट या रादमिष्ट Rhada·mistus भी वहाँ का शासक बनने को उत्सुक था। बृहषमान ने अपने लडके को सलाह दी कि वह अपने काका मिहिरदत्त को गद्दी से उतार कर स्वयं गद्दी सँभाल ले और अंत में यह षड्यन्त्र सफल हुआ। पुलकेशी ने आर्यमणि देश की इस आतरिक

कलह से लाभ उठाया और सन् ५१ में उस पर चढ़ाई करके उस पर पूरा कब्जा कर लिया किन्तु अकाल के फूट पड़ने से जब वह लौट गया तो रादमिष्ट (Rhadamistus) ने उस पर पुनः अपना शासन कायम कर लिया।

इसी समय पार्थ देश पर दस्यु लोगों (Dahae जाति के बर्बर) का हमला शुरू हो गया। पुलकेशी ने बड़ी कठोरता से उसको दबा दिया। इधर अदियाबन (Adiabene) के शासक की मृत्यु हो गई और उसकी गद्दी पर उसका भाई मनवसु (Mono Basus) बैठा जिससे पुलकेशी (पार्थ) की मित्रता थी। अतः शान्ति के साथ पुलकेशी का राज्य संचालन होने लगा। उसने अब सब तरफ से निवृत्त होकर फिर आर्यमणि पर हमला किया। रादमिष्ट हारकर भाग गया और आर्यमणि त्रिदत्त के अधिकार में आ गई।

इन दिनो रोम में नीरो राज्य कर रहा था। किसी समय आर्यमणि देश रोम साम्राज्य का एक अंग रह चुका था किन्तु अब वह उसके साम्राज्य के बाहर था। इस बात का दुःख नीरो को सदैव रहता था। अतः उसने एक बड़ी सेना देकर कारबूलो नामक विख्यात सेनापति को आर्यमणि देश जीतने को भेजा। कई बार भीषण संग्राम हुए किन्तु रोम पार्थ को दबा नहीं सका और न आर्यमणि देश पर कब्जा कर सका; अंत मे दोनों देशों मे सन्धि तय हो गई। अपनी शान रखने के लिये नीरो ने यह स्वीकार कर लिया कि आर्यमणि देश का शासक त्रिदत्त नीरो के हाथो से स्वर्ण मुकुट पहने। इसमे पार्थ को या आरमीनिया को क्या आपत्ति हो सकती थी। अतः त्रिदत्त तीन सहस्र पार्थ योद्धाओ के साथ रोम नगर को रवाना हुआ। अत्यंत वैभवपूर्ण जलसों में उल्लास के साथ नीरो के हाथ से स्वर्ण मुकुट को रखे जाने का कार्य सम्पन्न हुआ। इस पूर्ण यात्रा का व्यय रोम को उठाना पड़ा। कहा जाता है कि नौ महीनों तक प्रतिदिन छः सहस्र पौंड का व्यय रोम कोष से दिया जाता था। इस आयोजन के बाद त्रिदत्त वापस अपनी राजधानी लौट आया। रोम जगत् में इस संधि की बड़ी आलोचना हुई। सन् ६६ से जबकि यह संधि हुई पार्थ देश के आगे का इतिहास महत्त्वपूर्ण न होने से अन्धकार के गर्त मे रहा है। हाँ, सन् ७५ में इलानी नाम की बर्बर जातियो ने चारों ओर से पार्थ पर आक्रमण किया। पुलकेशी ने तत्कालीन रोम सम्राट वेसपेसियन से सहायता माँगी जो अस्वीकार हुई। अतः अलानी जाति ने पार्थ साम्राज्य की पूरी-पूरी लूट-पाट की और असख्य राशि अपने देश को ले गये। इस बर्बर जाति को मेद तथा हर्षण राज्यो का भारी सहयोग था इसीलिये वे इतना उपद्रव मचा सके। सन् ७७ मे पुलकेशी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद पाचोर (Pocorus) नामक लडका उसकी गद्दी पर बैठा किन्तु इस समय पार्थ साम्राज्य के चार-पाँच दावेदार हो गये थे, जो प्रत्येक अपने को शाहंशाह कह रहा था। सन् १०५ ई के इस संघर्षकाल मे उसरु नामक उत्तराधिकारी पार्थ की गद्दी पर बैठा।

२०

रोम और पार्थ की आखिरी होड़

पश्चिमी इतिहासकारों और विशेषकर गिबन ने अपने 'रोम साम्राज्य के पतन और नाश' मे रोम साम्राज्य के ये दिन अत्यंत वैभव और ऐश्वर्य के माने हैं। सयोग की बात है कि रोम के इन्ही वैभवशाली वर्षों मे आर्यों की पूर्वी शक्ति पार्थ से उनका मुकाबला हुआ इन दो शक्तियों का द्वंद्वयुद्ध अधिकाश मे वर्तमान टर्की, ईराक, जोर्डन, सीरिया और ईरान के पश्चिमी भागो को लेकर ही हुआ। पूर्वी सम्राट इन देशों को अपनी भूमि का एक महत्त्वपूर्ण भाग मानकर उनपर किसी बाहरी शक्ति के आक्रमण को विदेशी शक्ति का अपने क्षेत्र मे हस्तक्षेप होना मानते थे। जबकि पश्चिमी शक्तियाँ सिकंदर की लाइन पर चलते हुए इन प्रदेशों को विजित करना अपनी महत्त्वाकाक्षाओं की पूर्ति का एक साधन मानती थी। इतना ही नहीं एक बार जब यूरोप की शक्ति ने एशिया की भूमि पर अपना कब्जा कर लिया तो वे उन प्रातो पर राज्य करना अथवा अपने प्रभाव-क्षेत्र में उन्हे सदैव बनाए रखना, अपना आवश्यक कर्तव्य और विशेषाधिकार समझती थी। इन्ही आधार-नीतियों के कारण लगभग पाँच सौ वर्षों तक इन देशो में निरतर युद्ध होता रहा।

सन् १०० ई० मे आर्यमणि देश के राजा त्रिदत्त की मृत्यु पर हर्षवंशी पार्थ राजा पाचोर ने अपने लड़के अक्षयधर (Axedares) को बिना रोम को सूचना दिये ही गद्दी पर बिठा दिया। इसे रोमवालो ने अत्यंत अपमान माना और बस दोनो ओर से लडाई की तैयारी होने लगी। इस समय रोम में अपने समय का महान् सम्राट ट्राजन राज्य कर रहा था। सन् १०१ से १०७ तक वह वर्तमान रूमानियाँ आदि यूरोपीय देशो को लेने में उलझा रहा। वहाँ की विजय के बाद उसने पूर्व की ओर ध्यान दिया। पार्थ की शक्ति से वह पूरी तरह परिचित था इसलिये अगले ७ वर्षों तक उसने अपनी सामरिक तैयारियाँ की।

पार्थ राजा उसरु जिसने सन् १०६ से १२९ तक राज्य किया, इस समय पार्थ की गद्दी पर आसीन था। उसने ट्राजन को प्रसन्न करने के लिये अपने दूतो के हाथ

बहुमूल्य सामग्रियो की सौगात उसे भेजी । दूतों ने यह भी कहा कि यदि सम्राट चाहें तो पार्थ सम्राट आर्यमणि के वर्तमान राजा अक्षयघर को हटा देगा और उसके स्थान पर पार्थम श्री (Parthum Siris) को रोमन सम्राट के हाथों से ताज धारण करा देगा । ट्राजन ने गर्वपूर्वक यह स्वर्ण अवसर खो दिया और कहा कि यह निर्णय असुर प्रदेश में पहुँचने पर किया जावेगा । पार्थम श्री ने स्वयं दो बार रोमन सम्राट को यह संदेशा भेजा । ट्राजन सन् ११५ मे फरात नदी पार करके आर्यमणि देश मे पहुँचा । वहाँ पार्थम श्री निष्कपट भाव से केवल थोड़े से साथियों को लेकर उसकी अगवानी को पहुँचा । उसने उसके चरणों में अपना मुकुट इस आशा से रख दिया कि रोमन सम्राट उदारता से अपने इस अधीनस्थ राजा के सिर पर फिर ताज रख देगा । परन्तु ट्राजन ने अत्यंत नीचतापूर्वक इस आदर-भाव को ठुकरा दिया और राजा पार्थम श्री को धोखे से मरवा डाला । ट्राजन के इस क्रूरता तथा कपटपूर्ण कृत्य का रोम मे भी घोर अनादर हुआ और आज तक उसके इतिहास पर यह भारी कलक लगा हुआ है ।

सन् ११५ मे ट्राजन ने मेसोपोटामिया और बेबीलोन को जीत लिया और उनको रोमन साम्राज्य में मिला लिया । इसके बाद आदियावन पर हमला किया गया । पार्थ सम्राट अपने अधीनस्थ राजा की सहायता को नही आया अतएव वह सहज ही में जीत लिया गया फिर तिगरिस नदी को पार करके हटरा पर आधिपत्य कर लिया । इसके बाद वह फरात नदी की ओर बढ़ा और थोड़े दिनो में ही उसने सेलूशिया तथा क्षेसीभूमि पर कब्जा कर लिया । इन लगातार विजयो से उत्साहित होकर वह फारस की खाड़ी में घुसकर विजय यात्रा करने के मधुर स्वप्न देखने लगा ।

किंतु पार्थ सम्राट की चुप्पी को केवल पराजय समझना ट्राजन के लिये भारी भयंकर भूल सिद्ध हुई । जब वह आगे बढ़ रहा था सम्राट उसरु पीछे के प्रदेशो मे भारी बगावतो का सगठन कर रहा था और अंत मे यही हुआ । ट्राजन ने जब यह सुना तो वह हर्ष-वधी एक लड़के को पार्थ का उत्तराधिकारी बनाकर शीघ्र ही पीछे हटरा को लौट आया जहाँ कि बागी लोग इकट्ठे हो चुके थे । किंतु रोमन सम्राट को आशा के विपरीत यहाँ मुँह की खानी पड़ी और वह बागियों से हार गया ।

अगले वर्ष उसरु एक बडी सेना के साथ क्षेसीभूमि में एकाएक आ धमका और रोमन सम्राट की ओर से रखी हुई सेना की भयंकर मारकाट करके उस पर अपना अधिकार कर लिया । इन पराजयों से ट्राजन का दिल टूट गया और वह सन् ११७ ई० मे निराश होकर मर गया ।

उसकी मृत्यु के बाद रोम की गद्दी पर सम्राट हेड्रियन बैठा । वह शांतिप्रिय राजा था । उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं को आगस्त सम्राट की सीमाओं

से आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा अत पार्थ सम्राट के साथ जो संधि हुई उसमें उसने मेसोपोटामिया और आर्यमणि देशों पर से अपना अधिकार हटा लेना स्वीकार कर लिया।

सन् १३३ ई० में पार्थ राज्य पर काकेशस के रास्ते फिर अलानी नाम की बर्बर जातियों ने हमला किया किंतु उन्हें धन देकर संतुष्ट करके सम्राट ने बिना किसी विशेष हानि के वापस कर दिया।

सन् १६१ ई० मे पार्थ पर पुलकेशी तृतीय नाम का राजा राज्य कर रहा था। वह बडा महत्वाकाक्षी था। इन दिनों रोम में मारकस औरेलियस नाम का शासक सिंहासनारूढ था। समवतः पुलकेशी को यह पता चल गया कि रोम इस समय कमजोर है। अतएव उसने रोम के संरक्षित आर्यमणि राजा को निकाल कर अपने सरक्षित पुराने वंश के तिगरन को वहाँ की गद्दी पर बिठा दिया। रोम सम्राट ने क्रुद्ध होकर अपने प्रसिद्ध सेनापति आलियर सेवेरियनस को एक बड़ी सेना लेकर पार्थ सम्राट के विरुद्ध भेजा किंतु इस सेनापति की पार्थ योद्धाओं के धनुषवाणो की तीखी और भयकर मार से भयकर क्षति हुई। उसकी लगभग सारी सेना मौत के घाट उतार दी गई। रोमन सेना की हार के बाद पार्थ सैनिक फरात नदी को पार करके असुर प्रदेश मे घुस गये और उसे पूरी तरह रौंद डाला।

इस हार से रोम सम्राट का सिंहासन हिल गया। अब उसने अपने दूसरे सेनापति केसियस को चढाई करने भेजा। पहले तो केसियस असुर प्रदेश मे रक्षात्मक युद्ध करता रहा किंतु बाद मे जब उसकी शक्ति बढ गई तो उसने सन् १६३ में हमला करके पार्थ सेनाओ को फरात नदी के बाहर भगा दिया। आर्यमणि देश मे दूसरे रोमन सेनापति प्रिसकस ने भागे हुए अपने सरक्षित राजा को फिर से गद्दी पर जा बैठाया। आर्तअक्षत नगर पर कब्जा करके उसे पूरी तरह विनष्ट कर दिया। इन विजयो से उत्साहित होकर कैसियस ने भी ट्राजन की विजयों को मात देने की प्रतिस्पर्द्धा मे पार्थ साम्राज्य पर चढाई करने का सकल्प किया। बेबीलोन के मार्ग मे एक अन्य स्थान पर उसे फिर विजयश्री मिल गई। उसने सेलूशिया और क्षेसीभूमि पर कब्जा करके उन्हें लूट लिया। अब आगे बढकर उसने मेद देश की ओर प्रयाण करके ट्राजन की विजयो को पीछे धकेल दिया। विजयी सेनाओं ने सारे साम्राज्य मे तहलका मचाकर अकाल और दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा कर दी। उसने ऊपर की ओर बढ़कर मेसोपोटेमिया की राजधानी निसिबिसि पर भी कब्जा कर लिया।

सन् १६१ मे पुलकेशी तृतीय की मृत्यु हो गई। उसकी गद्दी पर पुलकेशी चतुर्थ नाम का राजकुमार आसीन हुआ। इस समय रोम में गृह-युद्ध शुरू हो गया था जिसमें असुर प्रदेश की रोमन सेनाओ ने एक नाइगर नाम के उत्तराधिकारी का साथ दिया। पुलकेशी चौथे ने उसे बधाई भेजी परन्तु जब वह हार गया

और उसके स्थान पर दूसरा उत्तराधिकारी सिविरस रोम की गद्दी पर बैठा तो पुलकेशी इस उत्तराधिकार के तमाशे को चुपचाप देखता रहा। इतिहास के वर्णनों से मालूम पड़ता है कि यह सम्राट बहुत ही चतुर और कूटनीतिज्ञ था। इसने स्वयं आगे न होकर अपने संरक्षित हटरा के राजा को असुर-प्रदेश के उत्तराधिकारी की सहायतार्थ पहुँचा दिया। सन् १९४ में गृह-युद्ध का लाभ उठाकर पश्चिमी मेसोपोटामिया रोम से स्वतन्त्र हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस स्वतंत्रता मे पार्थ राजा का अवश्य ही योगदान रहा होगा; इस क्षेत्र में रोमन सेनाओं का पूर्णरूपेण सफाया कर दिया गया। केवल राजधानी निसिबिसि मे ही कुछ रोमन सेनाएँ चारो ओर से घिरी हुई रह गईं। नाइगर को हराकर रोम के गृह-युद्ध में जब सिविरस विजयी होकर निकला तो उसका पहला काम पूर्व मे निसिबिसि में फँसी हुई रोमन सेनाओ का उद्धार करना था। वह आगे बढ़ा और उसने निसिबिसि का त्राण करके आदियावन प्रदेश पर कब्जा कर लिया। यह सच है कि पुलकेशी ने अपने संरक्षित राज्य को कुछ भी सहायता नहीं दी; किंतु जैसे ही सिविरस लौटकर गया उसने पुनः आदियावन पर आक्रमण करके रोम की सेनाओ को भगा दिया।

इन दिनों रोम फिर दूसरे गृह-युद्ध मे फँस गया था। अतः जब सिविरस गृह-युद्ध मे अलबीनस को हरा चुका तो उसने फिर पूर्व की ओर मुख किया। थोड़े समय मे ही आर्यमणि और ऐदेशा के राज्यों ने अधीनता स्वीकार कर ली। अब सिविरस फरात नदी को पुनः पार करके तिगरिस की ओर बढ़ा। उसने कुछ समय मे ही सेलूशिया ले लिया और पुलकेशी द्वारा विकट लडाई लड़े जाने के बाद भी पार्थ राजधानी क्षेसीभूमि पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार इस शताब्दी में दो बार रोमन सेनाओ ने पार्थ राजधानी पर आक्रमण करके न केवल उस पर कब्जा ही किया अपितु उसे विनष्ट भी कर दिया। इससे पार्थ की कीर्ति को बड़ा भारी धक्का लगा और रोम साम्राज्य की अजेयता फिर से एक बार इन क्षेत्रों में छा गई।

अब रोमन जनरल के सामने पार्थ साम्राज्य को पूर्णरूप से परास्त करने के लिए उसका दूसरा नगर हटरा को जीतना शेष था। सिविरस ने पूरी शक्ति के साथ हटरा पर आक्रमण किया। किंतु वह उसे लेने मे पूरी तरह असफल रहा। हटरा के वीर योद्धाओ ने आश्चर्यजनक वीरता से अपने दुर्ग की रक्षा की। रोमन सेनाएँ किले की दीवारो को तोड़ने तक मे असफल रहीं। जैसे-तैसे एक दीवार मे छेद हुआ। रोमन लोगो ने उसमें से आक्रमण करने मे देर कर दी फलत. वह सूराख भी पूरी तरह भर दिया गया। अपनी असफलता पर खीझकर सिविरस ने यह बहाना बनाया कि वह एकदम आक्रमण कर देता तो हटरा का प्रसिद्ध सूर्यमंदिर उसके सैनिकों द्वारा धराशायी कर दिया जाता अतः उसने उसको

कोई क्षति न पहुँचे इसलिये दीवार के छेद से तत्काल आक्रमण नहीं किया। इस शताब्दी के हटरा के दो प्रसिद्ध युद्धों मे दो रोमन जनरलों, ट्राजन तथा सिविरस को पराजित होकर भागना पड़ा। इस समय यदि पार्थ की सुस्त सेनाओं ने तेजी से भागती हुई इस रोमन सेनाओं पर आक्रमण कर दिया होता तो सारी रोमन सेना ही विनष्ट हो गई होती। इसके बाद रोमन सेनाएँ केवल आदियाबन को रोमन साम्राज्य में मिलाने के बाद असफलतापूर्वक वापस लौट गईं।

सन् २०८-२०६ मे पुलकेशी चतुर्थ की मृत्यु हो गई। उसके बाद राज्य के लिये उसके दो पुत्रो आर्तभानु तथा पुलकेशी मे भयकर गृह-युद्ध हुआ। अत में आर्तभानु को पश्चिम का राज्य और पुलकेशी को बेबीलोन का राज्य मिला। इस समय सिविरस की मृत्यु हो चुकी थी और उसकी जगह उसका पुत्र करकल्ला गद्दी पर आसीन हो चुका था।

करकल्ला सम्राट अपनी धूर्तता के लिये प्रसिद्ध था। उसने पहले तो पुलकेशी को मान्यता दे दी किंतु बाद में धोखे से वह आर्तभानु से भी चर्चा करता रहा। उसने आर्तभानु के पास बहुमूल्य सौगातें भेजकर प्रार्थना की कि वह अपनी लडकी का यदि उससे विवाह कर दे तो दो साम्राज्य हमेशा के लिये पक्के मित्र बन जायेंगे और हमेशा शाति रहेगी। इसके अतिरिक्त इस संगठन से दोनो साम्राज्यो को बडा भारी लाभ भी मिलेगा।

आर्तभानु ने पहले ही देख लिया था कि करकल्ला ने ऐदेसा के राजा के साथ भारी धोखा और विश्वासघात किया है तथा उसके बाद यही नीति उसने आर्यमणि राजा के साथ दोहराई थी। अत: उसने उस पर बिलकुल विश्वास नहीं किया। उसने राजदूतो को मीठे-मीठे बचनो से सन्तुष्ट करके वापस भेज दिया। इस पर करकल्ला ने फिर दूसरे राजदूत अत्यन्त विनयावनत होकर भेजे और उन्होने सम्राट की सदाशयता पर राजा को पूरा-पूरा विश्वास दिलाया तब कही आर्तभानु ने विवाह की आज्ञा दी और करकल्ला को वर रूप मे अपने यहाँ बारात लाने का आग्रह किया। जब नगर बारात की अगवानी के लिये सजा हुआ था धूर्त करकल्ला ने धूर्तता और छल से एकदम अपने सैनिकों के साथ राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा आर्तभानु बडी मुश्किल से जान बचाकर भागा। उसकी सारी सेना मार डाली गई और उसके क्षेत्रो को लूट लिया गया; किंतु यह विश्वासघाती और रोम को कलकित करने वाला राजा अधिक दिनों तक अपनी दुर्दशा देखने जिंदा नही रहा और तत्काल ही मर गया।

आर्तभानु सीमा क्षेत्रो मे जाकर इस धूर्त राजा को सजा देने के लिये एक बडी सेना इकट्ठी कर रहा था तब ही उसे सूचना मिली कि करकल्ला मर गया है अत: उसने करकल्ला के उत्तराधिकारी मेकरीनस को अन्तमेत्थम दिया कि वह शीघ्र ही आर्यमणि छोड़कर चला जावे और युद्ध का भारी हर्जाना अदा

करे। उसकी यह शर्त नहीं मानी गई फलस्वरूप इतिहास में अंतिम बार पूर्व और पश्चिम की सेनाएँ एक बार फिर निबटने के लिये मैदान में जमा हो गईं।

अंतिम पार्थ-रोम युद्ध (सन् २१७ ई०)

सम्राट आर्तमानु के वीर योद्धा धनुषवाणों से लैस थे। उसके कुछ सैनिक बड़े-बड़े नेज़े लिये हुए ऊँटों पर भी सवार थे। यह सारी सेना जिरह-बख्तर के गणवेश से पूरी तरह सुसज्जित थी। पहले दिन के भयानक हमले में ही रोमन सेना भाग खड़ी हुई। आर्तमानु का हमला इतना भयंकर था कि रोमन सेनाओं ने बचने के लिये जमीनों पर लेटकर अपने ऊपर घास डालकर अपने को छिपा लिया।[1]

दूसरे दिन की भयंकर लड़ाई भी कोई निर्णायक फैसला नहीं कर सकी। समस्त मोर्चों पर अविराम युद्ध होता रहा। तीसरे दिन रोमन सेना भयंकर क्षति के साथ रण-क्षेत्र से भाग निकली। रोम पर ७॥ लाख पौंड का हरजाना डाला गया जिसे उसने अदा कर दिया। इस प्रकार रोम-पार्थ-संघर्ष का अंतिम परिणाम रोम की पराजय और पार्थ की पूरी जीत के साथ समाप्त हुआ।

पश्चिमी इतिहासकारों ने इस महत्त्वपूर्ण लड़ाई का विवरण तो दिया है परंतु जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ उसका नाम तथा लड़ाइयों के विशद् वर्णन को जान-बूझकर संसार से छिपाया है।

---

१. Strewing the ground with caltrops सरपर्सी पृष्ठ १८६।

२१

फारस में मित्र पूजा

प्राचीन आर्यों की परंपरागत प्रार्थनाओं में मित्र, वरुण, अग्नि और इन्द्र आदि देवताओं का काफी ऊँचा स्थान है। ऋग्वेद के काल से लेकर बहुत लम्बे समय तक इन वैदिक देवताओं की गाथाएँ प्राचीनकाल की धर्म पुस्तकों में भरी पड़ी हैं। धीरे-धीरे जैसे आर्यों का धर्म व्यापक होता गया, वैसे-वैसे अन्य अनार्य देवताओं का भी पूजन में स्थान जुड़ता चला गया। पिछले युग के आर्य न केवल इन देवताओं का पूजन ही करते थे अपितु मित्र, अग्नि और चन्द्रवंश से अपनी उत्पत्ति का स्थान बताकर वे अपने को अन्य लोगों से श्रेष्ठ समझते थे।

भारत के आर्यों में भी उन आर्यों का स्थान आदरणीय कुल में समझा जाता था जिनके वंश के साथ आदि पुरुष मित्र या सूर्य का नाम जुड़ा हो या जो अपनी उत्पत्ति सीधी सूर्य से मानते हों। ईरान में भी आर्यों में यही परम्परा थी। वहाँ के बड़े-बड़े आर्य-घराने भी अपनी उत्पत्ति सूर्य अथवा मित्र से मानते थे और इस कारण पश्चिमी एशिया की समस्त आर्य जातियों में अपने कुल देवता के रूप में मित्र की पूजा बड़े धूम-धाम से की जाती थी। ईरान की परंपरा और संपर्क से मित्र पूजा पश्चिम और यूरोप के देशों तक फैल गई। यूरोप और रोमन भाषा में मित्र शब्द का उच्चारण 'मिथ्रा या मिथ्राज' होता है।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर पर्सी ने मित्र पूजा के विषय में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

"आर्य जाति के प्राचीनतम देवताओं में से मित्र भी एक महान् देवता था।[1] उसका उल्लेख वैदिक ऋचाओं में असुरमज्द के साथ आया है। जिंदावस्ता में उसका स्थान असुरमज्द और अहिमान के बीच में सबसे बड़े याजत के रूप में सम्मानित किया गया है जो परब्रह्म द्वारा संसार को चलाने और दुः अथवा बुराई को नष्ट करने के लिये उत्पन्न किया गया है। वह प्रकाश का देवता है। चूँकि

1. Cumont book "Les Mysteres de Mithra"

वह प्रकाशमय है अतएव उसमे उष्णता के कारण उत्पन्न उत्पादन और उन्नति के गुणों का होना माना गया है। आगे के उन्नतिशील युग में विशेषकर आर्तक्षयहर्ष के काल में वह सम्राटों का रक्षक, गृहपति और विजय-देवता के रूप में माना जाने लगा। प्रत्येक मास का सोलहवाँ दिन और वर्ष का सातवाँ मास मित्र के लिये पवित्र माने जाते हैं। मित्र शब्द के उल्लेख की प्रथा राजघरानों में जैसे मित्रदत्त आदि आर्य राजाओं के नाम संस्करण के रूप में जारी हो गई थी।"[1]

"जैसे-जैसे परशु साम्राज्य का उदय हुआ बेबीलोन और दूसरे स्थानो में भी इस मत का आविर्भाव हो चला। बेबीलोन मे मित्र देवता को अंशु या शम्स (सूर्य देवता) के रूप मे माने जाने की प्रथा भी चल पड़ी। सिकदर के राज्य-शासन के छिन्न-भिन्न होने के बाद जो पोटस, कैपेडोसिया, आर्यमणि और कामजिन आदि राजवंशो का उदय हुआ वे सब अपने को सक्षमान वंश का मानते थे। इस प्रकार ईरान के देवी-देवतागण पश्चिम में पुजने लगे।"

"कुछ समय तक एशिया के बाहर इस मत का कोई प्रभाव नही था। यूनानी लोग इसकी ओर कभी भी आकर्षित नही हुए इसलिये वहाँ यह धीरे-धीरे पहुँचा। यूनानी कारीगरो ने प्रसिद्ध 'मित्र मूर्ति' का जो निर्माण किया था उसमे उनके देवता हेलिओस (सूर्य) का भी उन्होने प्रतीक माना था।"[2]

"ऐसा विदित होता है कि रोम के पंपी सेनापति ने जब गिलीशियन उत्पातियों का दमन किया था, तो ये लोग मित्र की पूजा रोम में भी ले गये। पहले वहाँ यह मत छोटी जातियों में प्रचलित था। ईसा की प्रथम शताब्दी आते-आते इस धर्म की जड़ें वहाँ काफी मजबूत हो चुकी थी। दूकानदारो, दासो और सिपाहियो मे इस धर्म के मानने वालो का काफी ज़ोर था। चूँकि इस धर्म में राजवंशीय घरानो के व्यापक अधिकार निहित थे अत. रोमन सम्राटो ने दूसरी शताब्दी के अन्त तक इस धर्म को खूब प्रोत्साहित किया। डोक्लोसियन, गैलीरियस, लिसीनियस आदि सम्राटों ने रोमन साम्राज्य के सरक्षक देव के रूप मे इसे मान्यता दी। इस युग मे, इस मत ने इतनी उन्नति की कि मित्रिया या मित्र के मदिर पूरे जर्मनी मे बन गये और धीरे-धीरे यह यार्क और चेस्टर तक मे जा पहुँचा; किन्तु ईसाई धर्म के उदय से इस धर्म को भारी धक्का लगा। सम्राट कास्टेनटाइन ने इसका भारी दमन किया, यद्यपि बाद मे सम्राट जूलियन

१. सर पर्सी, पृष्ठ ३८८

२. रोमन समय मे चैल्डिया राज्य मित्र धर्म का गढ़ समझा जाता था। बेबीलोन मे मित्र देवता का विराट् मदिर था तथा कामनीन के शासक ऐन्टीओकस ने सन् (६६-३४ ई० पू०) मे नीमरुद दाग में एक मदिर का निर्माण कराया था। इस ऐन्टीओकस ने अपना वंश द्यु प्रथम से उत्पन्न हुआ माना है। इसने द्यौ असुरमज्द, अपोलो मित्र; और हरकुली व बृहस्र अग्नि Verethra-ghna के सम्मान में एक सम्प्रदाय चलाया।

आदि ने इस धर्म का पुनरुद्धार किया तथापि सन् ३६४ में थियोडोसियस महान् के काल में यूरोप में इस धर्म का अन्त हो गया।"[१]

यह बात सर्वविदित है कि धर्म का प्रारंभिक स्वरूप कुछ विशेषताएँ लिये हुए होता है, कालांतर में उसकी सादगी व विशेषताएँ धीरे-धीरे लुप्त होना शुरू हो जाती हैं और धर्म पर स्थानीय परिस्थितियों का प्रभाव पडकर उसमे विकृतियाँ आने लगती हैं फिर पुनः-पुनः कालांतर में वाद-विवाद उत्पन्न होकर वह कई शाखाओं में बट जाता है। बौद्धधर्म आगे चलकर महायान, हीनयान में, ईसाई धर्म रोमन तथा प्रोटेस्टेन्ट में, मुस्लिम धर्म शिया और सुन्नी मतो में बट गया। इसी प्रकार वैदिक धर्म भी दूसरे देशो में पहुँचकर वहाँ की स्थितियों के सम्पर्क में आकर मूल धर्म से कई मानो में अलग हो गया। ईरान देश में आर्यों की संस्कृति तो जीवित रही किन्तु धर्म मे असुर, दस्यु, और पश्चिमी जगत् का काफी प्रभाव पडने से उसमें वहाँ किंवदन्तियाँ और कपोल-कल्पनाएँ जुड गईं। कभी-कभी धर्म के स्वरूप का सही ध्यान न होने पर विद्वानों द्वारा भी अर्थ का अनर्थ हो गया है। आर्यों मे गौ वंश की पवित्रता सदैव ही संदेह से परे रही है। ईरान के एक उत्कीर्ण शिलाचित्र मे मित्र द्वारा एक वृषभ को नाथना बतलाया गया है किन्तु उसका अर्थ वहाँ पर उसे मारना बतला दिया गया है जबकि चित्र में स्पष्ट ही मित्र देवता उसे पकडे हुए बतलाये गए हैं। इस संदर्भ में श्रीकृष्ण द्वारा ७ वृषभों को एक साथ नाथना आज तक जगत् प्रसिद्ध कथा है। फिर भी ईरान के आर्य-धर्म के विकृत रूप का कुछ उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है। उनके अनुसार मित्रदेव एक चट्टान में से आश्चर्यजनक रूप से उत्पन्न हुए और एकदम सारे संसार को उसने पराजित करना प्रारंभ कर दिया। इसी संदर्भ में बतलाया गया है कि उनका सबसे भीषण मुकाबला असुरमज्द के वृषभ से हुआ; जिसे परास्त करके उसको बलिदान कर दिया।[२] मरते हुए वृषभ से पृथ्वी निकल पडी। पास मे एक साँप मरते हुए वृषभ का रक्त पीकर पोषित हुआ दिखाई पडता है। यहाँ सर्प को पृथिवी का प्रतीक माना गया है। पश्चिम देशों मे धर्म के रहस्य के विषय मे कहा जाता है कि सप्तग्रहो के आधार पर उसके सात अंश थे। ऐसा मालूम होता है कि आर्यों में पहले सात ग्रहों को मानने का ही क्रम था; क्योंकि भारतीय आर्यों ने जो नवग्रहो की रचना की है उनमे सप्तग्रहों के बाद दो ग्रह राहु और केतु बाद में जोडकर नौ ग्रह बनाये गए हैं जबकि सब खगोलशास्त्र वाले जानते हैं कि राहु और केतु कोई अस्तित्वशील ग्रह नहीं हैं। इन ग्रहों का परीक्षण काल लम्बा ही नहीं अपितु भयावह भी था। समस्त मानवों को पवित्रता

---

२. सर पर्सी, पृष्ठ ३८६

१. हिंदू धर्म मे भी कृष्ण द्वारा वत्सासुर का वध किया जाना बतलाया है।

की शपथ लेना अनिवार्य था किंतु स्त्रियाँ इस शपथ-विधि से मुक्त रखी जाती थीं। भोज्य-पदार्थ, जल और संभवत. सुरा के संयोग से विशेष प्रकार के संस्कार रचे जाते थे।

मित्र-धर्म अपने रहस्यमय संस्कारो के कारण मानव-धर्म बन गया था। प्रारंभ में इस धर्म की कोई लिखित पुस्तक नही थी। केवल श्रुति धर्म ही था। इस जीवन के बाद परलोक मे अच्छे जीवन की कामना से बाद में सर्वसाधारण जनता मे यह धर्म और भी प्रिय बन गया था।[1] स्वयं जरस्थ्रु धर्म में बुराई को दूर करने के लिये सत्यता, साहस और पवित्रता का विद्यमान होना आवश्यक था। मित्र सत्यता का प्रतीक था तथा उस पर विश्वास रखनेवालों को अपनी अंतिम विजय पर अटूट विश्वास होता था। तीसरी शताब्दी मे मित्रधर्म पूर्णरूप से ईरानी धर्म के रूप मे था जबकि ईसाई धर्म यहूदी जाति से निकला हुआ माना जाता था। ये दोनो धर्म एक दूसरे के आमने-सामने चल रहे थे।[2] किन्तु स्त्रियो के पूर्णरूप से अलग रखे जाने, बहुपत्नीत्व-प्रथा तथा अन्य बर्बर कारणों से मित्रधर्म ईसाई धर्म के साथ संघर्ष मे टिक न सका। कई बातो मे दोनो धर्मों की कुछ विशेषताएँ घुल-मिलकर एक हो गइ। जैसे २५ दिसम्बर का पवित्र दिन जो प्रारम मे मित्र का जन्म दिन माना जाता है; ईसाई धर्म के क्रिसमस त्यौहार के रूप मे मनाया जाने लगा। यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि वैदिक परंपरानुसार प्रायः इन्ही दिनो मे मकर का सूर्य प्रारंभ होता है। लोगो का विश्वास है कि इसी दिन से सूर्य के संक्रमण मे आने से दिन बडा होना प्रारम हो जाता है।

पार्थ सम्राटो ने लगभग पाँच सौ वष तक राज्य किया। रोम की उन्नत-शील शक्ति के समय मे ही पार्थ जाति का उदय हुआ किन्तु जिस आश्चर्यजनक वीरता और दृढ सकल्प से वे रोम का सामना करते रहे, वह इतिहास के पन्नो मे स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य है। यह बात सही है कि उनका काल शिक्षा और कला की दृष्टि से बहुत ऊँचा नहीं था किन्तु वे अपने से भविष्य मे आने वाले इन्ही बातों मे हीन उसमानी तुर्कियो से कही अच्छे थे। उन्होने अपना जीवन बर्बर और जगली आक्रान्ताओ के रूप से प्रारंभ किया और शीघ्र ही आर्य जाति की

---

१. मित्र धर्म वास्तव मे सैनिक धर्म था जोकि रोमन सेना के पूर्वी सहायकों द्वारा लाया गया था। सन् ३०७ ई० में डाइक्लोशियन, मैलेरियस तथा लिसीनियस ने कारनतम स्थान पर मिलकर मित्र के मदिर का पुनरुद्धार किया था। सम्राट जूलियन ने कुस्तुनतुनियाँ के अपने महल मे इस धर्म के रहस्यो का पर्व मनाया था। पतझड़ में इस धर्म का एक महोत्सव मनाया जाता था जिसे मित्र कण कहते थे जिससे बाद मे बिगडकर मिहिर जन शब्द प्रचलित हुआ। —clement

२. सर पर्सी, पृष्ठ ३६०

पताका को यूरोप तक पहुँचाने में वे विद्युत की भाँति चकाचौंध करके इतिहास में अपना नाम अमर कर गये।

हर्ष या आर्ष जाति की कलाकृति

हर्ष या आर्ष जाति की उन्नतिशील गतिविधियो के बारे में जो जानकारी उपलब्ध है वह केवल सिक्को तथा कुछ पुरातत्त्व सस्थानों तक ही सीमित है। जिन पाँच स्थानो के खडहर मिले हैं वे है—(१) कंगपुर का मन्दिर, (२) सत्र की इमारतें, (३) फराशबंद की मीनार, (४) वरकाह् की श्मशान कोठरी और (५) बेबीलोन का प्रासाद। कुछ लोगो के विचार से सूसा का महल भी पुरातत्त्व पर प्रकाश डालने वाला है। कगपुर मे जिसे पहले कंकोवार भी कहते थे, एक बड़ा कक्ष तथा उससे लगा हुआ बरामदा है जोकि यूनानी कला का द्योतक है। कहा जाता है कि यह आर्यतिमि Artemis का मन्दिर है। एकपट्टन (हम दान) मे रोमन काल तक अनाहिता देवी का पूजन होता था।

सत्र को अब अलहद्र[1] कहा जाता है। यह मौसूल नगर के दक्षिण-पश्चिम मे तिगरिस नदी से केवल ४० मील दूर है। १ मील के किलेनुमा घेरे मे इसके खडहर बिखरे पड़े है। मुख्य महल मे बडे-बडे तीन कक्ष व छोटे-छोटे चार कक्ष हैं। इसी प्रकार के कक्ष सीविस्थान तथा फीरोजाबाद मे देखने को मिलते हैं। फर्राशबन्द फारस प्रात मे फीरोजाबाद से तीन पड़ाव दूर है। किन्तु अब वह टूटी-फूटी हालत मे है। वरकाह् मे पार्थ राजाओ की पत्थर की समाधियाँ बनी हुई हैं, इनमे कुछ पर यूनानी भाषाओ मे कुछ लेख खुदे हुए है, जो केवल प्रशस्ति हैं।

सिक्को मे जो चित्र मिलते हैं उनमे राजा धनुष लिये दिखाई पडता है। क्योकि आर्य लोगों मे धनुर्विद्या बहुत प्रचलित थी तथा उन्होने धनुष के आधार पर ही रोमन लोगो को लगातार पराजय दी थी।

हर्ष या आर्ष राज्य में परशु देश का धर्म

"यूनानी शब्द पर्सिस जो अब फारस कहलाता है, मे सिल्यूकस वंश की समाप्ति के बाद एक स्वतन्त्र वश की स्थापना हुई जिसका वर्णन अधिकाश मे सिक्को पर से उपलब्ध होता है। यह राज्य माखी या मागी पुरोहितो द्वारा विहित धर्म से सचालित होता था। सिक्को मे शासक एक झडा जिसे 'कव' नामक धातुकर्मी ने बनाया था, लिये है। फारसी लोग इस झडे को 'दिराफ्शेकावयानी' कहते हैं। यह ध्वज फारस देश में उस समय तक रहा जब तक कि अतिम रूप मे इसे मुस्लिम अरबों ने क़ादसिया के युद्ध मे नष्ट नही कर डाला। इस ध्वज मे ऊपर असुरमज्द

१. 'स' का उच्चारण 'ह्' होना यहाँ की विशेषता है।

मँडराता है तथा आर्यमक् भाषा में कुछ लिखा हुआ है जिसे बाद में पहलवी राजाओं ने बदल दिया। इन सिक्कों में सम्राट को मल्क अथवा शाह कहा है। किन्तु अरब देशवासियो ने उनके मूल शब्द को अभी तक अक्षुण्ण रख छोड़ा है। वह शब्द हिरवद=पति (Ethra Pati master of Fire) है जोकि उनके पुरोहित होने का प्रमाण है। जिन राजकुमारो ने मल्क पदावियाँ धारण की वे द्र वंश के वो फीरोज और वत फिरदत्त (Vatafradat) थे। दूसरे राजकुमार Fratakaraerfiremaker तथा वागकर्त, बागदत्त और आर्तक्षयहर्ष कहे गये हैं। बागकर्त ने जहाँ लगभग २२० ई० पू० राज्य किया तथा वही आर्तक्षय-हर्ष ने लगभग ई० २२० बाद राज्य किया है। ये भी उपरोक्त धर्म को मानने वाले थे।

२२

परशु में ससन वंश का उदय

सक्षमान वंश की अवनति के बाद उत्तरी ईरान के कई राजवंश लगभग कई वर्षों तक ईरान के इतिहास पर छाये रहे। ये शक्तिशाली राज्य परशु राज्य पर भी अपना कब्जा जमाए रखे रहे। इसी बीच ईरान का एक वंश, जो अपने आपको सक्षमान वंश का ही मानता था ईरान के क्षितिज पर उदित हुआ।

वास्तव मे ईरान राज्य का इतिहास सही अर्थों में यही से प्रारम्भ होता है, इसके पहले का इतिहास तो केवल रोम और यूनान के लेखों, ताम्रपत्रों, गुफा-कंदराओ के भित्ति-लेखो और सम्राटों की प्रचलित मुद्राओ और पुरातत्त्वों की खोजो का परिणाम मात्र था। किन्तु इस वंश के समय से ईरान के लेखकों द्वारा समय-समय पर लिखे हुए अवतरणो, काव्य और कहानियों से वास्तविक इतिहास का पता चलता है।

पिछले अध्यायों में बतलाया जा चुका है कि रुस्तम के हाथों इस्वेन्द्र (Isfandiar) की मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का ब्रह्मा जिसे फारसी लोग वहमान कहते हैं और जो यूनानी इतिहास में आर्तक्षय हर्ष Artaxerxes Longiranus = आर्देशिर के नाम से पहचाना जाता है, के समय में ससन राजवंश की नीव डाली गई।

फिरदोसी ने लिखा है कि इसने अपनी बहन सुमै (हुमै) से विवाह किया था जिससे दारा की—ब्रह्मा की मृत्यु के बाद—उत्पत्ति हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि फिरदोसी ने सुमै को बहन बताने में कुछ भूल की है। फिरदोसी ने स्वयं यह नहीं लिखा है कि यह सुमै ब्रह्मा की कैसी बहन थी। क्योंकि आर्यों में भिन्न गोत्रज बहनें यथा मामा और फूफा की लडकियों को ब्याहने की आज तक प्रथा चली आती है। अतः समव है वह भी कोई भिन्न गोत्रज बहन हो। अस्तु!

ब्रह्मा का एक और भाई था जिसका नाम शासन[1] था जिसे फारसियों ने ससन

---

१. यह शासन पुरुषपुरी के अनाहिता देवी के मन्दिर का पुजारी था। इसकी पत्नी राम बशिष्ठ (Ram Bahist) निसायक के राजा की पुत्री थी। निसायक का सफेद किला

मिला है। यह पहाड़ी तथा कुर्दिस्तान के जंगली भागों में जाकर बस गया था। इसी शासन के वंश को 'ससन' वंश कहा जाता है।

अश्किनी वंश के पार्थ सम्राटों को फारसी साहित्यकारों ने बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया है। उनके सैकड़ों वर्षों के वैभवशाली काल का भी उन्होने कुछ कहीं-कहीं जिक्र किया है उसका कारण यह है कि फारसी लोग पार्थ राज्य की भूमि को 'मुल्के तवाइफ' कहते थे जो घृणासूचक है। फारस की दन्तकथाओं के अनुसार दारा ने मकदूनिया के फिलिप की लड़की से विवाह किया था जिसकी संतान सिकन्दर का होना कहा जाता है।

फारस के व्यक्तियों के विषय मे कहा जाता है कि उनका इतिहास का ज्ञान कभी सच्चा नहीं रहा। ससन वंश का जो इतिहास मिलता है वह दो अरब-लेखकों तबारी तथा मसूदी द्वारा ही अधिकांश मे वर्णित है। अबू जफर मोहम्मद तबारी ने मनुष्य जाति के प्रारम्भ से लेकर ६१५ ई० तक का इतिहास लिखा है। इसी प्रकार मसूदी का इतिहास उससे कुछ थोड़े काल के बाद का है। इसने ६४० ई० में अपना इतिहास समाप्त किया है।

जैसा कि संसार के अधिकांश प्रमुख व्यक्तियो के इतिहास का हाल है कि उनके प्रारम्भिक जीवन के साथ अनेक चमत्कारिक घटनाएं जुडी रहती हैं इसी प्रकार आर्तक्षीर (Artoxesxes) का इतिहास है। फारस के लोग और मुसलिम इतिहासकारों ने इस राजा का नाम आर्देशिर लिखा है। कहा जाता है कि पावक या पापक के पुत्र आर्देशिर ने अपने पुरखा कुरु की भाँति अपने स्वामी पार्थ राजा का वध किया। फिरदोसी तथा कर्णमक के अनुसार ईरान २४० राज्यो में बँटा हुआ था। इन सबका सरदार अर्द्धवान (जैसा कि फारसी उसे पुकारते हैं) या आर्तभानु था। इसके राज्य मे एक पावक नाम का राजा था जो इस्तक्षर का निवासी था। कहा जाता है कि पहले दिन उसने स्वप्न मे देखा कि उसके एक ग्वाला जिसका नाम ससन था, के मुख-मंडल पर सूर्य की आभा प्रस्फुटित हो रही है। दूसरे दिन उसने स्वप्न देखा कि ससन एक श्वेत ऐरावत पर बैठा हुआ जनता का आदर और सत्कार प्राप्त कर रहा है[1] तीसरे दिन उसने स्वप्न

अपने समय का प्रसिद्ध किला था तथा यह वहाँ के बजरंगी शासक के अधिकार मे था। इस शासक के लड़के का नाम पावक या पापक था जो कि क्षीर के किले का दुर्गपति था। इसने अपने लड़के आर्तक्षीर के लिये दरवज्ञ के गुर्जर राजा से अर्गपत दुर्गपति का पद लिया था।

१. यह भी आर्य धर्म की एक मान्यता है कि जो व्यक्ति स्वप्न में सफेद हाथी देखता है वह किसी न किसी बड़े यशकार्य का पात्र होता है। बुद्ध की माँ ने भी श्वेत हाथी अपनी स्वप्नावस्था में देखा था।

में देखा कि ससन के गृह में पवित्र ज्योति जल रही है और उससे दसों दिशाओं में प्रकाश फैल रहा है। इन स्वप्नो को देखने के बाद प्रातः राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर इस प्रकार के स्वप्नो का हाल पूछा। मंत्रियो ने कहा कि यह व्यक्ति राजा होने योग्य है। अतः इसे सिंहासन दे देना चाहिये। पावक ने यह सुनकर ससन को बुलाया और उससे उसके वंश की उत्पत्ति आदि के विषय में पूछा। जब ससन ने उत्तर दिया तो राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसको राजसी वस्त्रों आदि से सजाकर अपनी लडकी से विवाह कर दिया। जिससे आर्देक्षिर उत्पन्न हुआ। ऐसी और भी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इन सब कथाओं से केवल इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि ससनवंशी अपने को ईश्वरीय तत्त्वों का अंश समझते थे। आर्तक्षीर ने आर्तमानु से किरमान का किला छीन लिया और आसपास के क्षेत्र को अपने राज्य मे मिला लिया। इससे अप्रसन्न होकर आर्तमानु ने आर्देशिर पर हमला किया और उसे पराजित कर दिया। किन्तु दूसरी लडाई मे आर्तमानु हार गया।

अहवाज[1] के पूर्व में हारमुज के मैदान में अन्तिम निर्णायक युद्ध हुआ। इसमे पार्थ सेना बुरी तरह पराजित हुई और अर्द्धवान या आर्तमानु मारा गया। कुछ इतिहासकारो के अनुसार आर्तक्षीर का आर्तमानु के साथ मल्लयुद्ध हुआ जिसमे आर्देक्षिर ने भागने का बहाना किया। और फिर तत्काल पीछे लौटकर आर्तमानु को अश्व की काठी पर ही मार दिया। कुछ भी हो परन्तु इस लडाई ने जो सन् २२६-२७ मे हुई, उस वंश की नीव डाल दी, जिसने भविष्य में ईरान पर चार सौ वर्षों तक राज्य किया और यह राज्य तब ही उखडा जबकि मोहम्मद का सितारा अरब पर चमका। थोड़े दिनों मे ही आर्तक्षीर ने खुरासान, मर्व, वाल्हीक, क्षीव (खीवा) जीत लिये। आस-पास के पडोसी कुशन, तूरान और मकरान के राजाओ ने उसके यहाँ राजदूत भेज दिये। कुछ इतिहासकारों ने बतलाया है कि उसने भारत पर भी आक्रमण किया किन्तु सर पर्सी ने इसे गलत बतलाया है। हालांकि प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने यह लिखा है कि हिन्द तक यह राजा पहुँच गया था। ऐसा ही सर विंसेंट ने लिखा है। किन्तु सरहिन्द के राजा ने इसे हाथी, मोती, धन-दौलत देकर वापस कर दिया था। इतिहासकारों ने एक पीतल के सिक्के पर जिसके एक ओर जलती हुई अग्नि है, जैसा कि आर्तक्षीर के सिक्को पर अंकित है तथा दूसरी ओर कुशन वंश के सिक्के की भांति है, से यह निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की है कि यह राजा पंजाब तक घुस गया था; सही प्रतीत नही होता।

---

१. अब इस इतिहास के आगे नगर, पर्वत, नदी आदि वस्तुओ के नाम वर्तमान फारसी भाषा में प्रचलित हुए मिलेंगे।

चूंकि आर्तक्षीर ने उस आर्तभानु सम्राट को हराया था जिसने फरात नदी के किनारे पहुँचकर महान् शक्तिशाली रोमन सेनाओं को हराकर उनसे हरजाना वसूल किया था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि आर्तभानु को पराजित करने के बाद उसकी स्वयं लालसा हुई कि फरात नदी को पार करके पश्चिम में अपनी विजयपताका फहराये। इस उद्देश्य से उसने पश्चिम की ओर कूच किया। रोम की गद्दी पर इस समय एक युवक सम्राट सीवरस सिकन्दर नाम का शासक था जिसने यह समाचार सुनते ही आर्तक्षीर को पत्र लिखा कि "यह कोई बर्बर आदि जातियों से लड़कर उन्हें पराजित कर देने सरीखा साधारण कार्य नहीं है। यहाँ महान् रोमन साम्राज्य की शक्तिशाली सेनाओ से जूझना होगा। अतः वह अपनी महत्वाकांक्षाओ को अपने घर तक ही सीमित रख, उसे आगस्त, ट्राजन और सम्राट सीवरस की विजय-कथाओं को नहीं भुला देना चाहिये।"

आर्तक्षीर ने इसके उत्तर में अत्यन्त बलिष्ठ शरीर के ४०० परशु सरदारों को जो स्वर्ण-आभूषणों तथा अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे, रोम की ओर भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँचकर कहा कि रोमन लोग समस्त असुर प्रदेश और शेष एशिया के समस्त भूभाग को छोड़ दें ताकि शाहशाह अपने पुरखो के स्थापित राज्य को अपने हाथ में ले ले। इन सरदारो के कहने का तरीका इतना उद्दण्ड था कि रोम सम्राट ने क्रोधित होकर इन दूतो को जेल में डाल दिया और युद्ध की तैयारी शुरू कर दी गई।

रोमन लोगों ने अपनी सेना के तीन भाग किये। चूंकि आर्यमणि देश का राजा उनकी तरफ था ही अतः उत्तरी सेना मेद और अत्रपत्तन को जीतने भेज दी गई, जिससे इस सेना को आर्यमणि शासक खुसरू से भी सहायता मिल सके। दक्षिणी भाग की सेना को परशु तथा सूसियम तथा तीसरी सेना को, जिसका संचालन स्वयं सम्राट कर रहा था, मध्य परशु पर आक्रमण करने का निश्चय हुआ। उत्तरी सेना को तो थोड़ी-बहुत सफलता मिली परन्तु बीच की और दक्षिणी सेनाएँ बुरी तरह पराजित होकर रणक्षेत्र से भाग गई। उत्तरी सेना को भी काफी संकट का सामना करना पड़ा। अन्त में सन् २३२ ई० में संधि हो गई। आर्तक्षीर इस समय इतनी अच्छी स्थिति में था कि यदि वह चाहता तो असुर प्रदेश पर कब्जा कर लेता और वह आर्यमणि देश जिसके कारण कि कई गत शताब्दियो से दोनों साम्राज्यो मे झगड़ा होता चला आ रहा था, को लेकर ही सन्तुष्ट हो सकता था, किन्तु उसने बुद्धिमानी से ऐसा न करके विजय-संधि से ही शांत हो गया।

कुछ दिनों के बाद ही आर्यक्षीर ने आर्यमणि पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का शासक खुसरू बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु आर्तक्षीर के एक सेनापति द्वारा

वह बोखे से मार डाला गया। इस प्रकार आर्यमणि देश पर भी ससन वंश का अधिकार हो गया।

जरस्थ्रु धर्म का ससन वंश पर प्रभाव

ऐसा विदित होता है कि पार्थ लोगों ने जरस्थ्रु धर्म की कुछ मान्यताओं को स्वीकार कर लिया था किन्तु वे धीरे-धीरे समाप्त होती चली गई। वास्तव में जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उनका धर्म मित्र, चन्द्र और कुछ पुराने पुरखाओं का पूजन करने का ही रह गया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उनमें सेमिटिक जादू-टोना भी आ गया था।[1] कालान्तर में न तो अग्निकुंडों की ही महत्ता रह गई थी और न पवित्र ज्वाला या मास्त्री लोगों का ही वर्चस्व शेष रह गया था। आर्तक्षीर ने जरस्थ्रु धर्म को प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप मूर्तियाँ समाप्त होने लगीं और सूर्य-चन्द्र की पूजा भी कम पड़ गई।

अभी तक आर्यवंश की परम्परा और बंधन टूट नहीं पाये थे। अब आर्तक्षीर ने धर्म के सात दिग्गज विद्वानो को बुलाकर उनके ऊपर एक आर्त-वीरज (Artaviraf) व्यक्ति को चुना जो कि एक नवयुवक तथा पवित्र व्यक्ति था। फारस की किवदंती के अनुसार इस नवयुवक ने अत्यन्त पवित्रता और संयम को निभाते हुए नीद की कोई दवा खाई और सो गया। सात दिन बाद जब वह उठा तो उसके मुख से अनेक नियम और सदाचार के सिद्धान्त प्रकट होने लगे। उन सबको सग्रहीत कर लिया गया और ये ही समस्त जनता और पुजारियों के लिये मार्गदर्शनकारी बन गये। इस राजा के समय ईसाई धर्म पर भी प्रहार हुए थे।

आर्तक्षीर ने अपने अधीन राजाओं और जागीरदारो का भी बहिष्कार किया। वह सीधा पुजारियो के द्वारा राज्य-संचालन के पक्ष में था और जहाँ तक सम्भव हुआ छोटे-छोटे सामन्तो को समाप्त करके शासन का केन्द्रीयकरण किया। उसने नियमित सेना को सगठित किया और उन्हें क्षत्रपों की आधीनता से दूर रखा। उसके अनुसार "जब तक सेना नही, तब तक शक्ति नही और सेना धन के बिना नहीं बनती, धन कृषि के बिना नही आता और कृषि तब तक सफल नहीं होती जब तक कि न्याय न हो।" पश्चिमी इतिहासकारो ने इस राजा की उदारता और प्रजावत्सलता की बडी सराहना की है। फिरदोसी ने लिखा है कि आर्तक्षीर ने मरते समय अपने पुत्र साहपुत्र जिसे शापुर कहा जाता है, को वसीयत मे कहा था कि "प्रशासन और वेदी दोनों को कभी अलग मत समझना। बिना धर्म के राजा अत्याचारी होता है। यदि इन सिद्धान्तों पर चलते रहे तो ईश्वर की तुम पर सदैव कृपा रहेगी।"

---

१. सरपर्सी, पृष्ठ ३६७

२३

साहपुत्र प्रथम

सन् २४० ई० मे साहपुत्र जिसे पश्चिमी लेखको ने सेपोर Sapor अथवा शापुर लिखा है, अपने महान् पिता की गद्दी पर बैठा। परन्तु लेखको के अनुसार उसकी माँ मार्तभानु की पुत्री थी जो आर्तक्षीर को विवाही गई थी। विवाह के बाद उसने अपने पिता का बदला लेना चाहा, इस अपराध मे उसे कत्ल किये जाने की आज्ञा दी गई; किन्तु चूँकि वह गर्भवती थी अतः उसे कत्ल नही किया गया और वजीरो की सम्मति से उसकी जान छोड़ दी गई। इसी अवस्था में छिपे हुए उसके एक पुत्र हुआ। एक दिन जब आर्तक्षीर को अब इस बात का भारी संताप हो रहा था कि उसके कोई पुत्र नही है, तो उसने अचानक ही खबर सुनी कि उसके संतान है। वह उसे देखने को व्यग्र हो उठा। अतः दरबारियो ने यह योजना बनाई कि पोलो खेल मे समस्त बालकों को खेलने के लिये आमंत्रित किया जाये। आर्यक्षीर जोकि पोलो का अत्यन्त शौकीन था ने त्वरित ही आज्ञा दे दी।

जब खेल प्रारंभ हुआ तो सयोजको ने जान-बूझकर गेंद को साह के पास फेंकवा दी। उसे उठाने कोई भी बालक न दौड़ा परन्तु यह बालक बड़े साहस के साथ आगे बढ़कर शाह के पास से गेंद को उठा लाया। सम्राट ने त्वरित ही उसे अपना लड़का होना पहचान लिया। क्योकि इतना साहस तो उसके पुत्र में ही हो सकता था। बाद मे यह बात भी सत्य सुनकर उसको अत्यधिक आनन्द हुआ। उसकी मृत्यु के बाद वह सिंहासन पर बैठा।

एक मूर्ति-लेख मे साहपुत्र की निम्न प्रकार प्रशंसा की गई है—

"यह अहुरमज्द पूजक की मूर्ति है, जो ईश्वर है, साहपुत्र जो आर्य और अनार्य राजाओं का राजा है, देववंशी है, असुरमज्द पूजक देव आर्तक्षीर का पुत्र है जो स्वयं देववंशी तथा आर्य राजाओ का राजा है, जो पावक देव (अग्निदेवता) राजा का वंशज है।[1]

इस स्तुति में जहाँ साहपुत्र ने अपने पितामह पावक को आर्य राजाओं का

1. Sir Percy, Page 399.

सिरमौर माना है वहां अपने स्वयं को भी आर्य होने में गौरव माना है। यह वही पावक है जिसे पश्चिमी इतिहासकारों ने अपभ्रंश 'पापक' लिखा है।

आर्तक्षीर की मृत्यु का समाचार सुनते ही आर्यमणि और हटरा में बगावत उमड़ पड़ी और वे स्वतंत्र हो गये। साहपुत्र ने आर्यमणि को शीघ्र ही जीत लिया, परन्तु हटरा के विषय में उसे ज्ञात था कि उसे कई रोमन सम्राट भी कई बार नही ले सके अतः उसने षड्यंत्र द्वारा वहां की राजकुमारी को अपने से विवाह करने की चाल मे फँसाकर दुर्ग के फाटक खुलवा लिये और अंत में जब हटरा पर विजय हो गई तो इस देशद्रोही लड़की को भी विवाह करने के बजाय खुले-आम मरवा डाला।

रोम के साथ सन् २४१-२४४ ई० तक फिर युद्ध के बादल मँडराने लगे। इस समय रोम मे गृह-युद्ध चल रहा था। साहपुत्र ने इससे लाभ उठाने की सोची और आक्रमण की तैयारी कर दी। इस समय रोम में आर्तक्षीर का सामना करने वाले सिविरस सिकन्दर का वध किया जा चुका था और उसके स्थान पर एक थ्रेम देश निवासी मेक्जीमिन कब्जा करके तीन वर्षों से शासन कर रहा था। किन्तु इसके अत्याचारी होने के कारण चारो तरफ विप्लव उठ खड़ा हुआ और वह मार डाला गया। इस आतरिक अस्थिरता मे एक गोडियन तृतीय नामक युवक ने गद्दी को हथिया लिया।

रोम साम्राज्य की जब यह दशा थी तो साहपुत्र ने शीघ्र ही जाकर निसिबिसि पर कब्जा कर लिया। इसके बाद वह ऐन्टिओक को लेता हुआ शीघ्रता से भूमध्य सागर तक जा पहुँचा। मार्ग के सारे प्रदेशो को रौंद डाला और उनपर कब्जा कर लिया। किन्तु पार्थ लोगो की भांति ही यह तात्कालिक विजय थी। कोई स्थायी राज्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा नहीं थी।

नये युवक रोमन सम्राट के नेतृत्व में रोम की सेनाएं आगे बढ़ीं और उन्होंने निसिबिसि को पुनः ले लिया। इसके बाद उन्होने आगे बढ़ परशु सेना को रिसाइन और करही के मैदानो मे पराजित कर दिया। अब रोमन सेना ने तिगरिस नदी को पार करके फरात के किनारे जाकर क्षेसीभूमि को घेर लिया, किन्तु वे उसे ले न सकी और उसी बीच उनके युवक सम्राट का कत्ल हो गया अत. उन्होने सन् २४४ ई० में साहपुत्र से सधि की और पूर्व देशो को छोड़कर जल्दी भाग गई। इसके बाद चौदह वर्षों तक शान्ति रही। इस बीच दोनो साम्राज्य अपनी शक्ति-सचय में लगे रहे। संभवत इन दिनो मे साहपुत्र वाह्लीक विजय में लगा रहा किन्तु उसे ले न सका। इसके बाद ही उसने फिर रोम साम्राज्य पर भयानक आक्रमण करके, जो उसके सामने आया उसे ध्वस्त करते हुए ऐन्टिओक पर कब्जा कर लिया।

अंत में ऐन्टिओक की रक्षा करने वृद्ध सम्राट बेलेरियन के नेतृत्व में रोमन

सेना मैदान में आई जिसने फिर ऐंटिओक पर अधिकार करके परशु सेनाओं को असुर प्रदेश से बाहर भगा दिया। किन्तु प्रेटोरिया निवासी मैकरी आनस जो वास्तव में सेनापति था, ने षड्यन्त्र का जाल रचा और रोमन सेनाओं को ऐदेसा में उलझाये रखा ताकि साहपुत्र की सेना आगे बढ़ आये और रोम सम्राट का पतन हो जाये व रोमन सिंहासन उसके हाथ लग सके। अंत में यह षड्-यंत्र सफल हो गया। रोमन सेना अपनी रक्षा का व्यर्थ प्रयास करते हुए बाहर निकलने मे असफल रही और शत्रुसेना द्वारा उसका पूर्णरूप से संहार किया गया। स्वयं वृद्ध सम्राट को पकड़कर बंदी बना लिया गया। इस महान् पराजय से रोम तथा उसके अधीनस्थ जानकार ससार मे भारी खलबली मच गई; क्योकि अभी तक कहीं भी रोमन सम्राट की गिरफ्तारी का सयोग नहीं आया था। एक इति-हासकार ने लिखा है कि "यूरोप और एशिया मे इस समाचार से भयकर वज्र-पात सरीखा हो गया।"[1]

साहपुत्र ने अपनी इस महान् विजय को परसीपोलिश और साहपुत्र (नगर) में पत्थरों पर अंकित कर अमर यादगारें बनवा दी।

उस समय के लेखकों ने लिखा है कि सम्राट के अंतिम वर्ष कारावास में बड़े दु:ख से कटे। उसके साथ दास की भाँति व्यवहार किया गया। उसकी बाँहों मे पडी हुई हथकड़ियों के निशान उपरोक्त यादगार के पत्थरो में भी स्पष्ट बतलाये गए हैं। बाद के कुछ लेखकों ने लिखा है कि सम्राट पीले शाही वस्त्रों में जंजीरो से जकड़ा हुआ जनसमूह की ओर देखता बतलाया गया है। वास्तव मे रोमन साम्राज्य की यह महान् अधोगति और तिरस्कारसूचक पराजय थी।

सन् ३१२ ई० में लेक्टेंटीअस इतिहासकार ने लिखा है कि सम्राट अंतिम दिनों मे अपने निर्दयी विजेता के निर्माणों मे पत्थर ढोया करता था। उसकी मृत्यु के बाद उसकी खाल उधेड़कर रख ली गई तथा उसका विजय-स्मारक के रूप में प्रदर्शन किया जाता रहा। इस घटना के बाद एक मेकरिनिअस नाम के सरदार ने छल से सिंहासन पर कब्जा कर लिया, पीले वस्त्र[२] पहन लिये अर्थात् राजा बन गया तथा उसने वृद्ध सम्राट के पुत्र के विरुद्ध भी अभियान छेड़ दिया। साहपुत्र के लिये फिर यह अनुपम संयोग था। उसने एक 'करियादिस' नाम के ऐंटिओक निवासी को जो उसके पास शरणार्थी के रूप मे रह रहा था। सम्राट का मजाक उड़ाने के लिये उसे पीले वस्त्र पहनाकर उसे सीजर=कैसर (केसरी) पद से अलंकृत कर दिया।

---

1. Trebellius Pollio

२. राजसी वस्त्रो के लिये इस वाक्य का पश्चिमी इतिहासकारों मे प्रयोग किया जाता है। इससे प्रकट है कि आर्यों के स्वर्णिम पीले वस्त्रो से ही यह परिपाटी चली होगी।

इन सब कार्यवाहियों के बाद साहपुत्र ने फरात नदी पार की और ऐंटिग्रोक पर कब्जा कर लिया। उसने तुर्वस पर अधिकार करके पूरे एशिया माइनर को रौंद डाला। कैपेडोसिया के सबसे बड़े नगर कैसरिया मजाका को उसने आनन-फानन में ले लिया। वहाँ के निवासियों को मौत के घाट उतारता हुआ और कैपेडोसिया तथा असुर प्रदेशों पर बिना राज्य शासन स्थापित किये ही वह अपने पीछे मृतकों के ढेरों से पटी हुई घाटियों को छोड़कर वापस लौट चला।

जब रोम साम्राज्य इसी कठिन वेला से गुजर रहा था, तो साहपुत्र के सामने एक दूसरा संकट आ खड़ा हुआ। कुछ वर्षों पूर्व रोमन सम्राट हैड्रियन ने अपनी रोमन सीमा को सुरक्षित तथा सीमाबद्ध करने के विचार से तथा असुर प्रदेश तथा मेसोपोटामिया से व्यापार करने की इच्छा से फरात और दमिश्क नगर के बीचों-बीच में एक नगर पलमीरा को बसाया था। यह नगर फरात और दमिश्क दोनों से १३०-१३० मील दूर पड़ता है। कालांतर में यह नगर बड़ा समृद्धिशाली और वैभवपूर्ण बन गया। उसका शासक उदेनाथ लगभग अर्द्ध-स्वतन्त्र था। उदेनाथ ने लौटते हुए साहपुत्र की वीरता तथा आकस्मिक कोई अनहोनी घटना से घबरा कर पहले उसे एक पत्र के साथ बहुत धन और सामग्री भेजी। किन्तु चूँकि पत्र का सरनामा ऐसा था जिससे यह प्रकट होता था कि किसी बराबरी वाले शासक ने यह लिखा है, परशु सम्राट तिलमिला गया। उसने पत्र को फड़वा दिया और बहुमूल्य सामग्रियों को फरात नदी मे गिराने का आदेश दे दिया उसने चिल्लाकर कहा—"यह कौन उदेनाथ है, और किस देश का निवासी है जो अपने स्वामी से इस प्रकार पत्राचार करता है। यदि वह कम दण्ड चाहता है तो हाथ पीछे बाँधकर मेरी शरण में उपस्थित हो जावे।"

उदेनाथ बडी चतुरता से यह सब हाल देख और सुन रहा था जैसे ही सम्राट अपने साथ लूट की बहुमूल्य वस्तुओं को गाडियों और कारवानों से लादकर वापस लौटा उदेनाथ ने तग पहाड़ी दर्रों में इस काफिले के साथ भयकर छेड़-छाड़ की। पश्चिमी इतिहास लेखको ने लिखा है कि "यही नही कि उसने व उसके साथियो ने सम्राट का माल-असबाब ही लूटा हो अपितु वे सम्राट की रानियों तक को लूटकर भगा ले गये।" इससे परशु सेना बहुत ही भयभीत हो उठी और वह फरात को पार करने के बाद अरबी अश्वारोहियो से अपने को बचाने के लिये अब जबकि उनके ऊपर कोई खतरा भी शेष न रहा था ऐदेसा निवासियो को सारी लूट का माल देकर केवल सुरक्षित पहुँचाने भर के लिये उनकी सहायता ले ली।

ऐसा मालूम होता है कि पश्चिमी लेखको ने रोमन सम्राट की भयंकर हार से चिढ़कर अपनी झेंप मिटाने के लिये केवल एक मामूली ही घटना को बहुत बिस्तार के साथ बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। क्योंकि यूरोप वाले एशियावालों के

पराक्रम को कभी भी सहज भाव में स्वीकार नहीं करते। सन् २६३ ई० में उदेनाथ ने साहपुत्र से मेसोपोटामिया छीन लिया। उसने क्षेसीभूमि पर भी चढ़ाई की किन्तु वह उसे ले न सका। रोम की सीनेट और सम्राट गैलीनस ने अत्यंत प्रसन्न होकर उसका बड़ा आदर सरकार किया और उसे 'आगस्त' की महान् पदवी दी। थोड़े दिनों बाद ही उदेनाथ मार डाला गया।

उदेनाथ के मारे जाने के पश्चात् उसकी सुन्दरी विधवा 'जैनब' ने, जोकि टालमी वंश की कन्या थी, उदेनाथ के अधीन समस्त प्रांतों पर बड़ी योग्यता से शासन करना प्रारंभ कर दिया और मिस्र को जीतकर उसे पलमीरा राज्य में मिला लिया। उसने रोमन सम्राट आरेलियन की अधीनता स्वीकार नहीं की, इस पर रोमन सेना ने उसे परास्त करके सोने की हथकड़ी बेड़ियाँ लगाकर उसे रोम भेज दिया। परन्तु सम्राट ने जानबूझकर उसको सहायता नही दी। इस प्रकार इस छोटे से राज्य की उन्नति एकदम अवरुद्ध हो गई और वह छिन्न-भिन्न हो गया।

साहपुत्र के अंतिम दिन शान्ति तथा कला-निर्माण में व्यतीत हुए। वह बड़ा योग्य, साहसी और देखने मे अत्यत रूपवान था। उसने कारूँ नदी का प्रवाह रोकने को एक बड़ा बांध बंधवाया। इस बांध से पूरी नदी का प्रवाह ही दूसरी ओर मोड़ दिया गया। इस मुड़ी हुई नहर का नाम आबे गर्गर रखा गया। इस नदी के पूरे भूमितट को पत्थरो से पाटकर आश्चर्यजनक कार्य किया गया था। ऐसा खयाल है कि इस ५७० गज के बडे बाँध को बनवाने मे रोमन कैदियों का उपयोग किया गया होगा और आज भी यह बाँधे-कैसर कहलाता है।

कजरान के पास, शीराज और बुशायर के बीचो-बीच शाहपुर नामक एक नगर बसा हुआ था। इस नगर का नाम विशापुर था जो अब बिगड़कर शापुर कहलाने लगा है।[1]

साहपुत्र द्वारा खुरासान नगर मे विशापुर नाम का एक और नगर बसाये जाने का वृत्तान्त मिला है। बाद में यह साहपुत्र द्वितीय द्वारा भी पुन: बसाया गया है।

१. 'जर्नल रायल जियोग्राफिकल सोसाइटी', फरवरी १६११

२४

परशु देश का धर्म

पूर्व देशों में जिन धर्मों ने मनुष्य जाति पर सबसे अधिक गहरा प्रभाव डाला है उनमे से मणि धर्म भी एक है। यह धर्म मणि नाम के एक व्यक्ति ने चलाया था। इस धर्म के प्रचलन से एक प्रकार से प्राचीन मित्र धर्म को ही बढ़ावा मिला क्योकि इसमे मित्र धर्म या आर्य धर्म की ही विशेषताएँ थी। थोड़े ही दिनो मे यह इतनी तेज़ी से बढा कि न केवल एशिया परन्तु यूरोप की चार-दीवारी तक पहुँचने में सफल हो गया।

प्रसिद्ध अरबी लेखक अलबरूनी ने लिखा है कि "मणि सन् २१५ या २१६ मे पैदा हुआ था तथा वह लंगडा था। साहपुत्र के सिंहासनारूढ़ होने के समय उसने धर्म का प्रवर्तन किया और दरबार मे उसका बड़ा सम्मान बढ़ गया। किन्तु बाद में सम्राट की नजरों से गिर जाने के कारण वह वहाँ से ओझल हो गया ; इस बीच मे उसने भारत, तिब्बत और चीन देशो की यात्राएँ भी कीं।"[1]

सन् २७२ ई० में मणि फिर परशु देश मे लौटा। इस समय साहपुत्र की मृत्यु हो चुकी थी और उसके उत्तराधिकारी शरमिष्ठ[2] ने उसका बहुत सम्मान किया। लेखको ने लिखा है कि यह धर्म इतनी तीव्र गति से फैला कि लोग चारों ओर उसके स्वागत के लिये एकदम तैयार हो गये। मेसोपोटामिया के ईसाई केन्द्रों पर भी इस धर्म का काफ़ी प्रचार हुआ। वास्तव मे यह मित्र धर्म या आर्य धर्म का विस्तृत स्वरूप था। जब यह धर्म तीव्र गति से फैल रहा था तो दुर्भाग्य से एक वर्ष के बाद ही इसके संरक्षक शरमिष्ठ की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी भोई वाराहरण[3] प्रथम ने तीन वर्ष व उसके पुत्र वाराहरण

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ ४०५

२. Hormiodas सर पर्सी, पृष्ठ ४०५

३. रायल एशि-सो-जरनल जिल्द ३,१८६८ में जो मुद्रा मिली है उसमें लिखा है "ईश्वर के पवित्र वंश का, ईरान और अनईरान का सम्राट, असुरमज्व पूजक ईश्वरीय शाहपुर का पुत्र; किरमान का राजा वाराहरण।"

द्वितीय ने केवल १८ मास राज्य किया। इन दोनों शासकों (बाराहरण प्रथम व द्वितीय) को नये धर्म की उक्ति बिलकुल पसन्द न थी। नये धर्म के सिद्धांत के अनुसार "यह संसार नाशवान है"[१] यह घोषित किया गया था अतः प्रथम बाराहरण ने यह कहते हुए कि संसार का नाश तो बाद में होगा पहले इसी व्यक्ति का नाश कर दिया जावे, उसकी जीवित ही खाल उखड़वा ली और उसमें भूसा भरवा दिया और फिर उसके इस भूसे भरे शरीर को गुणदिशापुर[२] के एक दरवाजे पर लटकवा दिया जिसके कारण उस दरवाजे का नाम आज भी मणिद्वार हो गया है।[३]

मणि धर्म के क्या सिद्धान्त थे, इसकी विवेचना करते हुए ब्राउन नाम के लेखक ने लिखा है कि वास्तव में यह धर्म जरस्थ्रु धर्म का ईसाईकरण है। इस धर्म के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह धर्म जरस्थ्रु धर्म के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं था अपितु उसके आधार पर ही नये सिद्धान्त का प्रतिरोपण था।[४] स्वयं, जैसा कि बतलाया जा चुका है जरस्थ्रु धर्म वास्तविक, बुद्धिवादी और भौतिक था। उसमें उपवास की अनावश्यकता और भक्तों को फल भुगतने तथा परिवृद्धि के लिये तत्पर होने को कहा गया था। दूसरी ओर मणि के अनुसार इस नाशवान संसार से विरक्त रहने को मनुष्य को प्रतिक्षण तत्पर रहना चाहिये। और इस प्रकार विवाह और जनवृद्धि ही दु:खो का कारण बतलाया गया है क्योंकि इससे मनुष्य बंधनो मे और लिपटता जाता है। बाराहरण ने इसी सिद्धांत के आधार पर उसे दंड दिया था।

वास्तव में दोनों धर्म ही द्विसिद्धान्तवादी थे। ब्राउन के शब्दों मे "जरस्थ्रु धर्म में सत् और असत् सृष्टि, असुरमज्द तथा अहिमान के जगत-क्षेत्र, दोनों ही पृथक्-पृथक् रूप से आध्यात्मिक और भौतिकवाद पर आश्रित थे। जबकि मणि के अनुसार प्रकाश और तम का संयोग ही भौतिक जगत् के आविर्भाव का कारण है अतः वह बुरा और त्याज्य है और चूंकि वह असत् शक्तियों की क्रियात्मकता का ही परिणाम है अथवा उसमे तम की क्रियाशक्ति भी कार्य कर रही है अतः इस संसार का नाश अवश्य होगा और अंतिम ज्योति (Conflagration) के पश्चात् फिर प्रकाश का उदय होगा और इस प्रकार अनोद्धारक तथा अनाशवान

---

१. भारतीय वेदातो के अनुसार भी ससार नाशवान है।
२. गुणदिशापुर कजरून के पास शापुर का शहर है।
३. अलबरूनी और op. cit, पृष्ठ १६१
४. सर पर्सी, पृष्ठ ४०५

तम से उसका सदैव के लिये छुटकारा हो जावेगा।"[1]

जरस्थ्र, बुद्ध तथा ईसा ईश्वरीय संदेशवाहक माने गये हैं। ईसा के विषय में, मणि सिद्धांतों में प्रतिपादित किया गया है कि क्रास पर लटकाये जानेवाला ईसा कोई दूसरा व्यक्ति और एक विधवा का एक पुत्र था; क्योंकि ईसा के तो कोई भौतिक शरीर ही नहीं था। इसी प्रकार का आश्चर्यजनक वर्णन कुरान में भी आया है।[2]

किंतु मणि के निधन के पश्चात् इस मत की समाप्ति नहीं हो गई। बहुत वर्षों तक उसके महान् शिष्यों ने पहले बेबीलोन और बाद में समरकंद में धर्म-गद्दियों पर बैठकर अपने धर्म का प्रसार किया। जहाँ उसके अद्भुत प्रसार के साथ ही इस धर्म ने संसार को महान् कला और साहित्य प्रदान किया; इस्लाम के अभ्युदय के बाद भी यह जीवित रहा और मध्य एशिया में फैलता हुआ तिब्बत में पहुँच गया है। यूरोप में भी यह धर्म दक्षिणी फ्रांस तक फैला रहा जहाँ कि सन् १२०९ ई० में 'साइमन दि मंत फोर्ट' ने केवल इसी आधार पर कि वह मणि धर्म का अनुयायी है, अलबिगेनीज का दमन किया था। ईसाई धर्म का महत्त सेंट आगस्टाइन स्वयं भी ईसाई धर्म में आने के पहले उसी धर्म का अनुयायी था।

शाहपुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अर्मिष्ठ गद्दी पर बैठा। यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है। 'स' का उच्चारण 'ह' करने के कारण इतिहासकारों ने इसे Hormisdas लिखा है। यह सिंहासन पर बैठने से पूर्व खुरासान (क्षुरस्थान) का राज्यपाल रह चुका था किंतु जैसा ऊपर लिखा जा चुका है वह केवल एक वर्ष ही राज्य कर पाया कि उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसके स्थान पर उसका छोटा भाई वाराहरण[3] जिसे आमतौर पर वहराम कहते हैं गद्दी पर

---

1. In Zorostrianism the good & evil creation the realm of Ahur mazd and that of Ahriman, each comprised a spiritual and material part .. ... According to the Manichean view on the other hand the admixture of the light & darkness which gave rise to the material universe, was essentially evil and as a result of the activities of the power of the evil......the whole universe would collapse and the final conflagration would mark the redemption of the light and its final disassociation from the irredeemable and indestructive darkness.
2. Sura IV पृष्ठ १५६।
३. संभवत: इसका नाम ब्रह्मा हो जिसे फारसी व्यक्ति 'बिरहमा' कहते हैं क्योंकि 'ब्राह्मण' शब्द को भी फारसी लेखकों ने 'बिरहमन' लिखा है। किंतु चूँकि अंग्रेजी साहित्य में भी इसे वहराम लिखा है और उसका मूल वाराहरण बतलाया है अत: इसे ही स्वीकार करना उचित होगा। —सर पर्सी, पृष्ठ ४०७

सन् २७२ ई० में बैठा। इसने सन् २७५ ई० तक राज्य किया। यह कमजोर शासक था अन्यथा पलमीरा की जैनब रानी को बचाने की अवश्य सहायता करता। क्योंकि पलमीरा राज्य वफर राज्य का काम कर रहा था। दूसरे इसने रोम को उपहार मे बहुमूल्य पीतवस्त्र भी भेजे। कहा जाता है कि ये पीतवस्त्र इतने सुन्दर थे कि उनके सामने रोम के पीले वस्त्र भी फीके पड़ गये।

सन् २७५ मे रोम रूम्राट ग्रोरेलियन ने परशु पर आक्रमण किया किन्तु आक्रमण के आरंभ में ही वह अपनी सेना की बगावत में मारा गया। संयोग से उसी वर्ष वराहरण भी मर गया।

उसकी मृत्यु के बाद उसका लड़का वाराहरण द्वितीय गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त क्रूर शासक था। अत: मोबद (पुजारी जाति) लोगो ने इसे चेतावनी दी। उससे डरकर यह सीधी राह पर चलने लगा। इसने शिष्यस्थान (सिस्तान) के शक लोगों को हराकर उन्हें अपने अधीन कर लिया। वह जब पूर्व की ओर अपनी विजय यात्रा में लगा हुआ था तभी अकस्मात उसके साम्राज्य पर बड़ा संकट आ गया। यह संकट पश्चिम दिशा की ओर से आया।

सन् २८३ मे रोम में कारु ने (Carus) अपने पूर्वगामी ग्रोरेलियन के पद-चिह्नों पर चलकर एक विराट सेना तैयार की और फिर फारस की ओर चढ दौडा। उसकी सेना ने सरमटियन जाति से युद्ध करके काफी शिक्षण व अभ्यास कर लिया था। उसके एकाएक आक्रमण से परशु सम्राट भयभीत हो गया क्योंकि उसकी सेना राज्य में बहुत दूर पर स्थित थी। अत. उसने अपने राजदूतों को रोम सम्राट से संधि की प्रार्थना करने भेजा। दूतो को विश्वास था कि सम्राट का सामना बड़ा कठिनता से हो पायेगा किंतु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने सम्राट को जमीन पर बैठे हुए मोटे खाद्य-पदार्थों (Mouedy Bacon) को जलपान में अत्यत सादगी से चबाते हुए देखा। वह इतने साधारण स्तर मे था कि केवल सम्राट के पतीवर्ण की पोशाक से ही उसे पहचाना जा सकता था। सम्राट ने अपनी घुटी हुई चाँद पर से टोपी को उठाकर राजदूतो से कहा कि या तो परशु सम्राट संधि द्वारा अधीनता स्वीकार कर ले अन्यथा मैं उसके राज्य को इस प्रकार वृक्ष रहित कर दूँगा जैसे कि बाल-रहित मेरी चाँद है और इसी को चरितार्थ करते हुए उसने भयंकर आक्रमण को जारी रखा। एक हमले में मेसोपोटामिया तथा दूसरे हमले मे पार्थ राजधानी क्षेसीभूमि को ले लिया गया किंतु परशु के सौभाग्य से उसके कैंप पर अचानक बिजली गिर गई जिसमें वह मारा गया और परशु साम्राज्य एक बार नष्ट होने से बच गया। इतिहास लेखकों का इस विषय में मतभेद है कि वह बिजली से मरा अथवा उसके कैंप मे हुई कोई बगावत से मरा। कुछ भी हो अनुश्रुति बिजली से मरने की ही है।

कारु के मरने के बाद सन् २८६ में डाइक्लीसियन नाम का सम्राट रोम के

सिंहासन पर बैठा। उसने अपने पूर्वजों की युद्ध-यात्रा को जारी रखने के संकल्प से परशु पर आक्रमण करने की तैयारी की। संयोग से उसे एक स्वर्ण अवसर भी मिल गया।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है; आर्यमणि गत एक शताब्दी से परशु के अतर्गत चला आ रहा था किंतु पर्वतीय स्वाभिमानी लोग परशु साम्राज्य के प्रति निष्ठाभाव उत्पन्न करने में अब भी असमर्थ थे। विशेषरूप से उन्हें उसकी धार्मिक कट्टरता कतई पसंद नहीं थी। इतने में ही परशु सम्राट ने आर्यमणि देश के महान् नेता वलहर्ष द्वारा स्थापित सूर्य-चंद्र के मंदिर पर आक्रमण कर मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर फेंक दिया। इससे आर्यमणि देश की जनता भड़क उठी। इस संयोग का लाभ उठाकर डाइक्लीसियन ने आर्यमणि देश के पुराने शासक खुसरू के एक पुत्र त्रिदत्त को जो रोम में था और अपने पिता खुसरू की मृत्यु आर्तक्षीर के हाथों होती देखकर बदला लेने को कृतसंकल्प था, सहायता देकर आर्यमणि देश पर चढ़ाई कर दी। आर्यमणि प्रदेश से परशु सेनाएँ भगा दी गईं और त्रिदत्त का राज्य वहाँ स्थापित कर दिया गया।

वाराहरण द्वितीय की सन् २८२ ई० में मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसका पुत्र वाराहरण तृतीय की केवल चार महीनों में ही मृत्यु हो गई।[1] इसकी मृत्यु के पश्चात् साहपुत्र प्रथम के दो छोटे पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये भयकर द्वंद प्रारंभ हो गया। इसमें नरसी[2] (नरसिंह ?) ने दूसरे पुत्र शर्मिष्ठ को हरा दिया और वह उत्तराधिकार के मैदान से भाग गया।

सन् २९६ ई० में नरसी ने अपने खोए हुए प्रदेश आर्यमणि पर आक्रमण करके उसे हस्तगत कर लिया। वहाँ का शासक त्रिदत्त रोम को भाग गया। इस समय रोम में डाइक्लीसियन का सूर्य अपनी चरम सीमा पर था। अतः उसने खिन्न होकर अपने महान् सेनापति गैलीरियस को, जो मध्य यूरोप में डेन्यूब नदी की घाटियों में एक के बाद एक विजय कर रहा था, बुलाकर त्रिदत्त के साथ परशु सेना पर भयकर आक्रमण करने का आदेश दिया।

करही का युद्ध और रोमन पराजय

इसी बीच में परशु सम्राट ने आर्यमणि पर विजय प्राप्त करके रोमन प्रांत मेसोपोटामिया पर आक्रमण कर दिया। यहीं गैलीरियस ने आकर परशु सम्राट का मार्ग रोककर युद्ध के लिए आह्वान किया। करही स्थानों पर दोनों सेनाओं

---

१. वाराहरण तृतीय अपने नाम के आगे 'शकशाह' लिखता था क्योंकि शकस्थान या सिद्धिस्थान के सीथियों या शकों को उसने अपने पिता के काल में हराया था और पिता ने उसे सिद्धिस्थान का राज्यपाल नियुक्त किया था।

२. इतिहासकारों ने इसे Narses लिखा है।

में तुमुल संग्राम प्रारम्भ हो गया। पूर्वीय सेना के पास चतुर अश्वारोही थे किंतु दो लड़ाइयों में किसी की भी विजय नहीं हुई। अंत मे तीसरे युद्ध में परशु सेना की पूर्ण विजय हो गई। संपूर्ण रोमन सेना नष्ट कर दी गई। भागते-भागते बड़ी मुश्किल से फरात नदी को तैरते हुए पार कर त्रिदत्त और गैलेरियस केवल कुछ साथियों के साथ ही जीवित बचे।

अपनी इस हार से रोमन सम्राट को बहुत अफसोस हुआ। अत. उसने दूसरे वर्ष सन् २९४ ई० में फिर गैलीरियस को एक बड़ी सेना के साथ शाह से युद्ध करने को भेजा। पिछली लड़ाई से गैलीरियस ने काफी सबक सीख लिया था, वह जानता था कि खुले मैदान मे परशु से जीतना अत्यंत दुष्कर कार्य है अतः उसने आर्यमणि (आर्मीनिया) के जंगलों में धोखे से शाह की सेना में रात्रि के अंधकार में आक्रमण करने का व्यूह रचा। परशु सेना जब रात्रि मे आराम कर रही थी, गैलीरियस ने धोखे से एकदम आक्रमण कर दिया। शाह जख्मी होकर बड़ी मुश्किल से भाग पाया परन्तु उसकी सेना का काम तमाम कर दिया गया। उसके सरदार व उसका कुटुंब पकड़ा गया अतः उसने लाचार होकर संधि की प्रार्थना की जो स्वीकार कर ली गई। उसके राजदूत रोम मे संधि करने हेतु पहुँचे। जहाँ उन्होंने संधि की शर्तों की भूमिका में दोनों राज्यों को दोनो आँखों की आवश्यकता बतलाते हुए उनसे तुलना की जिनका होना शरीर के लिये एक आवश्यक सुंदरता है। इस प्रस्ताव से गैलीरियस आग-बबूला हो गया और उसने पूछा कि रोमन सम्राट वेलेरियन के व्यवहार के समय यह भाषा कहाँ चली गई थी ? उसने राजदूतों को यह कह कर भगा दिया कि संधि-शर्तें बाद में तय होगी। अन्त मे जो संधि हुई उसमें (१) दोनो राज्यों की सीमा फरात नदी न होकर तिगरिस नदी कायम की गई। (२) मेद देश के नगर जेनीथा तक आर्यमणि देश रोम के कब्जे में रखना निश्चित किया गया। (३) इबीरिया प्रांत रोमन संरक्षण मे रहना तै हुआ। (४) केवल निसिबिस नगर के द्वारा ही दोनों देशों का व्यापार चालू रहे। किंतु यह अन्तिम चरण नरसी ने स्वीकार नहीं किया। अतएव इसे छोड़ दिया गया। इससे विदित होता है कि दोनो पक्ष लड़ाई से ऊब चुके थे और किसी न किसी प्रकार संधि करने को उत्सुक थे तथा परशु किसी भाँति भी दबा हुआ नही समझता था। सन् ३०१ ई० में शाह ने सिंहासन का त्याग कर दिया।

२५

साहपुत्र महान्

नरसिंह के पदत्याग के पश्चात् शर्मिष्ठ का पुत्र शर्मिष्ठ द्वितीय (३०१-३०६) गद्दी पर बैठा परंतु सरदारों को उसकी यूनानी पद्धति पसंद न थी। अतएव उसे शीघ्र ही सिंहासन च्युत कर दिया गया और उसके स्थान पर उसका पहला पुत्र जो बडा था और जिसका नाम अधरनरसिंह था, गद्दी पर बैठा किंतु वह सन् ३१० मे अत्याचारी होने के कारण मार डाला गया। अत: अब उसका दूसरा पुत्र गद्दी पर बैठा जिसे साहपुत्र महान् कहा जाता है। इससे बड़ा एक भाई शर्मिष्ठ था जो भागकर रोम की शरण मे चला गया था। तब एक दासी के गर्भ से इस शाह का जन्म हुआ। कहा जाता है कि जब यह शासक गर्भ में ही था, तब इसके पिता की मृत्यु के बाद धर्माधिकारियों ने यह घोषित कर दिया था कि महारानी के उदर मे पुरुष बालक है। अतएव जन्म लेने के पूर्व ही संपूर्ण उत्सव के साथ वह गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया। यह बडा भाग्यशाली व्यक्ति था। क्योंकि इसने सत्तर वर्ष तक राज्य किया और इसके समय में १० रोमन सम्राट रोम की गद्दी पर बैठे।

साह की १६ वर्ष की आयु तक परशु देश सदैव ही रक्षात्मक लड़ाई लड़ता रहा क्योंकि उस समय शासक के अल्पवयस्क होने के कारण परशु साम्राज्य इतना बलिष्ठ नही हुआ था कि वह पडोसियो पर सफलता पूर्वक आक्रमण कर सके। अत: इससे उत्साहित होकर अरब लोगों ने बहरीन की खाडी से होकर परशु देश को क्षति पहुँचाना शुरू कर दिया। ये लोग अलहसा तथा अलबातिफ से आते थे और लूटकर चले जाते थे। उधर मेसोपोटामिया ने भी हमला करके क्षेत्रीभूमि पर कब्जा कर लिया। किंतु जब साह बडा हुआ तो उसने इन आक्रमणों को रोकने का निश्चय किया और समवत· सेनाचरीव के बाद प्रथम बार परशु खाड़ी में एक ईरानी नौ बेड़ा तैयार किया गया जिसने भयंकर रूप से अरबों को मार दी। यहाँ तक कि जो अरब पकड़े गये उनके कधे छेदकर उन्हें एक रस्सी में पिरो कर कैद में लाया गया। इस प्रकार के नृशंस कदम से अरबों ने उसका नाम

'जुलाकताफ' या स्कंध स्वामी रखा किंतु वे इस कदम से इतना डर गये कि उन्होंने भूल करके भी परशु साम्राज्य की ओर फिर न देखा।

ऊपर बताया जा चुका है कि सन् ३२३ में शर्मिष्ठ परशु जेल से भागकर रोम में सम्राट कुस्तुनतुन Constantine की शरण में चला गया था जहाँ उसको बड़ा सम्मान दिया गया। इसके अतिरिक्त रोमन सम्राट कुस्तुनतुन न केवल ईसाई ही था वरन वह ईसाई धर्म का संरक्षक भी था। इस कारण साहू को अपने साम्राज्य मे भी आंतरिक विद्रोह का डर था। साहू नवयुवक होने के नाते उसे विजय श्री प्राप्त करने की भी लालसा थी। इन सब कारणो से वह पश्चिम पर आक्रमण तो करना चाहता था परन्तु उसका साहस कुस्तुनतुन सरीखे महान् सम्राट के मुकाबले मे युद्ध करने मे साथ नही दे रहा था; किन्तु दैवयोग से कुस्तुनतुन सन् ३३७ ई० मे मर गया और साहू को अब अपनी इच्छापूर्ति का साधन प्राप्त हो गया।

कुस्तुनतुन के समय में रोमन साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हो गया था। परशु साम्राज्य के पश्चिमी इलाके भी अब उसके प्रभाव-क्षेत्र मे आ चुके थे। अत: उसने अपने साम्राज्य को अपने तीन अधिकारियो मे बराबर-बराबर बाँट दिया। साहूपुत्र को इससे बडा लाभ हुआ क्योकि अब उसे पूरे साम्राज्य की इकट्ठी शक्ति से युद्ध नहीं करना पडा। अपितु उसकी लड़ाई केवल उसी सम्राट से हुई जो पूर्व दिशा का स्वामी घोषित किया गया था। इसके अतिरिक्त आर्य-मणि देश का राजा त्रिदत्त जिसने पहले ईसाइयों पर भयकर अत्याचार किये थे, वह अब स्वयं ईसाई हो गया था, इसलिये उसकी प्रजा उससे अत्यन्त असंतुष्ट हो गई थी। अत: सन् ३१४ मे जैसे ही वह मरा, नरसी द्वारा छोड़ा गया प्रदेश फिर वापस ले लिया गया।

सन् ३३७ में उसने अपने लघु अश्वारोहियो की एक सेना आर्यमणि की छेड़-छाड़ के लिये भेज दी और उधर रोम भी आर्यमणि की सहायता न कर सके, इस हेतु उसने रोमन साम्राज्य पर अरबो के हमले शुरू करा दिये ताकि वह उधर ही उलझा रहे। दूसरे वर्ष सन् ३३८ ई० मे उसने निसिबिसि पर आक्रमण कर दिया। ईसाई जगत् में कहा जाता है कि इस आक्रमण को देखकर ईसाई धर्मगुरु सेंट जेम्स ने प्रार्थना की और तत्काल ही मधुमक्खियो के भयंकर झुण्डो ने आक्रांताओं पर हमला करना शुरू कर दिया जिससे वे मैदान छोडकर भाग गये। अन्य स्थानों पर साहू ने रोमन सेनाओ को हराना जारी रखा। सन ३४१ में आर्यमणि से सन्धि हो गई जिसके अनुसार साहूपुत्र द्वारा अंधे किये जाने वाले आर्यमणि राजा तिरेन (Tiranus) के पुत्र हर्ष को गद्दी पर बिठाल दिया गया। इससे एक बार फिर साहू का प्रभाव बढ़ गया।

सन् ३४६ में फिर साहू ने निसिबिसि पर चढ़ाई की किन्तु उसे ले न सका।

किन्तु शाह इन कार्यवाहियों से हतोत्साहित होने वाला प्राणी न था। उसने फिर विशाल तैयारी की और दो वर्षों के बाद ही उसने मेसोपोटामिया पर भयंकर आक्रमण किया। कुस्तुनतुन का लडका कांस्टेनटिग्रस इस समय सिंहासन पर बैठा हुआ था। परशु लोगो ने वर्तमान सिजर पर जो पहले 'सिंगारा' के नाम मे प्रसिद्ध था आक्रमण किया। रोमन सम्राट ने अपनी सेनाएँ उसकी रक्षार्थ भेजीं। पहले हमले मे रोमन सेनाओ ने परशुओं को बुरी तरह खदेड दिया। इस अप्रत्याशित विजय से प्रसन्न होकर जब रोमन सेनाएँ रात्रि को उत्सव मना रही थीं, तो परशु अश्वारोहियो ने उन पर अचानक भयकर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण को रोमन सेना सह न सकी और वह भयभीत होकर इधर-उधर भाग गई। जाते समय इस सेना ने शाह के एक पुत्र को पकड़ लिया जिसे बाद में मार डाला गया। इस अत्यन्त नीच कार्य से शाह को बड़ा धक्का लगा और उसने अब तक रोमन लोगो के प्रति जो उदारता बरती थी उसे तिलाजलि देकर रोमन सेनाओ को तहस-नहस कर दिया। रोमन सम्राट कास्टेंटिग्रस भाग गया। इस कारण सिगारा का यह युद्ध निर्णायक सिद्ध न हो सका और लड़ाई सन् ३५० तक चलती रही।

इस वर्ष (सन् ३५० मे) शाह ने निसिविसि लेने का पक्का संकल्प कर लिया। सम्राट कांस्टेंटिग्रस भागकर यूरोप पहुँच चुका था। अत. इससे अच्छा समय शाह को उपलब्ध हो ही नही सकता था। अत: उसने एक बडी विशाल सेना का सगठन किया। इस सेना मे महान् वीर भारतीय सैनिक और उनके झूमते हुए मतवाले हाथियों की एक अपार सेना भी थी[1] जिससे न केवल रोमन बल्कि पिछले समय मे यूनान वाले योद्धा भी लडने में भय खाते थे। इस मदमत्त गजवाहिनी के साथ शाह ने निसिविसि पर पूरे आक्रमण के साथ युद्ध शुरू कर दिया। उसके वीरो ने एक बाँध बाँधकर खाई के पानी को निसिविसि दुर्ग के चारो ओर फैला दिया और फिर जो आक्रमण किया उससे किले की एक दीवार में छेद हो गया। जब तक कि रक्षक सेना उसे मूँदती; हाथियों ने अपने शस्त्र त्राणो से लदे हुए हौदाओं में वीरो को बिठाकर एकाएक आक्रमण कर दिया। परन्तु बहुत से शूरमा तथा हाथी चारों ओर की दलदल में फँस गये। इसी समय शाह को संदेश मिला कि तूरान मे बगावत हो गई है। अत उसने पुनः गृह-युद्ध में फँसे हुए रोमन सम्राट की प्रार्थना पर लड़ाई बन्द करा दी। इस प्रकार निसिविसि बच गया और अगले आठ वर्षों तक दोनो राज्यो के मोर्चों पर शांति रही।

किन्तु रोमन साम्राज्य मे ईसाई धर्म सम्राट के संरक्षण में दिन-पर-दिन

---

१. सर पर्सी, पृष्ठ ४१४

उन्नति कर रहा था। जनता का वह भाग जो ईसाई होता जा रहा था रोमन सम्राटों को अपना त्राता समझकर परशु लोगों से द्वेष रखता था। साहपुत्र को यह व्यवहार कतई पसन्द नहीं था। यही नहीं यदि ईसाई धर्म उसके राज्यान्तर-गत फैल जाता तो उसे अपने यहाँ बगावत की पूरी-पूरी आशंका थी। अतः उसने ईसाई मत को न फैलने देने के लिये काफी यत्न किये। उसके लिये ईसाई मत प्रसार का अवरोध धार्मिक न होकर पूरा राजनीतिक था।

डॉक्टर डब्लू. ए. विग्राम ने अपनी पुस्तक असीरियन चर्च मे शीमा बेदी दो, पृष्ठ ३५१, 'अकीब के कार्य' का जिक्र करते हुए लिखा है कि परशु लोगों की शिकायत थी कि—

"ईसाई लोग हमारी धार्मिक शिक्षाओं को नष्ट करते हैं और कहते हैं कि एक ईश्वर में विश्वास करो। वे सूर्य और अग्नि की पूजा को मना करते हैं, वे उन्हें (Oblutions) द्वारा पानी को अपवित्र करना भी सिखाते हैं। वे विवाह न करने तथा संतान-उत्पत्ति का भी विरोध करते हैं और साहानुसाह के साथ युद्ध में जाने को भी मना करते हैं। उन्हें हत्या करने और पशु खाने मे किसी प्रकार का भय नहीं है। वे पृथ्वी में अपने मृतको को गाडने का प्रचार करते हैं। वे साँप और रेंगने वाले जीवों को भी सत्य ईश्वर से उत्पन्न होना मानते हैं। वे सम्राट के सेवकों से घृणा करना सिखाते हैं और जादू-टोना मे विश्वास करने को कहते है।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त तथ्यों मे से कुछ तथ्य आर्यों के सार्वभौमिक सिद्धान्त हैं। हत्या और पशु मारकर खाना आर्यो मे सदैव निसिद्ध रहा है। केवल किन्हीं परिस्थितियो में यह मान्य है। इसी प्रकार मुर्दों को जलाने की आर्य-प्रथा भी इस समय तक ईरान मे प्रचलित थी। युद्ध मे अपने राजा का साथ देना तथा राजसेवकों के प्रति आदर तथा शिष्टता प्रदर्शित करना आर्यों की परम्परा रही है। उनके मत मे जादू-टोना का भी कोई स्थान नही रहा है।

अतः साहु ने जो ईसाई विरोधी युद्ध मे राजा के साथ न जा सकें उन पर युद्ध कर की भाँति दूना कर लगा दिया। मारशियन नाम के एक धर्मगुरु ने इस आज्ञा को नही माना और कर उगाहने की उसको जो आज्ञा दी थी उसको भी नहीं माना, और कहा कि धर्मगुरुओं का यह कार्य नही है व जनता भी बहुत गरीब है अत ३३९ ई० मे गुड फ्राइडे के दिन मारशियन; पाँच अन्य धर्मगुरु और सौ पुजारियो को, सूसा नगर मे जोकि एलम की एक समय राज-धानी थी, फाँसी दे दी गई। चालीस वर्षों तक यह ईसाई विरोधी अभियान जारी रहा। क्योंकि ईसाई लोग जरस्थु धर्म का सीधा उल्लंघन करते थे अतः

1. Acts of Akib—Shima Bedi II, 'असीरियन चर्च', पृष्ठ ३५१

भिक्षु और भिक्षुणियों पर भी काफी अत्याचार हुए। साहपुत्र के पूरे राज्यकाल मे यह दमनचक्र चलता रहा।[1]

अब सम्राट ने पूर्व दिशा की ओर ध्यान दिया; पूर्व दिशा में होने वाले हूण और जिलान हमलो को उसने दृढ़तापूर्वक दबा दिया जिससे पूर्व दिशा में शांति हो गई। जिलान जाति के कबीलों के निवास के कारण ही ईरान का जिलानी सूबा प्रसिद्ध हो गया है। सन् ३५७ तक साह ने पूर्व दिशा से छुट्टी पा ली।

इधर सन् ३५२ मे रोम और आर्यमणि की सधि हो चुकी थी। यह संधि आश्चर्यजनक ढग से हुई। साह आर्यमणि को अपने प्रभाव-क्षेत्र में मानता था। रोमन राजा भी आर्यमणि को अपना मित्र बनाना चाहता था। वह उसकी बफर स्थिति से भलीभाँति विज्ञ था। अतः इस स्थिति का लाभ उठाकर आर्य-मणि राजा हर्ष या आर्ष ने अपना विवाह रोम की राजकन्या से करना चाहा। सम्राट कास्टेटियस इस पर तुरन्त राजी हो गया और उसके प्रोटोरियन सरदार की ओलम्पिया नामक पुत्री से उसका विवाह कर दिया। इस प्रकार हर्ष या आर्ष एक बार फिर रोमन प्रभाव-क्षेत्र मे आ गया।

रोम के साथ द्वितीय युद्ध और रोमन पराजय (३५९-३६१)

जब साह हूणों के साथ युद्ध मे लिप्त था तो उसको पश्चिम से सूचना मिली कि रोमन सम्राट कास्टेटियस अपनी अस्थायी सधि को मजबूत करने की इच्छा रखता है। इतिहासकारो का मत है कि यह इच्छा सम्राट ने न कर उसके अधिकारियों ने की थी। इस पर साह ने सम्राट को जो एक पत्र लिखा उसकी प्रति आज भी सुरक्षित है। उस पत्र मे शाह ने लिखा, "साहानुसाह साहपुत्र जोकि सूर्य और चन्द्र का भ्राता है अपने भाई कास्टेटियस कैसर को नमस्कार करता है—आपके लेखक इस बात के साक्षी है कि मेरे पुरुखो का स्त्रीमन नदी से मकदूनियाँ की सीमाओ तक एक बार राज्य रहा है। यदि मैं इन प्रदेशो की आपसे माँग करूँ तो मैं अनर्थ नही करूँगा—किन्तु शिष्टता का तकाजा है कि इनमे से केवल दो प्रदेश मेसोपोटामिया और आर्यमणि देश जो मेरे पितामह से छीन लिये गये थे, को लेकर ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा—एतद्द्वारा मैं आपको आगाह करता हूँ कि यदि मेरे राजदूत आपके यहाँ से निराश लौटे तो मैं अपनी पूरी शक्ति के साथ जाड़े समाप्त होते हुए भी स्वय युद्ध करने के लिये तत्पर रहूँगा।"[2]

---

१. ईसाई लेखको ने परशु लोगो की तो काफी भर्त्सना की है किन्तु उसने स्वय मेरी क्वीन आफ स्काट इलीजावेथ तथा पुर्तगालियो ने दूसरे धर्मवालो पर जो अत्याचार किये थे उनके विषय मे प्राय वे मौन ही रहे हैं।

2. Sir Percy, 418

कहने की आवश्यकता नहीं कि पत्र की भाषा दृढ होते हुए भी अत्यन्त शिष्ट और सम्मानसूचक है। राजदूतों के निराश लौटने के बाद ही दोनों देशों में युद्ध की घोषणा हो गई। इस समय साह की सेवा मे एक रोमन जनरल भी था जो बड़ा अनुभवी व चतुर था। उसने साह को सलाह दी कि पहले निरक्षक असुर प्रदेश के किलों को हथिया लिया जावे। इस युद्ध के दौरान प्रसिद्ध रोमन इतिहास लेखक ऐसियानस मारसेलीनस था उसने लिखा है कि "जब उसे रोमनों द्वारा आक्रमण करने की आज्ञा दी गई तो उसने पहाड़ी के एक शिखर पर खड़े होकर देखा कि पूरा क्षितिज ही साह के सैनिकों से भरा हुआ पड़ा है। उसने साहानुसाह साहपुत्र तथा हूण राजा ग्रमवथ को भी पहचान लिया। उसने इस घटना की सूचना त्वरित अपने सेनापति को आकर दी।

साहपुत्र ने बिना निसिबिसि को लेते हुए फरात नदी की ओर प्रयाण कर दिया। बाढ़ के कारण उसे असुर प्रदेश छोड़ना पड़ा। वर्तमान दियार वेकर जो अमीमा के पास है उसने रोमन सेना को हरा दिया। इसके पश्चात् उसने अमीमा के किले पर भयंकर आक्रमण किया। उसमे रहनेवाले आठ सहस्त्र रोमनो ने काफी समय तक उसकी रक्षा की किन्तु साह की बलशाली सेना ने उसे ध्वस्त कर दिया। रोमन सेना के अनेक योद्धा और सेनापतियो को या तो फाँसी पर लटका दिया गया अथवा गुलाम बनाकर बेच दिया गया। इसके बाद साह जाड़ा बिताने के लिये विश्राम करने चला गया।

अगले दिनो मे साह ने फिर सिंगारा के दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया। इस बार उसने फिर निसिबिसि को जान-बूझकर छोड़ दिया और फिर आगे बढ़कर बेजाब्दे नगर पर अधिकार कर लिया। उसने मेसोपोटामिया के अन्तिम छोर पर स्थित 'बिरता' पर आक्रमण भी किया किन्तु वह उसे ले न सका।

सम्राट कांस्टेंटियस इस समय अपने चचेरे भाई जूलियन के साथ उलझा हुआ था जिसने कि 'आगस्त' की पदवी धारण कर ली थी। ऐसे कठिन समय मे उसने. अपने मित्र आर्यमणि राजा हर्ष या आर्षस को तरह-तरह की सौगातें भेजकर बुलाया और अपने प्रति निष्ठा बनाये रखने का वचन ले लिया; इसके बाद उसने पूरी शक्ति से बेजाब्दे का उद्धार करने को आक्रमण किया किंतु वह बुरी तरह पराजित हो गया। इसके बाद ही सन् ३६१ ई० मे वह चालीस वर्ष राज्य करने के बाद मर गया।

परशु द्वारा सम्राट जूलियन का वध

इसके बाद ही प्रसिद्ध सम्राट जूलियन जो अत्यन्त शिक्षित और दार्शनिक था, रोम की गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त साहसी, पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी था, उसकी इच्छा सम्राट ट्राजन की भाँति पूर्व दिशा मे विजय करने की थी। अतः

उसने साह् के राजदूतों के साथ बहुत ही बेहूदा व्यवहार किया जिससे वे रुष्ट होकर चले गये और फिर लडाई की तैयारी होने लगी । जूलियन अपने स्वभाव से न तो लोकप्रिय था और न मिलनसार ही था, उसका मस्तिष्क राजशाही था। अतः उसने सारसेन (Sarcen) सरदारगणों को, जो अपनी सेनाओं सहित सहायता को आये थे, रुष्ट कर लिया, इससे वे साथ छोडकर शीघ्र ही चले गये। इन सरदारों को हमेशा लूट मे माल मिलता था और उसके वे आदी हो चुके थे। अतः सम्राट ने जब उन्हें यह कहा कि वह उन्हें लोहा दे सकता है (यानी शस्त्र) परन्तु सोना नही दे सकता तो वे रुष्ट हो गये। इन सरदारों ने न केवल युद्ध-शिविर ही छोडा अपितु उन्होने वहाँ पर रोमनों के विरुद्ध अपना अभियान ही छेड दिया। इसी प्रकार जूलियन ने आर्यमणि राजा के साथ भी रूखा व्यवहार किया। अत· वह भी शिविर से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके अपने घर को चला गया।

१५०० वर्ष के बाद भारत मे भी विदेशियों का मुकाबला करते समय पानीपत के मैदान मे विश्वास राव भाऊ ने अपने साथी भरतपुर के राजा सूरज-मल जाट और होलकर के साथ इसी प्रकार का व्यवहार किया था जिससे वे ठीक रणक्षेत्र से चले गये और अन्त मे पानीपत का मैदान विश्वास राव भाऊ के हाथ से निकल गया था।

सम्राट जूलियन जब मेद देश की ओर बढ रहा था तो एक युद्ध में जब वह अपने सैनिको को उत्साहित कर रहा था तो २६ जून सन् ३६३ में एक परशु निवासी सैनिक के बल्लम द्वारा वह मार डाला गया। उसकी अचानक मृत्यु से उसकी सेना बडी बुरी परिस्थिति मे फँस गई। सेना ने एक नये जोवियन नामक नेता को अपना सम्राट चुनकर बहुत शीघ्रता से अपने साम्राज्य की सीमा मे भागकर जान बचाई।

सम्राट साहपुत्र की मृत्यु सन् ३७९ ई० मे हो गई। चूकि उसके कोई उत्तरा-धिकारी नही था अत. उसका सौतेला भाई आर्यक्षीर, जिसकी आयु इस समय ७० वर्ष की थी और जो ईसाइयो को सताने मे प्रसिद्ध हो चुका था, गद्दी पर बैठा। किन्तु चार वर्ष के भीतर ही वह परशु देश के सरदारों द्वारा मार डाला गया। उसके बाद साहपुत्र महान् का एक पुत्र साहपुत्र तृतीय के नाम से गद्दी पर बैठा। किन्तु वह अपनी सेना की बगावत मे मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई वाराहरण चतुर्थ गद्दी पर बैठा। यह किरमान प्रान्त में राज्यपाल रह चुका था अतएव उसे किरमान का शाह भी कहते हैं। इसके समय में रोमन सम्राट थियोडोसियस ने हमेशा के लिये संधि कर ली। संधि के अनुसार आर्य-मणि देश के दो बराबर-बराबर टुकडे करके दोनो सम्राटों ने आधे-आधे बाँट लिये। इसने ग्यारह वर्ष तक राज्य किया।

चतुर्थ वाराहरण के पश्चात् या तो शाहपुत्र या शाहपुर द्वितीय या शाहपुर तृतीय का पुत्र इष्टगृद्ध (इस्दीगर्द) = यज्दगिर्द प्रथम गद्दी पर बैठा। यह वध-कर (पापी) Bezeger कहलाता था क्योंकि पुरोहितो ने उसकी धार्मिक समानता की नीति को धिक्कारा था। हर्ष या आर्षव ने अपने पुत्रों को इसी सम्राट के संरक्षण में रखा था। उसकी मृत्यु सन् ४२० में आश्चर्य पूर्ण ढंग से हुई। कहा जाता है कि वह घोड़े से गिरकर मर गया। संभवत. यह घटना तथ्य को छिपाने के लिये ही गढ़ी गई हो। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र आर्यमणि प्रात से सिंहासनारूढ़ होने को आया परन्तु वह शीघ्र ही मार डाला गया। कुछ दिनों के लिए उसका एक कुटुम्बी खुसरू सिंहासन पर बैठा। परन्तु इष्टगृद्ध के एक पुत्र ने जो वाराहरण पंचम कहलाया अपने अरबी मित्र नुमन की सहायता से सिंहासन पर अधिकार जमा लिया।

वाराहरण पंचम

वाराहरण पंचम को इतिहासकारो ने वहराम गौड लिखा है। गौड का अर्थ उन्होने जंगली गर्दभ से लिया है जो पूर्णरूपेण भ्रमपूर्ण व गलत है। कहा जाता है कि एक बार जब वह आखेट को गया था तो वहाँ उसने एक शेर को जंगली गर्दभ पर आक्रमण करते देखा। सम्राट ने बरछी की एक ही मार से दोनों का काम तमाम कर दिया। अत: तभी से उसका नाम गौड पड गया। गर्दभ और गुर मे समानता होने के कारण ही संभवतः यह अर्थ लगा लिया गया है। अन्यथा पूर्व के देश जानते है कि आर्यों में गौड़ क्षत्रियो का एक प्राचीन घराना था और यह उसकी शाख का ही विदित होता है।

अपने शासन काल के प्रारंभिक दिनो में उसे तुर्की के युद्धों में उलझना पडा, बाद में श्वेत हूणों ने जब बाल्हीक पर आक्रमण कर दिया तो उसने उसके नेता का अपने हाथों से वध करके उनके आक्रमण को विफल कर दिया। हूण राजा का मुकुट उसने विजय स्मारक के रूप मे रख छोडा जो बहुत दिनो तक अग्नि-पट्टन में शीज स्थान के अधर गुश्नाश्व के अग्नि मंदिर मे रखा रहा।

अपने पिता की भाँति इसने भी ईसाइयो के प्रति विरोधी भावना रखी। रोमन लोगों के विरुद्ध शाह ने मिहिर नरसिंह नाम के एक ख्यातिप्राप्त सरदार को जोकि शाह द्रु के पिता अष्टाश्व (Hystaspes) से अपने वंश का उद्गम मानता था, कमान सौंपी। परन्तु उसे विशेष सफलता नही मिली। किंतु रोमन लोग भी निसिबिसि नाम के स्थान को नही ले सके। अन्त मे दोनो शक्तियो मे फिर एक बार संधि हो गई जिसकी एक शर्त के अनुसार सात हज़ार परशु सिपाहियों को वापस परशु भेजे जाने के लिये ईसाइयों के धर्मगुरु अमीदा के बिशप एकेशियस ने अपना सामान बेचकर उन्हें आर्थिक सहायता दी।

सन् ४३८ ई० में शाह बाराहरण की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसकी गद्दी पर उसका पुत्र इष्टगृद्ध द्वितीय बैठा। उसकी प्रांतरिक इच्छा भी अपने पिता की भाँति पश्चिमी ईसाइयो से युद्ध करने की थी, किन्तु वाल्हीक प्रदेश में श्वेत हूणो के लगातार दबाव पडने के कारण उसे उधर ही उलझना पडा। उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि प्रार्यमणि लोग जरस्थु धर्म ग्रहण कर लें ताकि वे एक ही धर्म के होने के कारण सामान्य मित्र बन जावे; किन्तु उसी समय प्रार्यमणि लोगों ने अपनी वर्णमाला की लिपि स्थापित कर ली जिसके कारण उनमे आपस में काफी सगठन हो गया। अब मंत्री मिहिर नरसिंह ने ईसाई धर्म के विरुद्ध एक घोषणापत्र जारी किया जिसका प्रत्युत्तर कुछ पादरियो ने दिया। अतः इन लोगों को दबाने के लिये जो साधन अपनाये गए उनके कारण वहाँ बगावत हो गई। यद्यपि इन्ही दिनों मे शाह की सेनाएँ कुषण लोगो से हार गई थी तथापि उन्होने अवरेर की खूनी लड़ाई (२ जून सन् ४५१ ई०) मे ईसाई विद्रोहियो को पूरी तरह नष्ट कर दिया। प्रार्यमणि देश का सेनापति (Vardan Mama kon) वर्द्धन मामाकोण युद्ध मे मारा गया। बगावत के नष्ट कर देने के उपरात बहुत• से ईसाइयो को दण्ड दिया गया और वहाँ बहुत-से अग्नि-मदिर बना दिये गए।

सन् ४५७ मे शाह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद गद्दी के लिये उसके दो पुत्रों शर्मिष्ठ तृतीय तथा फीरोज मे युद्ध हुआ जिसमे फीरोज ने श्वेत हूणो की सहायता ली और इस सहायता के लिये उसने उन्हे वाल्हीक प्रदेश के दो नगर तालीकन तथा तिरमिद देना स्वीकार किया। इस भीषण लड़ाई मे शर्मिष्ठ मारा गया और फीरोज ने सिंहासन पर कब्जा कर लिया। इन भाइयों की माता दीनाक्ष इन दिनो क्षेसीभूमि (Ctesiphon) पर सरक्षक के रूप में राज्य कर रही थी। फीरोज का राज्यकाल बडी मुसीबत का रहा। इन्हीं दिनो मे भयकर अकाल पडा। राजा ने प्रजा की सहायतार्थ कर कम कर दिये और उन्हें विभिन्न प्रकार की राहतें पहुँचाई। अमीर आदमियों को गरीब लोगो की मदद के लिये विवश किया, अवरेज गाँव की दावत अभी तक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त जलधारा का निर्माण किया जिससे अकाल नष्ट होने मे काफी राहत मिली।

इस समय रोमन तथा परशु दोनो देश बर्बर जातियो के हमले के शिकार हो रहे थे अतः उन्हे आपस मे लडने को मौका नही मिला। श्वेत हूणो के नेता अक्षुणवास (Akhsunvax) या खुशनिवास के विरुद्ध दो अभियान छेड़े गए किन्तु उनमें सफलता नही मिली। पहले आक्रमण मे एक जासूस की गलती के कारण पूरी फौज मरुभूमि में नष्ट हो गई दूसरे अभियान मे स्वयं फीरोज मारा गया। आगे के दो वर्षों मे परशु ने श्वेत हूणो को कर देना जारी रखा।

इन सब कठिनाइयो के बावजूद फीरोज ने अपने राज्य की उन्नति की तरफ

बहुत ध्यान दिया। अपने नाम पर उसने अनेक उजड़े हुए शहरों को बसाकर आबाद किया और बर्बर जाति के हमलों से जो व्यक्ति रोमन साम्राज्य की सीमाओं से खदेड़ दिये गए थे; उनको पुन: वस्त्र या और प्रत्येक प्रकार की संभव सहायता दी। इस राजा ने २५ वर्ष तक राज्य किया।

अब इसके पश्चात् परशु राज्य राजा-विहीन था। फारसी इतिहासकारों के अनुसार इस समय एक योग्य सेनापति सुखरस ने (Sokhras) जिसे जरमिहिर की उपाधि मिली हुई थी और जो आर्यमणि देश में युद्ध-संचालन करके लौटा था, राजा फीरोज के भाई बलसिंह या बालासी (Balash) को राज्य-सिंहासन पर बिठाया। उसने अपने भाई जरेश या सुरेश की बगावत को शांत किया परन्तु श्वेत हूणों की अतृप्त आर्थिक अभिलाषा को वह पूर्ण न कर सका। अत: सुखरस स्वयं ने एक सेना इकट्ठी की और श्वेत-हूणों के नेता अक्षुणवास को संधि करने के लिये विवश किया। श्वेत हूणों ने संधि के अनुसार कर वसूल करना व शेष कैदी भी छोड़ना स्वीकार कर लिया। इन कैदियो में फीरोज का लड़का कवध (Kavadh) या कवर्द्ध भी था। कुछ दिनो के बाद सुखरस ने बालासी को गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर कवध को सिंहासन पर बैठा दिया। कवध ने ४३ वर्ष तक राज्य किया।

२६

कवर्द्ध (कवध)

जब कवध सिंहासन पर बैठा तो उस समय एक युवक जिसका नाम मजदक (मध्यक ?) था, मणि धर्म के सिद्धातो की नये प्रकार से व्याख्या कर रहा था। उसका कार्यक्रम अधिक समाजवादी था। उसने एक नये धर्म की रूपरेखा तैयार की। उसका विश्वास समस्त अच्छाइयो या सत्यता और स्त्रियों मे अधिक था। वह सामंतो या व्यक्तियो के विशेषाधिकारो के सर्वथा विरुद्ध था और सच्चे आर्य-धर्म के अनुसार केवल भोजन के लिये जीव-हत्या का घोर विरोधी था। कवध ने इन नियमो मे जब यह देखा कि इनके पालन से सरदारो की शक्ति क्षीण हो सकती है तो उसने इस धर्म को खूब बढावा दिया। इस पर उसके सरदार असं-तुष्ट हो गये और उसे कैद कर लिया तथा उसके एक भाई यमाश्व (४९७ ई०), जोकि नये धर्म का विरोधी था, सिंहासन पर बैठा दिया।

कवर्द्ध अपनी पत्नी की सहायता से गिलगर्द की जेल से छूटकर भाग गया और श्वेत हूणों से जा मिला। उसने श्वेत हूणो के सरदार की लडकी फीरोज-दुख्त (यह नाम सही मालूम नही पडता) से विवाह कर लिया जोकि स्वय पिछली लडाइयो मे कैद की जा चुकी थी। उसकी बढती हुई शक्ति देखकर यमाश्व ने उसके भय से सिंहासन छोड दिया। कवर्द्ध ने उन दोनो व्यक्तियों सरमिहिर (Zarmihr) और शिवसी के साथ, जिन्होने कि उसे जेल से छुड़ाया था, अच्छा व्यवहार नही किया और उसके स्थान पर मिहिरवश के एक नये सरदार शाहपुर को पदाधिकारी बना दिया।

श्वेत हूणो को देने के लिये कवर्द्ध को धन की आवश्यकता थी अत: उसने रोमन सम्राट से धन की माँग की जिसे उसने देने से मना कर दिया। अत: कवध ने क्रुध होकर उसके खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया। उसने तत्काल आर्यमणि तथा मेसोपोटामिया को जीत लिया और तीन महीनों के घेरे के बाद थियोदास-पुरी तथा अमीदा पर कब्जा कर लिया। किंतु इसी समय उसे फिर पूर्व मे श्वेत हूणों से उलझना पड़ा। इस परिस्थिति का रोमन लोगो ने लाभ उठाया व दोनो

देशों में संधि हो गई जिससे लाभ उठाकर रोम ने दारा, वर्धा और यूरोपा नगरों की किलेबंदियाँ कर ली।

इस पर सन् ५२७ में सम्राट ने दारा की किलेबंदी से चिढ़कर फिर युद्ध जारी कर दिया। उसने (सन् ५३१) मे सम्राट जस्टीनियन के सेनापति वेलीसेरियस को दो स्था पर बुरी तरह पराजित कर दिया। वेलीसेरियस के उत्तराधिकारी मित्तास ने कुछ घेराबंदी की शुरूआत की, किंतु उसी वर्ष सम्राट कवर्द्ध का देहांत हो गया। इस समय उसकी आयु ८२ वर्ष की थी। अपने जीवन काल मे सम्राट ने बड़े-बड़े नगर बसाकर सुख-समृद्धि मे चार-चाँद लगा दिये थे जिसके कारण यह राजा परशु देश मे काफी प्रसिद्ध हो गया है।

खुसरू प्रथम

कवर्द्ध ने अपने पुत्र खुसरू का जिसे यूनानियो ने (Chosroes) कासरोइस लिखा है, सन् ५१३ में ही उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। किंतु वह अपनी प्रजा द्वारा अनुश्रवण[1] कहलाता था, जिसका मतलब अमर आत्मा से होता था। उसे कुछ लोग दात्-गृह = देने वाला घर (Dadgar) भी अर्थात् न्यायी कहते हैं। इतिहासकारों ने लिखा है कि वह अपने वश का सबसे बडा सम्राट हुआ है। अरबी और फारसी साहित्य में उसकी कथाएँ भरी पडी हैं। प्रारंभिक वर्षों मे उसके विरुद्ध एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। यह बात सत्य है कि यह विद्रोह उसके बडे भाई यम के पक्ष मे नहीं था क्योंकि वह एकअक्षी था किंतु उसके पुत्र जिसका नाम भी कवर्द्ध था, के पक्ष मे था किंतु सब मौत के घाट उतार दिये गए। अतः विद्रोह शांत हो गया।

पश्चिम में रोमन सम्राट जस्टीनियन के सेनापति की विजयो से रोमन लोगों को ऐसा लगा कि यह उनके विजयश्री के दिन हैं अतः पिछले समय में की गई संधि के अनुसार उसने परशु को क्षतिपूर्ति देना बद कर दिया व मेसोपोटामिया को लेने का भी यत्न करने लगे। इन्ही दिनों मे एक नई घटना हुई। दो अरब सरदारो मे आपस मे झगडा हो गया। इनमे से एक सम्राट जस्टीनियन का और दूसरा परशु सम्राट का पक्षपाती था। सम्राट ने मध्यस्थ का कार्य किया। इस पर खुसरू ने एन्टिओक नगर पर कब्जा करके वहाँ के निवासियों को क्टेसीभूमि के निकट स्वय द्वारा बसाए नये नगर मे 'विह्-अस, अडियो खुसरू' मे जाने को विवश किया।

इस नगर को उसने 'खुसरू का विशेष अडियो' नाम रखा जिससे उसका अभिप्राय यह था कि यह खुसरू का नगर ऐण्टिओक से भी अच्छा है। यूनानियो ने

1. Clement, Page 432

जिस प्रसिद्ध नगर को ऐंटिम्रोक कहा है, वास्तव में उपरोक्त नामकरण से उसका 'हिन्दी' नाम सही मालूम पड़ता है। क्योंकि हिन्द या सिन्धु को भी यूनानी इंड Ind से शुरू करते हैं (Indco और India मे काफी समानता है)। अरबों ने इस नगर को "रुमैया" लिखा है जो रोमन का भाववाचक है। सम्राट खुसरू ने एक नगर कैलीनिकन भी ले लिया परन्तु आगे उसकी जीत रुक गई। तब दोनो देशों में संधि हो गई।

इसी बीच यह खबर उड़ी कि खुसरू की मृत्यु हो गई है अतएव उसके लड़के अनुसुहृद[1] (Anushazad) ने बगावत कर दी; परन्तु वह पकड़कर अंधा कर दिया गया। इसके पश्चात् रोमसे सन् ५५३ ई० मे पचास वर्षीय संधि हो गई।

खुसरू ने अपने मित्र सिंधभू (Sinjibu) जोकि तुर्कों की शैव-भू (Shaobu) जाति का सरदार था, की सहायता से श्वेत हूणों को परास्त करके अपने साम्राज्य की सीमाएँ वक्षुस नदी तक बढा लीं, किन्तु जब स्वय तुर्कों ने ट्रान्सोक्सिग्राना ले लिया तो सम्राट ने उसके विरुद्ध सीमा पर मोर्चाबन्दी कर ली। जब इथापिया वालो ने अरबों को जीत लिया तो अरब लोगो ने परशु से सहायता की याचना की। खुसरू ने सन् ५७० ई० मे यमन पर कब्जा कर लिया। इस सेना का जनरल वाराह था। परशु लोगों ने अरबी औरतों से विवाह कर लिये। जिनकी सन्तान को आगे चलकर मुसलमानों ने 'इब्ने' अर्थात् पुत्र ही नाम रख लिया। सन् ५७९ ई० में खुसरू की दुःखपूर्ण स्थिति में मृत्यु हो गई। उसकी सेना जब मलनिया मे हार गई तो वह फरात नदी को हाथी पर बैठकर पार करके बडी मुश्किल से बचा और बाद मे मर गया।

कवद्ध के समय से साम्राज्य का जो भूमाप होना शुरू हुआ था वह इसके समय मे पूरा हुआ। सम्राट ने उदारता से बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों पर से कर की उगाही बन्द करा दी। किन्तु भूहीन व्यक्तियों; ईसाइयों और यहूदियों से कर लिया जाना जारी रखा। इसी सम्राट के समय में भारत की प्रसिद्ध पुस्तक 'पंचतन्त्र' परशु में लाई गई और उसका संस्कृत में अनुवाद कराया गया जिसका नाम 'कलीला और दिमना' रखा गया। इसी शाह के समय भारत से 'चतुरंग' (शतरंज) का खेल परशु साम्राज्य मे लाया गया।

खुसरू का लड़का शर्मिष्ठ चतर्थ जोकि तुर्की माँ से उत्पन्न होने के कारण तुर्कजादा कहलाता था, ने रोमनों के खिलाफ युद्ध जारी रखा। इसी समय परशु देश के क्षत्रप वाराहरण चुबिन ने बगावत कर दी। यह चुबिन मिहिरवंश का व्यक्ति था। यह क्षत्रप रोमन लोगो के मुकाबले में असफल रहा था अतएव

---

१. 'ज' उच्चारण 'हृ' का होता है।

शर्मिष्ठ द्वारा बुला लिया गया था। इसका बदला चुविन ने शीघ्र ही ले लिया। बाराहरण चुविन की बगावत से शर्मिष्ठ 'विह् कवध' (Beh-kavadh) नगर की ओर भागा। उसकी सेना ने जो मेसोपोटामिया मे युद्ध कर रही थी उसके लड़के को राजा चुन लिया। इस लडके का नाम खुसरू द्वितीय परवेज था जो रोमन सम्राट मौरिस की शरण मे रह रहा था। सन् ५६० मे कुस्तुनतुनिया की सहायता से खुसरू द्वितीय गद्दी पर बैठा। अब अर्ध्युवन मे (अजरवेजान) में चुविन पर दबाव पड़ा तो वह तुर्कों की तरफ चला गया जहाँ बाद मे वह मार डाला गया।

खुसरू द्वितीय

सन् ६०२ ई० में फोका द्वारा रोमन सम्राट मौरिस मार डाला गया, अतएव खुसरू ने शामदेश तथा आर्यमणि पर आक्रमण कर दिया। कुछ वर्षों मे ही उसके सेनापति क्षरबाराह (Shahr-Baraz) जिसे साम्राज्य का वाराह कहा जाता था और जिसका नाम क्षरबाराह था, ने ऐडेसा, ऐंटिओक और दमिश्क ले लिया। उसने शीघ्रता से आगे बढकर सन् ६१४ मे जेरुसलम पर भी कब्जा कर लिया। जहाँ से वह ईसाई धर्म के महान् चिह्न 'होलीक्रास' को क्षेसीभूमि ले आया। इसके पश्चात् उसने मिस्र पर भयंकर आक्रमण किया और उस पर आधिपत्य कर लिया। इस विजय से उत्साहित होकर दूसरा सेनापति, शाहिन एशिया माइनर में घुस गया। उसने तुरत-फुरत फिलसिया व सीजरिया लेकर चाल्सडन (कादी-कुई) की, जोकि कुस्तुनतुनियाँ के बिलकुल सामने है, घेराबन्दी कर डाली, किन्तु वहाँ उसका अपमान हुआ और मार डाला गया। इससे क्रोधित होकर 'बाराह' उधर चढ दौड़ा और शहर को लेकर उसकी पूरी तबाही कर दी। यदि उसके पास जलबेडा होता तो उसने कुस्तुनतुनियाँ पर अधिकार कर लिया होता। इसी बीच रोम में हीराक्लियस सम्राट घोषित हो गया और उसने फिर एशिया माइनर ले लिया। सन् ६२८ मे उसने हस्तगृद्ध (दस्तगिर्द) पर कब्जा कर लिया और परशु देश की गुलामी से रोम के ३०० झंडे (Roman flages) वापस ले लिये। विष-आर्तक्षीर नगर में खुसरू बीमार पड गया और उसने अपना उत्तराधिकारी मर्दन शाह को घोषित किया, किन्तु सरदारो ने उसे सम्राट मानने मे आना-कानी की। अत. खुसरू के द्वितीय पुत्र शीरू (Shiroe) को राजा बनाया गया। इसने अपने भाई मर्दन से साँठ-गाँठ करके पिता को जेल मे डाल दिया। जेल की अंधेरी कोठरी मे वह सन् ६२८ मे मार डाला गया। किंतु प्रकृति ने इस भयकर काड का बदला शीरू से शीघ्र ही ले लिया। इन्ही दिनो मे दजला और अन्य नदियो मे भयकर बाढ़ आ गई। चारों तरफ दलदल फैलने

से प्लेग फूट पड़ी जिसमें शीरू मर गया। इस तरह वह केवल ६ मास ही राज्य कर सका।

उसकी मृत्यु के बाद उसका अल्पवयस्क लड़का आर्तक्षीर तृतीय गद्दी पर बिठाया गया। इसी बीच गुर्जरों ने (Khazars) आर्यमणि और जार्जिया पर आक्रमण कर दिया। सेनापति वाराह उसी स्थान के पास उनसे पराजित हो गया। किन्तु उसने भागकर कुस्तुनतुनिया के सम्राट से षड्यन्त्र करके अल्पवयस्क लडके को गद्दी से उतारकर स्वयं सिंहासन प्राप्त कर लिया। शर्मिष्ठ चौथे के एक लडके खुसरू तृतीय नाम के राजकुमार ने उसके इस कृत्य का विरोध किया। और डेढ महीने बाद ही मार डाला गया। इस खुसरू की बहन पूरनदेवी का अन्त मे क्षेसीभूमि मे राजतिलक किया गया। अन्त में कुस्तुनतुनिया के सम्राट के साथ सधि हो गई जिसके अनुसार वह सही क्रास (जिस पर ईसा को फाँसी दी गई थी) परशु लोगो ने रोमन सम्राट को लौटाने का वायदा किया। कहा जाता है कि यह क्रास पहले ही सन् ६२६ के १४ सितम्बर को दे दिया गया था। प्रतिदिन की लड़ाइयों से तंग आकर पूरनदेवी ने केवल १ वर्ष ५ माह बाद ही राज्य सिंहासन का त्याग कर दिया। उसने अपनी बहन 'असर्मी दुख्त' से उत्पन्न एक राजकुमार को जोकि खुसरू तृतीय का भाई लगता था और जिसका नाम गुश्नाश्ववर्द्ध (Gushnaspavardeh) था, को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। किन्तु दूसरी ओर खुसरू परवेज के पौत्र शर्मिष्ठ पचम ने निसिबिसि में अपने को राजा घोषित कर दिया और सन् ६३२ तक जबकि वह अपने सैनिकों से मार डाला गया, राज्य करता रहा। उसके बाद इष्टगृद्ध तृतीय १६ जून सन् ६३२ को गद्दी पर बैठा।

इस समय मोहम्मद की अरब में मृत्यु हो चुकी थी। सन् ६३६ मे मोहम्मद के एक शिष्य सादविल अबी पवका ने प्रसिद्ध कदसिया के स्थान पर ईरानी सेना को भयकर पराजय दी जिसमे ईरान का 'दिरायसे काव्यानी' झंडा छीन लिया गया। सम्राट भाग गया और अरबो का सिलूसिया पर कब्ज़ा हो गया। अगले साल अरबो ने क्षेसीभूमि पर भी कब्जा कर लिया। सन् ६४२ में जलूला के युद्ध मे सेनापति फीरोजान की मृत्यु ने सम्राट की आशाओं पर रह-सहा पानी फेर दिया। सम्राट के हाथ से एक के बाद एक प्रात और नगर निकलते चले गये और सन् ६१५ ई० में एक चक्की वाले के यहाँ जब उसने शरण ली तो वह सोते मे मार डाला गया। इस प्रकार आर्य जाति के महान् साम्राज्य का अन्त हो गया।

क्लीमेट लिखता है, "राज्य के रूप मे परशु का अन्त हो गया इसके साथ ही फारस का राष्ट्रीय धर्म भी बराबर हमलों और चपेटों मे आकर पूर्णरूप से समाप्त हो गया।"

अनुवंशीय-तालिका

ई० पू० (B. C.)	क्रम	समानांतर घटनायें
८३७	परशु और अमदाई का कूनीफार्म लेखों में वर्णन	शाल्मन असुर तृतीय, असुर प्रथम, शमशी
८२४-८१२	असुरों की चढ़ाई	अदिति चतुर्थ, अदिति
८१०	...	नरहरि तृतीय, दीर्घलति
७४५	...	बील असुर तृतीय
७२२	यहूदियों का मेद को निष्कासन	
७१५	दयाक्षु बन्दी बनाया गया	

मेद राज्य

ई० पू० (B. C.)	क्रम	समानांतर घटनायें
७०८	द्यौ (Deiocas) द्वारा मेद राज्य की नींव	
६५५	Phraotes प्रवरतिष का उदय	
३११	क्षयहृषं (Cyaxares) व सीथियन आक्रमण	
६२५	...	असुर बाणीपाल की मृत्यु
६१५	सीथियन आक्रमण का अंत	
५८५	मेद व लीडिया में सन्धि	
५८४	क्षयहृषं (Cyaxares) की मृत्यु	
५६१	...	(यूनानी इतिहास) पीसिसट्रेटस का एथेंस पर कब्जा
५५	अष्टवेगु (Astyages) की हार व मेद राज्य की समाप्ति—एकपट्टन (Ecbatana) का पतन	

सखमान वंश

ई० पू०		
५५८	अंशन के राजा कांभोज्य की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुरुष उत्तराधिकारी	
५५३	कुरुष की अष्टवेगु (Astyages) के विरुद्ध बगावत (५५०)	
५४६	कुरुष का परशु साम्राज्य का राजा घोषित होना—क्रीसिस (Croesus) पर आक्रमण	
५४५-५३६	पूर्व के युद्ध	
५३६	अंशन (बेबीलोन) का पतन	
५३६	कुरुष का बेबीलोन के सिंहासन पर बैठना	पीसिस्ट्रेटस का लौटना
५३६	जेरूसलेम के मंदिर का पुनर्निर्माण	व
५२८	कांभोज्य (Cambyses) आरूढ़	उसकी "मृत्यु"
५२५	उसकी मिस्र विजय	
५२२	मल्ल राजा गौमत का विद्रोह व कांभोज्य की मृत्यु	
५२१	गौमत का कत्ल; दूह्य प्रथम; बेबीलोन का पतन	
५१६	(Oroetes) उर्वतु लीडिया के क्षत्रप का गायब होना	
५१७	मिस्र में दूह्य	
५१४	सीथियन युद्ध	
५१०	...	हिपिरस को एथेन्स से भगाया गया
५०८	प्रथम एथेन्स का दूतावास	
५०६	द्वितीय	
४६६-४६४	यूनान का विद्रोह	
४६८	सार्डीज पर कब्जा	
४६४	लेद (Lade) की नाविक लड़ाई	
४६३	थ्रेस प्राप्ति	
४६२	पुन: मकदूनिया बुलाया गया	
४६०	मेरेथोन का युद्ध	
४८६	क्षयहर्ष	

ई० पू०		
४८४	कम्बीसा की मिस्र में मृत्यु	
४८१	यूनान पर आक्रमण सलामिस का युद्ध	
४७९	परशु और यूनान में युद्ध (पलेटिया आक्रमण)	
४६५	क्षयहर्ष का अंत, आर्तक्षयहर्ष का सिंहासन आरोहण	
४६२	वाल्हीक देश के (Hystasps) विषताश्व का विद्रोह	
४५५	परशु के विरुद्ध मिश्र का विद्रोह	
४४९	यूनान युद्ध में गेलियस-संधि	
४२४	क्षयहर्ष द्वितीय का आरोहण, मृत्यु, और वाहुक या द्रु द्वितीय का सिंहासनारूढ़	४३१—४०४ पेलीपोनीशियन युद्ध
४१२	यूनान (ऐथेंस की तीसरी बार पराजय)	Expulsion of 30 Tyrants
४०५	कुरुष द्वितीय की बगावत और यूनानियों की चौथी पराजय	
४०४	आर्तक्षयहर्ष द्वितीय का आरोहण	
४०१	कुनाक्शा में आर्यों का गृह-युद्ध	
३८७	अंतिम यूनानी राज्य स्पार्टा की पराजय व अंतलचीदास की संधि	
३७४	क्षत्रप पर्णवाहु द्वारा मिस्री शासक नक्षत्र-क्षुम पर हमला	
३५८	सम्राट आर्तक्षयहर्ष द्वितीय की मृत्यु तथा तृतीय आर्तक्षयहर्ष का आरोहण	
३४२	मिस्र पर आक्रमण और उसकी पराजय	
३३८	सम्राट की मृत्यु	
३३६	द्रु तृतीय का राज्यारोहण	
३३३	सिकंदर द्वारा द्रु तृतीय की इसिस युद्ध में पराजय	
३३१	परशु सेना और सिकंदर का अंतिम युद्ध (आरबेला-युद्ध)	
३२७	सिकंदर का भारत पर आक्रमण	
३२३	सिकंदर की मृत्यु	

ई० पू०	
३०२	सिल्यूकस का भाग्योदय और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त से पराजय
३०१	ईप्सस के युद्ध में सिल्यूकस द्वारा द्विमित्रिय की पराजय
२४६	पार्थ राज्य का उदय और हर्ष का राज्य
२४७	हर्ष द्वितीय का सिंहासनारूढ़ होना और हर्षण विजय
२०६	हर्ष के बाद उसके पुत्र बृहपति का राज्य
१८१	बृहत् प्रथम का राज्य आरोहण
१३८	पार्थ सम्राट मित्रदत्त की मृत्यु
१२४	सम्राट मित्रदत्त द्वितीय का आरोहण
१२०	पोंटस राजा मित्रदत्त छटवें का राज्यारोहण
१२०-८८	चीन का दूत प्रथम बार पश्चिम में गया
८५	आर्यमणि देश का पार्थ के भागों पर आधिपत्य
६५	सिनतरु पुत्र बृहत् तृतीय (पार्थ) का रोम से संबंध तथा सन् ५५ में उसकी हत्या व उरुद का सिंहासनारूढ़ होना
५३	करही के युद्ध में सुरेन सेनापति द्वारा रोमनों को भारी पराजय
४०	पार्थ द्वारा रोम की पुनः पराजय
३७	बृहत् चतुर्थ का सिंहासन पर आरूढ़ होना
३६	पार्थ द्वारा ऐंटोनी की भीषण पराजय
२३	बृहत् चतुर्थ द्वारा अपने पुत्र को रोमनों से वापिस लेना

आर्यमणि देश

२०	आर्तक्षय की मृत्यु और तिगरन का सन् ६ ई० पू० तक राज्य
०२	बृहतादव द्वारा अपने पिता बृहत चतुर्थ की हत्या

ई० पू०

१६	मेद राजा आर्तमानु द्वारा पाणिनि का निष्कासन
१४	आर्तमानु द्वारा रोमन प्रस्थापित आर्त-क्षय की मृत्यु पर अपने पुत्र हर्ष को गद्दी
३७	रोम के साथ संधि, (आर्तमानु तृतीय)
४६	में आर्तमानु के पुत्र वर्द्धन की हत्या और दूसरा पुत्र गोत्रज आरूढ़
५५-६३	आर्यमणि राजा पुलकेशी तथा नीरो का संघर्ष
७५	अलानी बर्बरों पार्थ राज्य का सर्वनाश
११४-१६७	तक रोम द्वारा आर्यमणि की अधीनता
२०८	पुलकेशी चौथे की मृत्यु पर उसके पुत्र आर्तमानु का राज्यारोहण
२१७	रोम और पार्थ युद्ध
२२६	आर्तमानु (अर्दवान) की हारमुज युद्ध मे आर्तक्षयहर्ष (परशु) द्वारा पराजय व मृत्यु

ससन वंश का उदय

× × ×	रुस्तम पुत्र वाराहरण (आर्तक्षयहर्ष) के दूसरे पुत्र ससन द्वारा आरोहण
२२६	आर्तक्षयहर्ष का आरोहण
२३०	आर्तक्षयहर्ष द्वारा सत्धर्म का प्रचार
२४०	शापुर का राज्यारोहण
२६०	रोम सम्राट वैलेरियन की गिरफ्तारी
२१६	मणिधर्म का उदय
२७२	शापुर की मृत्यु व शर्मिष्ठ का आरोहण
२७५	वाराहरण द्वितीय का आरोहण
२९३	नरसी गद्दी पर बैठा
२९७	रोम के साथ युद्ध में नरसी की पराजय
३०१	शर्मिष्ठ द्वितीय का आरोहण
३०९	शाहपुत्र का उदय

ई० पू०	
३५०	पूर्वी देशों की विजय
३६१	रोम के साथ युद्ध और क्षेसीभूमि की अपराजयता और रोम की भयंकर हार
३७६	में शापुर द्वितीय की मृत्यु व आर्तहर्ष द्वितीय का आरोहण
३८३	शाहपुर तृतीय का आरोहण
३८८	वाराहरण चतुर्थ का आरोहण
३९९	वाराहरण चतुर्थ की मृत्यु और यज्दगृद्ध-प्रथम का राज्य
४२०	यज्द गृद्ध की मृत्यु और वाराहरण गौड़ का आरुढ़ होना
४२२	रोम के साथ अनिर्णायक युद्ध
४२५	वाराहरण गौड का श्वेत हूणों से युद्ध
४४०	यज्द गृद्ध द्वितीय का आरोहण और रोम युद्ध
४५७	मे यज्द गृद्ध की मृत्यु व ४५९ मे फीरोज का सिंहासन पर बैठना
४८३	श्वेत हूणों द्वारा फीरोज का कत्ल
४९५	बाल का राज्यारोहण (Balas = पुलकेशी)
४८७	कवर्द्ध (Kavad) का सिंहासनारुढ़ होना
४९०	मजदक धर्म का प्रचार
५०५	में रोम की पराजय
५२३	मजदकों का कत्ले-आम
५२९	अरब देश के हीरा स्थान के मुंधीर का सीरिया पर आक्रमण
५३१	रोम के साथ युद्ध और रोम की पराजय
५३१	अनुश्रवण या नौशेरवान का राज्यारोहण

पार्थ वंश (दस्युस्थान से आये)

हर्ष (…२४७ ई० पू०)
|
हर्ष द्वितीय (२४७—२१४ ई० पू०)
|
हर्ष तृतीय (२१४—२०९ ई० पू०)
|
बृहपति (२०९—१८१ ई० पू०)
- बृहत् प्रथम (१८१—१७०)
- मित्रदत्त प्रथम (१७०—१३८)
  - बृहत् द्वितीय (१३८…? ई० पू०)
  - मित्रदत्त तृतीय (१२०—८८ ई० पू०)
  - पता नहीं चलता (८८—६६ ई० पू०)
  - सिनतरु
  - बृहत् तृतीय (६६—५७ ई० पू०)
    - मित्रदत्त (५७—५६)
    - उरुद (५६—३७)
      - बृहत् चतुर्थ (३७—०२)
        - पाणिनि
          - आर्तभानु तृतीय (१६…१८)
        - बृहताश्व (०२—०१) (मारा गया)
          - उरुद (मारा गया)

परशुवंश
विशदातृ (विशवाद) Lawgiver वंश
कैमार्श
सुरांग
तहमर्ज
यम क्षेव (यमसिद्धि)

आर्य मणि वंश
(२०-०६) तिगरन
आर्तक्षय (…२० ई० पू०)
तिगरन द्वितीय (०६…?)
(पार्थ का विदेशी वंश आया)
आर्त भानु तृतीय (१६—१८)
आर्तक्षय (१८—३५)
पुन: (३६—४०)
वर्द्धन
गोत्रज
४०—४६
पाणिनि द्वितीय
पुलकेशी प्रथम (४१—७७)

ससन वंश

(वंश तालिका का शेषांश अगले पृष्ठ पर देखें)

(पृष्ठ ३०५ की वंश तालिका का शेषांश)

यज्दगुर्द या गिर्द द्वितीय (४४०—४५७)

- फीरोज (४५६—४८३)
  - कवर्द्ध (४८७—४९८) पुनः (५०१—५३१)
    - अनुश्रवण (५३१—५७९)
  - यमास्व (४९८—५०१)
- शर्मिष्ठ (४५७—४५९)
- वाला (Balas) (४८३—४८५)
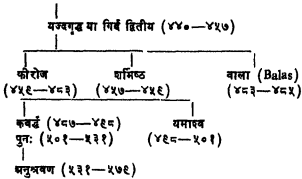
संदर्भ-ग्रन्थ

(1) Ancient History of Near East : Hall.
(2) Ancient India by Megasthes & Arrian : I. W. Mac-crindle.
(3) Bactria : Rowlinson.
(4) Dynasty of Kajars (translated by) Sir Harfard Jones Bridg.
(5) Hirat to Khiva : Col. James Abbot.
(6) Herodotus.
(7) Historical Notes on Khurasan : Percy Molcworth.
(8) Decline and Fall of Roman Empire : Gibbon.
(9) House of Seleucus · Edwyn Robert Bevan.
(10) Inter course of China with Cen. and Western Asia in II century.
Bc. : T. W. KINGSMILL
(11) Marco Polo : Sir Henry Yulee.
(12) Mohemedan Dynasties : Stanley Lane Pool.
(13) Parthian Coinage . Percy Gardner.
(14) Scythian & Greeks : Ellis Hovell
(15) Sassan : Rowlinson.
(16) Parthia : „
(17) Ten thousand miles : Sir Percy Moleswath.
(18) Thousand Years of Tatars : E. H. Ponker.
(19) Travels in Belochistan & Sindh : Henry Pottinger.
(20) „ in Juristan : B'aronde bode.
(21) „ in Georgia : Sir Robert Ker.
(22) Book of Knowledge.

(२३) ऋग्वेद : आर्य साहित्य मंडल, अजमेर
(२४) यजुर्वेद : ,,
(२५) सामवेद : ,,
(२६) अथर्ववेद : ,,
(२७) विष्णु पुराण : गीता प्रेस
(२८) हरिवंश पुराण : ,,
(२९) भविष्य पुराण : ,,
(३०) श्री मद्भागवत् : ,,
(३१) महाभारत : ,,
(३२) आर्यों का निवास; आर्कटिक : तिलक
(३३) जिन्दावस्ता
(३४) सांची स्तूप : मार्शल
(३५) भारत का इतिहास : डॉ० बेनीप्रसाद
(३६) रायल ऐशियाटिक सोसाइटी के जर्नल्स
(३७) नोवोस्ती प्रकाशन (रूस)
(३८) फारस का इतिहास · सर पर्सी, साइक्स आदि-आदि।

० ० ०